स्वतंत्रता सेनानी सचित्र कोश

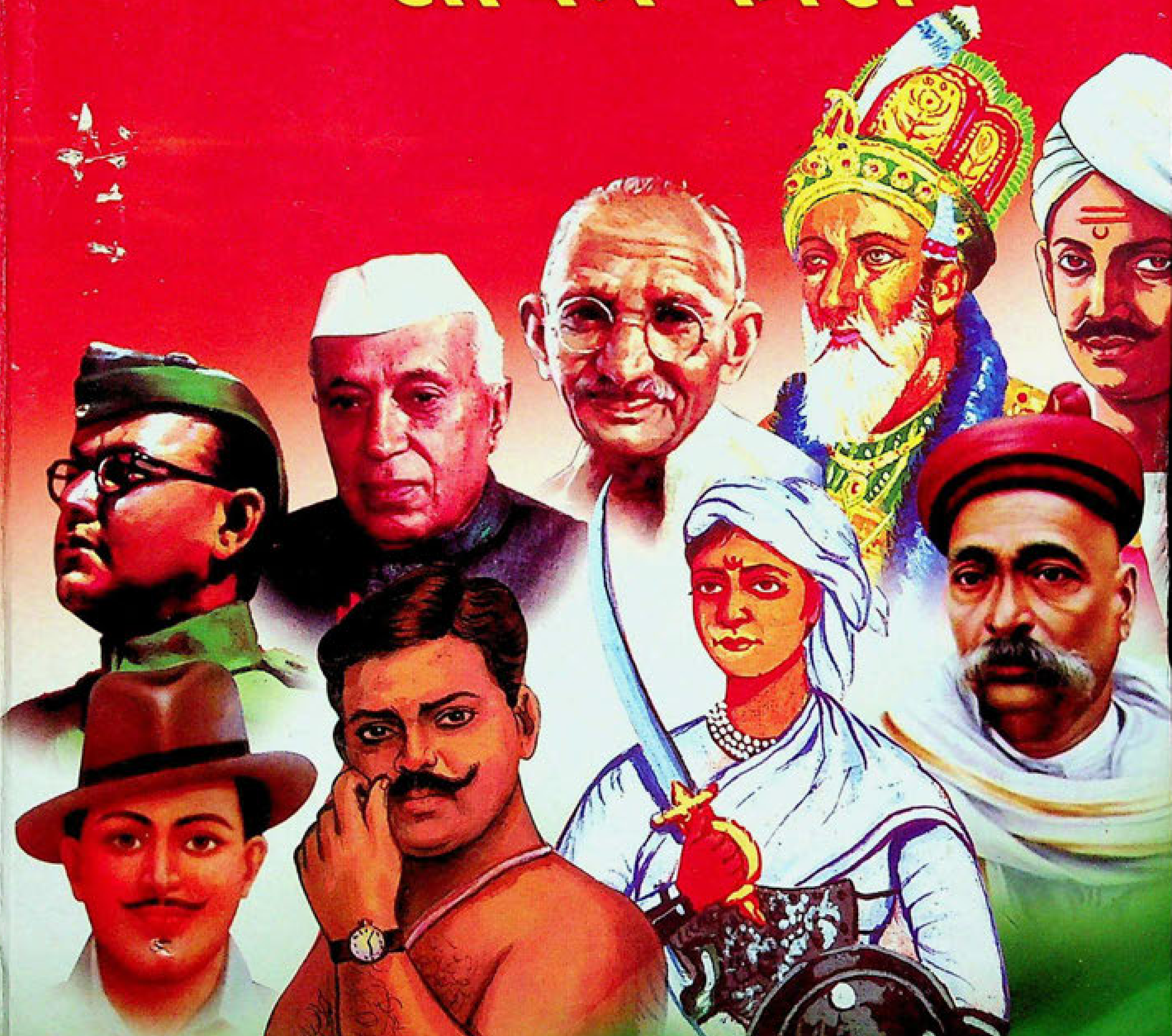

रविचन्द्र गुप्ता

यह ग्रंथ 1760 से लेकर 1947 तक ब्रिटिशकाल के प्रमुख शहीदों, क्रांतिवीरों एवं स्वतंत्रता सेनानियों की संक्षिप्त बहुरंगीय चित्र-गाथा है। इस चित्र-गाथा को आठ कड़ियों में पिरोया गया है। इसकी प्रथम कड़ी 'रक्त का प्रथम अर्घ्य' में उन प्रेरक घटनाओं, आन्दोलनों एवं क्रांतिवीरों का उल्लेख है जिन्होंने 1857 के स्वतंत्रता संघर्ष का धरातल तैयार किया था। इसके बाद उत्तरोत्तर कड़ियों में उन राष्ट्रनायकों की चित्र-कथाएँ हैं जो भारत देश में रहकर अथवा विदेशों की धरती से भारत की स्वतंत्रता हेतु अहिंसा अथवा क्रांति के माध्यम से अंग्रेज़ी शासन को टक्कर देते रहे।

इसमें बारह-तेरह वर्ष से लेकर बीस वर्ष तक के बच्चों के बलिदान की रोमांचक गाथा है। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस द्वारा भारत की आज़ादी की खातिर सीमा पर 26000 सैनिकों के बलिदान ने इस रचना को ओज प्रदान किया है। स्वतंत्रता संघर्ष की यज्ञाग्नि में आहुति देने वाले प्रमुख पत्रकारों, विद्वान लेखकों, कवियों, सन्तों, शंकराचार्यों व राजनेताओं की उपस्थिति से यह कृति गौरवान्वित हुई है।

हमारा प्रयास है कि यह बहुरंगीय 'स्वतंत्रता सेनानी सचित्र कोश' कम से कम मूल्य पर हर देशवासी के पास पहुँचे। हर घर के बच्चे, बड़े व बुजुर्ग इनसे प्रेरणा लेकर एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण कर सकें एवं उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित कर सकें।

9892

Vichar Television Network Limited

[illegible]

स्वतंत्रता सेनानी सचित्र कोश

Vichar Television Network Limited

लेखक
रविचन्द्र गुप्ता

भूमिका
शिवकुमार गोयल

अनिल प्रकाशन
2619, न्यू मार्किट, नई सड़क, दिल्ली-110006

यह पुस्तक केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के संस्वीकृति -पत्र संख्या 5-13/2007-के.अनु.ए. दिनांक 16-10-2007 के माध्यम से प्राप्त वित्तीय सहायता से प्रकाशित हुई है। कापीराइट अनुदानग्राही के पास है।

प्रकाशक : **अनिल प्रकाशन**
2619, न्यू मार्किट,
नई सड़क, दिल्ली - 110006
मुद्रक : शारदा प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-32
सर्वाधिकार : लेखकाधीन
चित्रकार : गुरदर्शन सिंह 'बिंकल'
प्रथम संस्करण : 2009
मूल्य : **285.00**

Publisher : Anil Prakashan, 2619, New Market, Nai Sarak, Delhi-110006,
Writer : Ravi Chandra Gupta, First Edition - 2009, Price : Rs. **285.00**

राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत
महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज
को सादर समर्पित

भारतवर्ष को गुलामी की बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए स्वदेश वेश एवं स्वदेशी भाषा के मर्म को सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द ने ही पहचाना था। कृषिप्रधान देश होने के कारण गौ-वंश को 'भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ मानकर उन्होंने ब्रिटिश सरकार से गौ-हत्या के कलंक को दूर करने की माँग की थी। ब्रिटिश भारत के वायसराय के सम्मुख वार्तालाप में सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द ने ही "मैं अपनी मातृभूमि को स्वच्छन्द (स्वतंत्र) राज्यों की पंक्ति में खड़ा देखना चाहता हूँ" कहने का साहस किया था। आप ही ने 'स्वदेशी राज्य के आगे अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य को त्यागने की घोषणा' कर भारतीयों की सुषुप्त राष्ट्रीय चेतना को झखझोरा था।

नव जागरण के पुरोधा स्वामी दयानन्द जी के राष्ट्रीय विचारों से प्रभावित होकर स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती जैसी अनेक विभूतियों ने अपना सर्वस्व 'स्वदेशी एवं स्वदेश' की स्थापना के लिये समर्पित कर दिया। श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द, रामप्रसाद बिस्मिल व सरदार भगतसिंह जैसे क्रांतिवीरों ने स्वामी जी के क्रांतिकारी विचारों से प्रेरित होकर अपनी शक्ति को पहचाना एवं उन्होंने भारतमाता को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराने हेतु अपना सर्वस्व स्वतंत्रता के महान् यज्ञ में समर्पित कर दिया।

यह 'स्वतंत्रता सेनानी सचित्रकोश' राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज की 125 वीं जयन्ती पर उनकी पावन स्मृति में सादर समर्पित है।

–लेखक

भूमिका

किसी भी देश की स्वाधीनता तथा सामाजिक क्रांति का इतिहास, उसके इतिहास पुरुषों, महापुरुषों व वीर-वीरांगनाओं के जीवन चरित्र उस देश की सबसे अमूल्य धरोहर होती है। स्वाधीनता, न्याय तथा सत्य के लिए संघर्षशील नायकों के जीवन की घटनाएं, प्रेरक प्रसंग भावी पीढ़ी को राष्ट्र व उसकी संस्कृति के महत्त्व की जानकारी देकर उनके हृदय में राष्ट्रभक्ति तथा नैतिक मूल्यों को पुष्ट करने का साधन बनते हैं। इसीलिए संसार के प्रत्येक देश में स्वाधीनता सेनानियों तथा सामाजिक क्रांति के अग्रदूत बुद्धिजीवियों के स्मारक बनाए जाते हैं, उनकी मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं तथा साहित्य और पाठ्य पुस्तकों में उनके संघर्षशील जीवन की घटनाओं का समावेश किया जाता है।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास अत्यन्त रोमांचकारी, प्रेरणादायक व समृद्ध है। इसके बावजूद स्वाधीनता के बाद ऐसा कोई प्रयास नहीं किया गया कि हम बालकों व युवा पीढ़ी को राष्ट्र व उसके महत्व से अवगत कराने के लिए स्वाधीनता सेनानियों के संघर्षमय जीवन से सम्बन्धित इतिहास व प्रेरक प्रसंग पाठ्य पुस्तकों में शामिल कर सकें।

पुरानी पीढ़ी के यशस्वी पत्रकार पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने देश के स्वाधीन होने के कुछ वर्ष बाद ही ज्ञात-अज्ञात स्वाधीनता सेनानियों से भेंट कर उन्हें अपने संस्मरण लिखने को प्रेरित किया था। श्री चतुर्वेदी जी ने उनकी पावन स्मृति बनाए रखने के लिए 'शहीद ग्रंथ माला' का सम्पादन भी किया। सन् 1965 में उन्होंने मुझे भी प्रेरित कर अनेक ज्ञात-अज्ञात स्वाधीनता सेनानियों पर लेख लिखवाये। मैं तभी से इस महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्य में लगा रहा हूँ।

राष्ट्रकवि रामधारीसिंह 'दिनकर' ने कभी लिखा था–

'कलम आज उनकी जय बोल,
जला अस्थियाँ बारी बारी।
छिटकायीं जिनने चिनगारी।।
जो चढ़ गये पुण्य वेदी पर।
लिये बिना गरदन का मोल।
कलम आज उनकी जय बोल।।
अन्धा-चकाचौंध का मारा,
क्या जाने इतिहास बेचारा।
साक्षी हैं उनकी महिमा के,
सूर्य चन्द्र, भूगोल, खगोल।
कलम आज उनकी जय बोल।।

राष्ट्रकवि दिनकर जी की ही अमर बलिदानी स्वाधीनता सेनानियों को समर्पित कुछ पंक्तियां हैं–

'तुमने दिया राष्ट्र को जीवन,
राष्ट्र तुम्हें क्या देगा।
अपनी आग तेज करने को,
नाम तुम्हारा लेगा।।'

यह सौभाग्य की बात है कि राजधानी दिल्ली के शिक्षाविद् तथा साहित्य प्रेमी श्री रविचन्द्र गुप्ता ने कुछ वर्षों से ज्ञात-अज्ञात स्वाधीनता सेनानियों की पावन स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य का शुभारंभ किया हुआ है। उन्होंने मातृभूमि की स्वाधीनता के महान् यज्ञ में आहुतियाँ देने वाले, मातृभूमि का अभिषेक करने वाले असंख्य बलिदानियों के चित्र सचमुच अपने रक्त से निर्मित कराके एक अनूठा आदर्श प्रस्तुत किया है। रक्त से रेखांकित किये गये 1857 की क्रांति के प्रथम बलिदानी मंगल पाण्डे, रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब पेशवा, बहादुरशाह जफर, कुँवरसिंह, तात्या टोपे, सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि कई सौ अमर हुतात्माओं के चित्रों के दर्शन करते ही पूरा शरीर रोमांचित हो उठता है। राष्ट्रभक्ति की भावना मन में हिलोरें लेने लगती है। इन लगभग 100 चित्रों को उन्होंने भव्य ऐतिहासिक प्रदर्शनी का रूप देकर अनूठा-ऐतिहासिक कार्य किया है। राष्ट्र के विभिन्न महत्वपूर्ण शहरों में भी प्रदर्शनी आयोजित कर आप देशवासियों को राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा देते हैं। श्री रविचन्द्र जी ने अज्ञात स्वाधीनता सेनानियों की खोज में वर्षों लगाकर उनके विषय में अनेक पुस्तकें लिखकर स्वाधीनता संग्राम के इतिहास को समृद्ध किया है।

उनकी नई पुस्तक 'स्वतंत्रता सेनानी सचित्र कोश' वास्तव में इतिहास की अनूठी पुस्तक कही जायेगी जिसमें उन्होंने 1770 से लेकर 1947 तक हुए स्वाधीनता के संघर्ष में बलिदान देने वाले, फांसी पर झूलने वाले, जेलों में अमानवीय यातनाएं सहन करने वाले मातृभूमि के उपासकों के रंगीन चित्रों के साथ-साथ उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर ऐतिहासिक कार्य किया है। इस ग्रंथ में जहाँ सशस्त्र-क्रांति में विश्वास रखने वाले बलिदानियों को शामिल किया गया है वहीं गांधी जी के नेतृत्व में अहिंसात्मक आन्दोलन के माध्यम से राष्ट्र को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए सत्याग्रह कर जेलों में अमानवीय यातनाएं सहन करने वाले, सत्याग्रह के दौरान पुलिस की गोलियों के आगे सीना तान देने वाले अनेक राष्ट्रभक्तों को भी शामिल किया गया है। ग्रंथ में कुछ स्वतंत्रता सेनानी साहित्य मनीषियों तथा उन धार्मिक विभूतियों के चित्र-परिचय भी दिये गये हैं जिन्होंने आजादी की खातिर जेलों में यातनाएँ सहन कीं।

मैं इस ऐतिहासिक ग्रंथ के लेखक श्री रविचन्द्र गुप्ता तथा प्रकाशक श्री अनिल गुप्ता को हार्दिक बधाई देता हूँ।

युवा कवि डॉ. वागीश दिनकर ने ठीक ही लिखा है:-

'सचमुच बलिदानी वीर वहीं पैदा होते,
बलिदान जहाँ सम्मानित होते रहते हैं।
वह देश सदा जीवित रहने का अधिकारी,
जिसके जन बलिदानों की गाथा कहते हैं।।'

-शिवकुमार गोयल

भक्त रामशरणदास भवन
पिलखुवा (गाजियाबाद), उ.प्र.

प्रस्तावना

पहली दस्तक

सन् 1757 ई. में प्लासी में सिराजुद्दौला के प्रथम सेनापति मीर जाफर ने गद्दारी का चोला ओढ़ कर मुर्शिदाबाद की गद्दी तो हथिया ली, लेकिन इसके बदले में उसे क्लाइव (ईस्ट इंडिया कम्पनी) को 72.71 लाख रुपये की भारी रकम चाँदी के सिक्कों में पहली किश्त के रूप मे चुकानी पड़ी। यद्यपि मीर कासिम अपने श्वसुर मीरजाफर की इस निर्लज्जता पर शर्मिंदा व दुखी था, लेकिन बाद में वह भी क्लाइव की चालाकी का शिकार हुआ और उसने अपनी गद्दी के लालच में 1760 ई. में वर्दमान, मिदनापुर एवं चटगाँव के क्षेत्रों की मालगुजारी वसूलने का अधिकार ईस्ट इंडिया कम्पनी को दे दिया। यह घटना ही भारत भूमि पर अंग्रेजी शासन की पहली दस्तक थी।

कृषकों पर वज्रपात

कम्पनी के अधिकारियों ने किसानों से बलपूर्वक मालगुजारी वसूल करने का अभियान चलाया। पूर्ववर्ती मराठा आधिपत्य में संतुष्ट कृषक समुदाय को अंग्रेजों का यह लूटमार का व्यवहार सहन नहीं हुआ। यह असंतोष संघर्ष में बदला और शक्ति के नशे में चूर कैप्टन व्हाइट ने जंगल महाल के किसानों पर भारी वज्रपात किया। किसानों ने कुछ अधिकारियों की पिटाई कर दी। अंत में कैप्टन व्हाइट की सेना ने दो तोपें लाकर गाँवों पर चढ़ाई कर दी। तोपों से गोले बरसा कर गाँवों को शोलों में बदल दिया लेकिन यह किसानों के असंतोष को दबाने का असफल प्रयास था।

संन्यासियों की राष्ट्रीय चेतना

1764 ई. में बक्सर युद्ध के पश्चात् कम्पनी ने मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय से 'इलाहाबाद संधि' के नाम पर समूचे बंगाल, बिहार और उड़ीसा के प्रशासकीय अधिकार प्राप्त कर लिये। इस संधि के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा भारतीय जन-समुदाय पर मनमाने अत्याचार का मार्ग खुल गया। एक तरफ तो भारत अंग्रेज कम्पनी की राज्य-लिप्सा से त्रस्त था तो दूसरी ओर 1764 के भयंकर अकाल ने किसानों की कमर ही तोड़ दी। लोग भूखों मरने लगे। ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों एवं उन के चहेते जमींदारों ने अनाज के गोदामों पर ताले जड़ दिये। भारतीय जनमानस की भूख से व्याकुलता संन्यासियों से न देखी गई। अत: उन्होंने संगठित होकर अन्न के गोदामों से अन्न लूट-लूट कर भूखी जनता में बाँटना आरंभ कर दिया। कम्पनी अधिकारियों ने संन्यासियों को देखते ही गोली मारने का आदेश दे दिया; हजारों की संख्या में संन्यासियों ने अपने जीवन की आहुति दे दी। लेकिन उनका अभियान रुका नहीं। उनका यह संघर्ष 1800 ई. तक चलता रहा। 1824 में प्रथम बार एक महिला कित्तूर की रानी चेनम्मा ने कम्पनी शासन को चुनौती देकर शहादत प्राप्त की। यद्यपि तिलका माँझी ने वनवासी संघर्ष का आरम्भ तो पहले ही कर दिया था लेकिन 1855 में चार सगे भाइयों सिद्धू, कान्हू, चाँद और भैरव ने इस क्रांति की ज्वाला को उग्रता प्रदान की। उनके नेतृत्व में लगभग बीस से पच्चीस हजार वनवासियों ने शहादत दी। वास्तव में भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष

की यही भूमिका थी जिसे पाश्चात्य तथा भारतीय इतिहासकारों द्वारा 'विद्रोह' की संज्ञा देकर इनके राष्ट्रीय महत्त्व को कम करके आँकने का प्रयास किया गया है। अत: पुस्तक का प्रारम्भ ही किसानों, संन्यासियों एवं वनवासियों की कुर्बानी से किया गया है।

1857 के संघर्ष की भीषण ज्वाला

सन् 1856 तक ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत के समुद्री तटों पर 'मद्रास प्रेसीडेंसी', बंगाल प्रेसीडेंसी व 'मुम्बई प्रेसीडेंसी' नाम से व्यापारिक कोठियाँ स्थापित कर लीं। इस प्रकार 100 वर्ष तक कम्पनी शासन का कुचक्र चलता रहा। राजाओं को आपस में लड़ा कर, तो कभी राजाओं के वफादार मंत्रियों को राज्य-लिप्सा का लालच देकर कम्पनी अपने राज्य का विस्तार करती रही। पिछले 90 वर्षों में भारतीय क्रान्तिकारियों ने अपने रक्त के अर्घ्य से स्वाधीनता संग्राम की जो भूमिका तैयार की थी, उसकी परिणति ही '1857 के स्वतंत्रता संघर्ष' के रूप में फूट पड़ी। पहले बैरकपुर और फिर मेरठ से आरम्भ हुई इस स्वतंत्रता संघर्ष की यज्ञाग्नि की ज्वाला में कम्पनी शासन धू-धू कर जल उठा। सारे देश में 'हर-हर-महादेव' तथा '**अल्लाह-हो-अकबर**' की ध्वनियाँ गूँज उठीं। जनता जनार्दन रूपी महादेव का ताण्डव आरम्भ हुआ। लेकिन सुसंगठित व आधुनिकतम शस्त्रों से सुसज्जित अंग्रेज सेना ने इस संघर्ष को बेरहमी से नृशंसतापूर्वक कुचल डाला। इस प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष में लाखों भारतीयों ने अपने प्राणों की आहुति दे दी। अंतत: कम्पनी शासन से तो मुक्ति मिली, लेकिन देश का दुर्भाग्य कि भारत पुन: 1858 में कम्पनी के ही पृष्ठपोषक, ब्रिटिश साम्राज्य के चंगुल में फँस गया।

स्वतंत्रता संघर्ष का अभिनव अभियान (कूका आंदोलन)

1857 के स्वतंत्रता संग्राम की यज्ञाग्नि की ज्वाला अभी शांत नहीं हुई थी। इसी संघर्ष से प्रेरित होकर पूरब से पश्चिम तक तथा उत्तर से लेकर दक्षिण तक राजा-महाराजाओं ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल बजा दिया। लेकिन अंग्रेजी साम्राज्यवाद की जड़ें इतनी गहरी थीं कि उन्हें उखाड़ना अभी आसान नहीं था। इसी प्रयास में 1866 से लेकर 1872 तक गुरु राम सिंह के नेतृत्व में कूका आन्दोलन आरम्भ हुआ। गुरु रामसिंह ने पंजाब में जगह-जगह ब्रिटिश सरकार के सामानान्तर अपनी शासन व्यवस्था चालू कर दी। उन्होंने ही सर्वप्रथम 'स्वदेशी' का नारा दिया। ब्रिटिश सरकार ने सैकड़ों कूकों को तोपों से उड़ा कर एवं फाँसी पर लटका कर कूका आन्दोलन को भी ठंडा कर दिया। गुरु रामसिंह को गिरफ्तार कर रंगून की जेल में डाल दिया गया। 1872 में उन्होंने वहीं अंतिम श्वास ली। **द्वितीय अध्याय '1857 का आग्नेय झंझावात' इन्हीं घटनाओं का साक्षी है।**

फूट का रक्त-बीज और स्वदेशी का आह्वान

महर्षि अरविंद ने 'भवानी मंदिर' के माध्यम से तत्कालीन युवा पीढ़ी को क्रान्ति का प्रेरक संदेश दिया। ब्रिटिश सरकार ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाते हुए 1905 में बंगाल का विभाजन कर दिया। लेकिन 'वन्देमातरम्' की गूँज ने सारे देश में विभाजन के विरुद्ध ऐसी चेतना जाग्रत कर दी कि ब्रिटिश सरकार ने 'वन्देमातरम्' बोलने पर ही प्रतिबंध लगा दिया। गुरु रामसिंह का 'स्वदेशी' का नारा अब रंग लाया। यही समय था जब पंजाब के आर्यसमाजी नेता टहलराम गंगाराम ने प्रथम बार छात्रों में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत कर ब्रिटिश सरकार को

चुनौती दी। स्वदेशी के नारे से विदेशी वस्तुओं का आयात इतना कम हो गया कि सरकार को घुटने टेकने पड़े और बंगाल विभाजन रद्द करना पड़ा। लोकमान्य तिलक से प्रेरणा लेकर विनायक दामोदर सावरकर ने लन्दन पहुँचकर स्वाधीनता के लिए जन-जागरण किया। उन्होंने '1857 का प्रथम स्वातंत्र्य समर' ऐतिहासिक ग्रंथ की रचना की। सावरकर की गतिविधियों ने ब्रिटिश सत्ता को हिला डाला था। उन्हें गिरफ्तार कर भारत लाकर मुकदमा चलाया गया। 1909 में मदनलाल ढींगरा द्वारा लंदन में कर्जन वायली की हत्या तथा 1912 में दिल्ली के चाँदनी चौक में वायसराय पर प्राण घातक हमले से यह सिद्ध हो गया कि अंग्रेजों की नीतियों के विरुद्ध क्रान्तिवीरों के साहस को प्रान्तीय या समुद्री सीमाएँ नहीं बाँध सकतीं। विदेशों में लड़ा गया स्वाधीनता संघर्ष इसी तथ्य का साक्षी है। श्यामजी कृष्ण वर्मा, मैडम भीखई जी कामा तथा मोहम्मद बरकतुल्ला आदि अनेक भारत माँ के सपूतों ने विदेशों में भी **''वन्देमातरम्''** की ध्वनि से स्वाधीनता संग्राम की ज्योति को प्रचंडता प्रदान की। **'वन्देमातरम् बोल' नामक तीसरे अध्याय में ऐसे ही क्रान्तिवीरों का उल्लेख है।**

अहिंसक क्रांति के पुरोधा महात्मा गाँधी का उदय

सन् 1919 में भारत वर्ष के क्षितिज पर एक ऐसा सितारा दिखाई पड़ा जिसने अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध समस्त भारत को एक सूत्र में पिरो दिया। महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक आन्दोलन और सत्याग्रह के अनूठे प्रयोग से समस्त भारत के जन-जन के मन में ऐसी राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ कि जहाँ लोग जेल जाने से घबराते थे एवं देश हित में भी जेल जाने वाले को हेय दृष्टि से देखा जाता था वहीं अब लोग जेल जाना गौरव की बात समझने लगे। अहिंसा के मार्ग से स्वतंत्रता प्राप्ति की घोषणा से स्वतंत्रता की लड़ाई का परिदृश्य ही बदल गया। ब्रिटिश सरकार ने अहिंसात्मक आन्दोलनकारियों पर लाठी, गोली और बम बरसा कर हिंसा का खूब तांडव खेला। अहिंसात्मक क्रांति की ज्वाला सैकड़ों बेगुनाहों के साथ-साथ लाला लाजपतराय जैसे लालों को भी लील गई। यतीन्द्रनाथ दास, माता कस्तूरबा एवं बहन सत्यवती जैसी अहिंसक क्रांति की अग्नि-शिखाओं ने जेल के सींखचों में ही दम तोड़ दिया। ज्योतिर्मयी गांगुली की पुलिस के ट्रक ने कुचल कर जान ले ली। **ऐसे अहिंसक क्रांतिवीरों एवं वीरांगनाओं को 'अहिंसक क्रांति का उद्‌घोष' नामक चौथे अध्याय में सम्मिलित किया गया है।**

सशस्त्र क्रांति की संकल्पना

अहिंसक क्रांतिवीरों पर हिंसा का तांडव देखकर रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खाँ, चंद्रशेखर आजाद तथा सरदार भगतसिंह जैसे क्रांतिवीर इस निर्णय पर पहुँचे कि ब्रिटिश सरकार अहिंसा को हमारी कायरता समझ रही है। बिना शक्ति के अहिंसा अधूरी है। उनका विचार था कि अहिंसा की भावना के पीछे जब तक अंग्रेजों को भारतीयों की शक्ति का भय नहीं होगा तब तक अंग्रेज भारत की गद्दी छोड़ने वाले नहीं हैं। अत: सरदार भगतसिंह ने जेल से महात्मा गाँधी को एक पत्र लिखा-

''सत्याग्रह सच पर हट है। लेकिन सच को अकेले आत्मीय बल द्वारा ही अपनाने के लिए प्रैस (दबाव) क्यों?क्यों न इसमें शारीरिक बल भी ज़ोड़ दिया जाए?.....क्रांतिकारी आत्मिक वल के साथ-साथ शारीरिक व नैतिक हर प्रकार की ताकत के साथ आजादी हासिल करने हेतु मैदान में खड़े हैं?''

इसी सोच के साथ क्रांतिवीरों ने ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों का उसी भाषा में जवाब देना आरंभ कर दिया। 'काकोरी कांड' तथा 'सांडर्स वध' इसी सोच का परिणाम था। क्रांति की मशालें हाथ में थामें हुए चंद्रशेखर आजाद, सरदार भगतसिंह, अशफाकउल्ला खाँ व रामप्रसाद बिस्मिल जैसे सैंकड़ों क्रांतिवीर मातृ-भूमि की आजादी की खातिर बलिदान हो गए। **'क्रांति की मशालें', नामक पाँचवें अध्याय में ऐसे ही क्रांतिवीरों की साहसिक चित्र-गाथा को शामिल किया गया है।**

युवा पीढ़ी की अँगड़ाई और उसकी अपेक्षा

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में छात्र-छात्राओं, किशोरों, बच्चों तथा युवाओं का बड़ा सराहनीय योगदान रहा है। लेकिन अपनी तरुणाई को मातृ-भूमि की बलिवेदी पर भेंट चढ़ा देने वाले अनगिनत बाल-एवं किशोर सिंह- शावक भारतीय साहित्यकारों, चित्रकारों एवं इतिहासकारों की लेखनी एवं तूलिका की छुअन से अछूते ही रह गए। **ऐसे ही बाल-किशोरों की साहसिक कुर्बानी का 'शहीद बच्चों की गौरव-गाथा' नामक छठे अध्याय में सचित्र उल्लेख है।**

क्रांतिदूत सुभाष की हुंकार

महात्मा गाँधी एवं नेताजी सुभाषचन्द्र बोस भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की दो महान् हस्तियाँ मानी जाती हैं। जहाँ म्हात्मा गाँधी जन-जन में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने वाले अहिंसात्मक आन्दोलन के जनक थे वहीं सुभाषचन्द्र बोस राष्ट्र के युवकों में क्रांतिकारी चेतना का स्फुरण करने वाले क्रान्तिदूत थे। 'शत्रु का शत्रु अपना मित्र' नेताजी की नीति थी। नेताजी ने बड़ी विकट एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में देश से बाहर जाकर यूरोप-एशिया के प्रवासी भारतीयों का संगठन तैयार किया। अंग्रेजी सेना के जर्मन व जापान द्वारा गिरफ्तार भारतीय सैनिकों में ब्रिटिश सम्राट के प्रति जो आस्था थी उन्हें उस आस्था से विमुख करना एवं उनमें 'मातृ-भूमि' भारत के प्रति आस्था एवं श्रद्धा जाग्रत करना बड़ी भारी चुनौती थी। लेकिन नेताजी ने हर चुनौती का बड़े साहस के साथ मुकाबला किया। सुभाष की हुंकार 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा' ने यूरोप व एशिया के प्रवासी भारतीयों में भारत की आजादी हेतु सर्वस्व समर्पण की लहर पैदा कर दी। 'चलो दिल्ली' नारे ने ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिला दी। 'अंतरिम आजाद हिन्द सरकार' की ओर से ब्रिटेन एवं अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा ने द्वितीय विश्व युद्ध का परिदृश्य ही बदल डाला। सीमा पर आजाद हिन्द फौज के छब्बीस हजार सैनिकों का बलिदान बाद में रंग लाया।

ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील

आजाद हिन्द फौज के सत्रह हजार सैनिक गिरफ्तार किये गये। इन सैनिकों पर दिल्ली के लालकिला में मुकदमा चलाया गया। यह मुकदमा ही ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील साबित हुआ। इस मुकदमे का परिणाम 3 जनवरी, 1946 को 'गजट आफ इंडिया एक्स्ट्रा आर्डीनरी' में प्रकाशित हुआ। इस मुकदमे से भारतीय जल, थल और नभ तीनों रायल सेनाओं के भारतीय सैनिकों में खलबली मच गई। अभी तक अंग्रेजों ने तीनों सेनाओं एवं भारतीय जनता में यह प्रचारित किया था कि आजाद हिन्द फौज जापान की 'कठपुतली' सेना है। नेताजी भारत के साथ गद्दारी कर जापान से मिल गये हैं। लेकिन इस मुकदमें ने यह सिद्ध कर दिया कि आजाद हिन्द फौज के सैनिक

अपनी मातृभूमि की मुक्ति के लिए लड़े थे। छब्बीस हजार सैनिकों का अपनी मातृभूमि की मुक्ति के लिए बलिदान विश्व के युद्ध में अद्वितीय घटना थी।

इसी मुकदमे के कारण ब्रिटिश भारतीय सेनाओं की राष्ट्रीय चेतना जागी। परिणामस्वरूप 18 फरवरी, 1946 को 'रायल इंडियन नेवी' के भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांति का बिगुल बजा दिया। लंदन की संसद को गुप्त सूचनाएँ मिल रहीं थीं कि जल, थल एवं नभ तीनों सेनाओं में विद्रोह की ज्वाला सुलग रही है। अब भारत को और अधिक गुलाम बनाए रखना खतरे की घंटी साबित हो सकती है। अगले ही दिन 19 फरवरी को ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने भारत को सत्ता हस्तांतरण की घोषणा कर दी।

पुस्तक का सातवाँ अध्याय "चलो दिल्ली नारा गूँज उठा" नेताजी के जीवन के रोमांचक प्रसंगों से भरा पड़ा है।

स्वातंत्र्य-पथ के समर्पित गुमनाम क्रांतिवीर

पुस्तक के अंतिम आठवें अध्याय में उन महान् विभूतियों को सम्मिलित किया गया है जो यद्यपि शहादत प्राप्त न कर सके लेकिन जीवन पर्यंत देश की आजादी की खातिर जेलों में अथवा जेल से बाहर कठोर यातनाएँ सहते रहे। आजादी के बाद भी उन्होंने अपनी कुर्बानी का कोई प्रतिदान नहीं माँगा। वह स्वतंत्र भारत में भी आर्थिक कठिनाइयों से जूझते हुए देश हित में तिल-तिल कर जलते हुए गुमनाम जिंदगी जीते रहे। उनका जीवन भी शहीदी जीवन से कम नहीं था।

आभार

इस ग्रंथ के सभी चित्र गुरुदर्शन सिंह 'बिंकल' चित्रकार से बनवाए गये हैं। सभी चित्र ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक हैं। मैं उनकी तूलिका को नमन करता हुआ उनका आभार प्रकट करता हूँ। मैं उन लेखकों का भी आभार प्रकट करता हूँ जिनके साहित्य से शहीदों के जीवन प्रसंग एवं चित्रों को तैयार करने में सहायता ली गई है।

स्वतंत्रता सेनानियों पर अनेक पुस्तकें तथा असंख्य लेख लिखने वाले सुविख्यात साहित्यकार-पत्रकार श्री शिवकुमार गोयल ने मेरा मार्गदर्शन कर कुछ महत्वपूर्ण सामग्री ही नहीं जुटाई अपितु उन्होंने भूमिका भी लिखने की कृपा की। मैं उनके प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ।

इस ग्रंथ को तैयार करने से पूर्व मैंने अनेक राज्यों में जा-जा कर स्वतंत्रता संघर्ष के घटना-स्थलों को प्रत्यक्ष देखा है। वहाँ के जिन महानुभावों, पुस्तकालयों, संग्रहालयों से इस सम्बन्ध में जो सक्रिय सहयोग मिला उसके प्रति भी मैं हृदय से आभारी हूँ। इसके अतिरिक्त इस संग्रह की सामग्री जुटाने में जिन सरकारी व गैर सरकारी अधिकारियों ने बड़ी सहृदयता एवं उदारतापूर्वक मेरी सहायता की उनका भी मैं कृतज्ञ हूँ।

अंत में भारतीय स्वातंत्र्य-समर के अमर हुतात्माओं के चरणों में नत मस्तक होता हुआ मैं यह कृति पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करता हूँ।

रविचन्द्र गुप्ता

32, शिवालिक अपार्टमेंट्स, पीतमपुरा

(निकट सरस्वती विहार), दिल्ली-34

विषय-क्रम

रक्त का प्रथम अर्घ्य

1.	जंगल महाल किसान आन्दोलन	16
2.	संन्यासी आन्दोलन	18
3.	तिलका माँझी	20
4.	पांड्याम कोट्टा बोमन	22
5.	फतेहअली टीपू	24
6.	रानी चेनम्मा	26
7.	बैरकपुर छावनी की प्रथम सैनिक क्रांति	28
8.	बुद्धू भगत	30
9.	सिद्धू और कान्हू	32

1857 का आग्नेय झंझावत

10.	मंगल पांडे	36
11.	1857 की जन-क्रांति की योजना	38
12.	अजीमुल्ला खाँ	40
13.	धनसिंह कोतवाल	42
14.	नाना साहब पेशवा	44
15.	1857 की सैनिक क्रांति	46
16.	1857 के क्रांतिनायक बहादुरशाह 'जफर'	48
17.	रामजीदास गुड़वाले	50
18.	राजा नाहरसिंह	52
19.	हुकमचन्द जैन	54
20.	राव उमराव सिंह	56
21.	महारानी लक्ष्मीबाई	58
22.	वीरांगना अजीजन	60
23.	गोंड राजा शंकरशाह	62
24.	राजा भास्करराव	64
25.	बेगम हजरतमहल	66
26.	धौलाना के शहीद	68
27.	तात्या टोपे	70
28.	कुँवरसिंह	72
29.	नारायणसिंह सोनाखान	74
30.	सुरेन्द्र साई	76
31.	राव तुलाराम	78
32.	गुरु रामसिंह	80
33.	बिशनसिंह कूका	82
34.	वसुदेव बलवंत फड़के	84
35.	तातिया भील उर्फ टण्ड्या	86
36.	महारानी तपस्विनी	88

वन्देमातरम् बोल

37.	बंकिमचन्द्र चट्टोपध्याय	92
38.	चाफेकर बंधु	94
39.	श्यामजी कृष्ण वर्मा	96
40.	मैडम भीखई जी रुस्तम कामा	98
41.	खुदीराम बोस	100
42.	मदनलाल ढींगरा	102
43	लाला हरदयाल	104
44.	बाबा गुरुदत्तसिंह	106
45.	शहीद रामरखा	108

46. विष्णु गणेश पिंगले 110

47. चम्पकरमण पिल्लै 112

48. बाबा भानसिंह 114

49. वीरेन्द्रनाथ चट्टोपध्याय 116

50. मोहम्मद बरकतुल्ला 118

51. भाई मेवासिंह 120

52. सोहनलाल पाठक 122

53. डॉ. मथुरासिंह 124

54. सूफी अम्बाप्रसाद 126

55. किशनसिंह गड़गज 128

56. बालगंगाधर तिलक 130

57. हनुमानप्रसाद पोद्दार 132

58. शंकराचार्य स्वामी भारतीकृष्ण तीर्थ 134

59. स्वामी चक्रधर मिश्र (राधा बाबा) 136

60. पुरुषोत्तमदास टंडन 138

अहिंसक क्रांति का उद्घोष

61. ब्रह्मबांधव उपाध्याय 142

62. चिदम्बरम पिल्लै 144

63. स्वामी श्रद्धानन्द 146

64. पंजाब केसरी लाला लाजपतराय 148

65. महावीरसिंह 150

66. यतीन्द्रनाथ दास 152

67. मोहनदास कर्मचन्द गाँधी 154

68. कस्तूरबा गाँधी 158

69. पंडित जवाहरलाल नेहरु 160

70. बल्लभभाई पटेल 162

71. लाला देशबंधु गुप्ता 164

72. डॉ. राजेन्द्रप्रसाद 166

73. पं. मदनमोहन मालवीय 168

74. लालबहादुर शास्त्री 170

75. सुभद्राकुमारी चौहान 172

76. मैथिलीशरण गुप्त 174

77. माखनलाल चतुर्वेदी 176

78. मातंगिनी हाजरा 178

79. त्रिलोकसिंह पांगती 180

80. कुशल कोवँर 182

81. कु. जयवती संघवी 184

82. ज्योतिर्मयी गांगुली 186

83. बहन सत्यवती 188

84. सागरमल गोपा 190

क्रांति की मशालें

85. शंभुधन फुंगलो 194

86. बिरसा मुण्डा 196

87. जनरल थंगल एवं टिकेन्द्रजीत सिंह 198

88. मास्टर अमीरचन्द 200

89. बसन्तकुमार विश्वास 202

90. अवधबिहारी 204

91. भाई बालमुकुन्द 206

92. जतिन्द्रनाथ (बाघा जतिन) 208

93. केसरीसिंह बारहट 210

94. प्रतापसिंह बारहट 212

95. गेंदालाल दीक्षित 214

96. अल्लुरि सीताराम राजू 216

97. रामप्रसाद 'बिस्मिल' 218

98. ठाकुर रोशनसिंह 220
99. अशफाक उल्ला खाँ 222
100. राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी 224
101. चन्द्रशेखर आजाद 226
102. शहीद सुखदेव 228
103. अमर शहीद राजगुरु 230
104. सरदार भगतसिंह 232
105. सरदार किशनसिंह 234
106. विशम्भर दयाल 236
107. मास्टर दा सूर्यसेन 238
108. प्रीतिलता वद्देदार 240
109. वैकुण्ठ लाल शुक्ल 242
110. शचीन्द्रनाथ सान्याल 244
111. ऊधमसिंह 246
112. गणेशशंकर विद्यार्थी 248
113. जयप्रकाश नारायण 250
114. डॉ. राममनोहर लोहिया 252
115. क्षेमचन्द्र सुमन 254
116. भगवतीचरण वोहरा 256
117. दुर्गा भाभी 258

शहीद बच्चों की गौरव गाथा

118. कुमारी मैना 262
119. वासुदेव हरि चाफेकर व महादेव रानाडे 264
120. कन्हाईलाल दत्त 266
121. अनन्त लक्ष्मण कन्हेरे 268
122. करतारसिंह सराबा 270
123. नलिनीकान्त बागची 272
124. गोपीमोहन साहा 274
125. हरिगोपाल बल 276
126. अनन्तसिंह 278
127. अब्दुल रसूल व जगन्नाथ शिंदे 280
128. हरिकिशन 282
129. बादल उर्फ सुधीर गुप्त 284
130. रामकृष्ण विश्वास 286
131. रोशनलाल मेहरा 288
132. गुरुदास राम अग्रवाल 290
133. मृगेन्द्रनाथ दत्त व अन्य साथी 292
134. काशीनाथ पगधरे व गोविंद ठाकुर 294
135. रमेशदत्त मालवीय 296
136. जनार्दन मामा 298
137. उदयचन्द जैन 300
138. दत्तू रंगारी 302
139. गुलाबसिंह 304
140. शंकर महाले 306
141. हेमू कालाणी 308
142. रामेश्वर बनर्जी 310
143. रामास्वामी 312

'चलो दिल्ली' नारा गूँज उठा

144. नेताजी सुभाषचन्द्र बोस 316
145. कोलकाता के मुख्य कार्यकारी अधिकारी 318
146. माण्डले जेल की कोठरी में 320
147. जनरल आफीसर कमांडिंग 322
148. भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के अध्यक्ष 324
149. मोहम्मद जियाउद्दीन के वेश में 326

150. आरलैंडों मैजोटा के वेश में 328
151. हिटलर से मुलाकात 330
152. पोस्टर-युद्ध, नई सूझ 332
153. मृत्यु को चुनौती 334
154. रासबिहारी बोस 336
155. 'आजाद हिन्द फौज' 338
156. सहगल, ढिल्लों व शाहनवाज 340
157. नौ-सेना क्रांति 342
158. कैप्टन मोहनसिंह 344
159. भगतराम तलवार (रहमतखान) 346

देश हित तिल-तिल जले जो......

160. भाई परमानन्द 350
161. अरविंद घोष 352
162. विजयसिंह 'पथिक' 354
163. पं. जगतराम भारद्वाज 356
164. राजा महेन्द्रप्रताप 358
165. बटुकेश्वर दत्त 360
166. सच्चिदानन्द 'हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' 362
167. चन्द्रसिंह गढ़वाली 364
168. विनायक दामोदर सावरकर 366
169. डॉ. गयाप्रसाद 368
170. रानी गाइडिन्ल्यू 370
171. 'स्वराज्य' पत्र ने इतिहास रचा -होतीलाल वर्मा व बाबूलाल हरि 372
172. पत्रकारों पर ब्रिटिश साम्राज्य का कहर लद्धाराम कपूर व मुंशीराम सेवक 374
173. खान अब्दुलगफ्फार खाँ 376
174. श्यामलाल गुप्त पार्षद 378
175. बाबूराव विष्णु पराड़कर 380
176. पं. सुन्दरलाल 382

रक्त का प्रथम अर्घ्य

1760 में अंग्रेजों द्वारा ज़बरदस्ती मालगुज़ारी वसूल करने का विरोध करके मातृभूमि पर रक्त का अर्घ्य चढ़ाने वाले 'जंगल महाल' (बंगाल, बिहार व उड़ीसा) के किसान थे, तो दूसरी ओर 1764 के अकाल में कम्पनी के गोदामों से अन्न लूट कर उसे भूखी जनता में बाँटते हुए शहादत देने वाले अनेक संत तथा फकीर थे। 1774 से 1855 तक जंगलों की भूमि को मुफ्त में ही हड़पने की नीति का विरोध करके सपरिवार अपने प्राणों की आहुति देने वाले संथाल (वर्तमान झारखंड) के वनवासी भी थे। इन्हीं किसान, संन्यासी - फकीर, वनवासी, कबीलों के सरदार, राष्ट्रभक्त जमींदार और जागीरदारों ने अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए अपने रक्त के अर्घ्य से 1857 के भावी स्वतंत्रता संग्राम की भूमिका तैयार की थी।

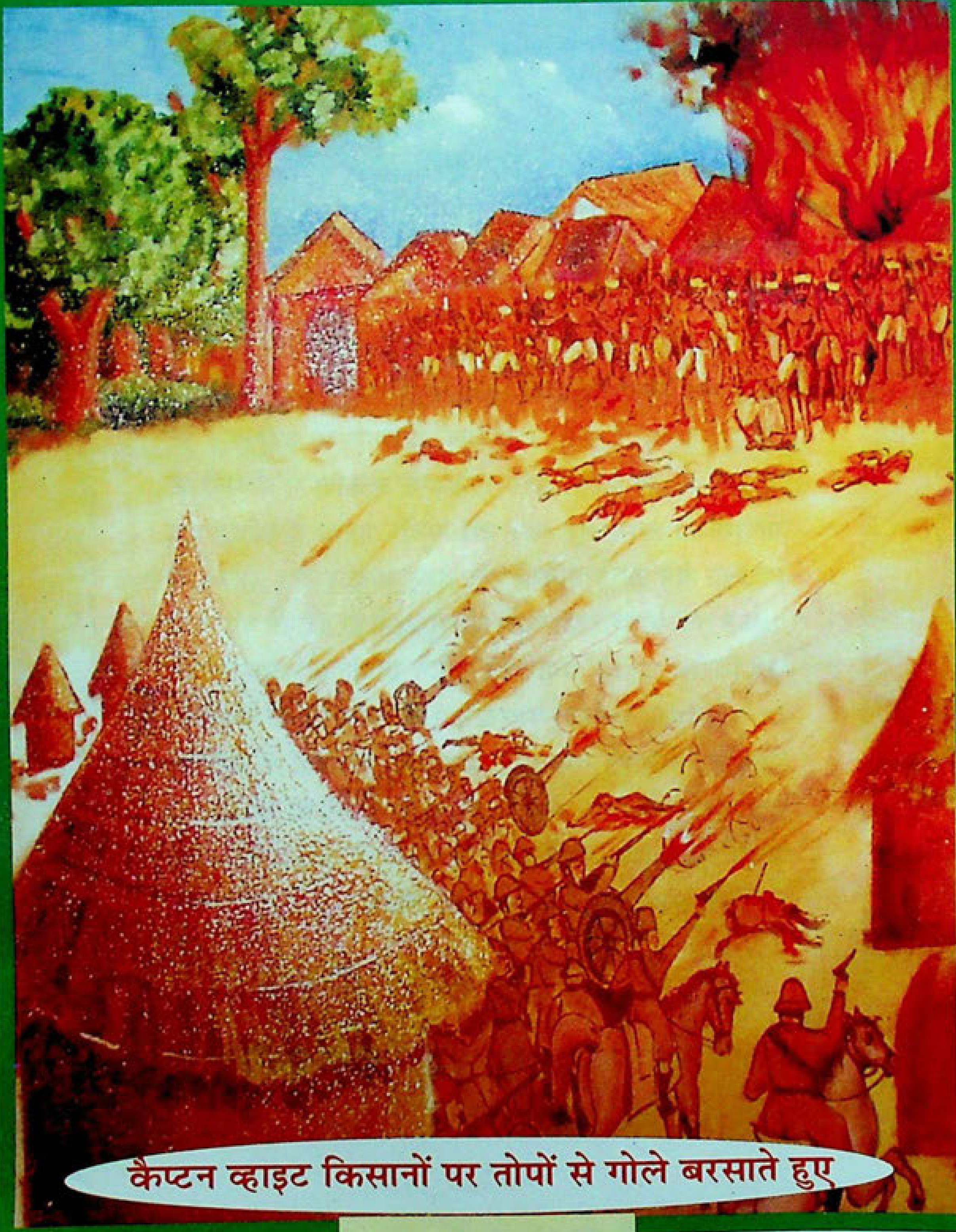

कैप्टन व्हाइट किसानों पर तोपों से गोले बरसाते हुए

जंगल महाल किसान आन्दोलन

स्वतंत्रता की बलि-वेदी पर रक्त का प्रथम अर्घ्य चढ़ाने का श्रेय भारतीय किसानों को जाता है। कहानी आरम्भ होती है 1757 के प्लासी युद्ध से। इस युद्ध में सिराजुद्दौला की पराजय के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी ने मीरजाफर और मीर कासिम को भारी रकम का प्रलोभन देकर मेदिनीपुर, चटगाँव और वर्दमान के क्षेत्रों की मालगुजारी वसूलने के अधिकार प्राप्त कर लिये। अब उन्होंने बलपूर्वक लगान वसूल करने का अभियान चलाया। पूर्ववर्ती मराठा शासकों के आधिपत्य में पूर्णतया संतुष्ट कृषक-समुदाय को अंग्रेजों का यह लूट-मार का व्यवहार भला कैसे सहन होता? असंतोष संघर्ष में बदला। कुछ कृषकों ने अंग्रेज अधिकारियों के व्यवहार से रुष्ट हो कर उनकी पिटाई कर दी। अंग्रेजों द्वारा लगान वसूल करने की खबर फैलते ही सौ कोस के जंगल में क्रांति की लपटें उठने लगीं। जंगल महाल के किसानों और जमींदारों ने मिल कर जगह-जगह मोर्चे संभाल लिये। लेकिन वह लोग संगठित नहीं थे। उन्हें अलग-अलग जगहों पर सशस्त्र अंग्रेजों के दलों से मुकाबला करना पड़ा। अंत में कैप्टन मार्टिन ह्वाइट ने फौज बुला ली और गाँवों पर तोपों से गोले बरसाने आरम्भ कर दिये। किसानों के घर धू-धू कर आग की लपटों में झुलसने लगे। अंग्रेज अधिकारियों ने निरीह बूढ़ों, अपंगों व बच्चों को भी नहीं छोड़ा, उनकी हत्या कर दी। समर्थ लोगों ने जंगलों में भाग कर अपनी जान बचाई। वास्तव में भारतीय सशस्त्र क्रांति की यही भूमिका थी जिसका आरम्भ 1760 से ही हो गया था। लेकिन विडम्बना यह है कि अधिकांश इतिहासकारों ने इसे जंगल महाल का किसान विद्रोह कह कर इसकी राष्ट्रीय महत्ता को कम कर के आँकने का प्रयास किया है।

1764 के अकाल के समय संन्यासी गोदामों से अन्न लूटकर जनता में बांटते हुए।

संन्यासी आन्दोलन

1764 में बंगाल में भयंकर अकाल से भूखों मर रही जनता की जीवन-रक्षा का संन्यासियों ने बीड़ा उठाया। उन्होंने टोलियों में टोह लगा कर खाद्य भंडारों से खाद्य सामग्री लूट-लूट कर जनता में बाँटनी आरम्भ कर दी। इससे कुपित हो कर कम्पनी सरकार ने संन्यासी, फकीरों को देखते ही गोली मारने का आदेश दे दिया। अतः संन्यासियों ने अपना संगठन और अधिक मजबूत कर लिया। चार-चार व छःछः हजार की संख्या में यह विप्लवी कम्पनी की कोठियों और छावनियों पर अचानक आक्रमण करते, हथियारों को लूटते, अंग्रेजों की हत्या कर देते और जंगलों में छिप जाते। उन्होंने केवल तीरकमानों से, तोपों, बमों व बन्दूकों से सुसज्जित अंग्रेज सेना का डट कर मुकाबला किया। यह विप्लवी पैदल, घोड़ों, बैलगाड़ियों और ऊँटों आदि पर चलते थे। इन दलों के साथ संघर्षों में अंग्रेज सेना के कैप्टन टिमोथी, मि०बौनट, लै० कीथ, कै० टामस व सेना नायक मेजर डगलस आदि अनेक अधिकारी मारे गये।

सन 1770 के दशक में कम्पनी ने विद्रोही रजवाड़ों को हटा कर अपने चमचों को जमींदार बना उन्हें ही मालगुजारी वसूलने के अधिकार दे दिये। वह कम्पनी के संरक्षण में प्रजा से मनमाना लगान वसूलने लगे। अतः इन्हीं संन्यासियों ने एक और अभियान चलाया। वह कई-कई हजार के गिरोह में इन नये जमींदारों के यहाँ छापा मारते, बहीखाते देखते और उनके खजाने से जनता से वसूली गई रकम आना-पाई गिन कर एक कौड़ी भी अधिक नहीं, निकाल कर जनता में बाँट देते। कुछ राशि बचा कर जंगलों में प्याऊ व धर्मशालाएँ बनवा देते। विडम्बना यह है कि ऐसे राष्ट्रभक्त संन्यासियों को अंग्रेज इतिहासकारों की नकल कर आज भी हमारा इतिहास डाकू एवं लुटेरे ही लिखता आ रहा है। हजारों की संख्या में मारे गये इन संन्यासियों के लिये 'बलिदानी' जैसा शब्द इतिहास से क्यों गायब है? इसका उत्तर हमें आने वाली पीढ़ी को देना ही होगा।

तिलका माँझी

तिलका माँझी का जन्म बिहार में भागलपुर के तिलकपुर गाँव में हुआ था। भागलपुर क्षेत्र में संथाल पहाड़ों को काट-काट कर खेती योग्य बनाते और अंग्रेज बार-बार उस पर कब्जा कर लेते। इसी कारण तिलका माँझी के हृदय में अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष की आग सुलग उठी। अभी तक अंग्रेजों के विरुद्ध अलग-अलग लोग विरोध कर संघर्ष करते रहे थे। तिलका माँझी ने प्रथम बार 500 शक्तिशाली साहसी वनवासियों की एक सेना तैयार कर ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी। मजिस्ट्रेट क्लीवलैंड उसे गिरफ्तार करने निकल पड़ा। तिलका माँझी ने अपने धनुष बाण से क्लीवलैंड का वध कर दिया।

तिलका माँझी ने छापामार युद्ध नीति से अंग्रेज सेना को टक्कर दी। उसने भागलपुर और संथाल परगने की चप्पा-चप्पा भूमि से अंग्रेजों को भगा दिया। आर्थर कूट ने तिलका को गिरफ्तार करने का दायित्व संभाला। रात्रि को संथाल नृत्य-गाने में मस्त थे। तिलका भी वहाँ मेहमान था। तभी पुलिस ने घेरा डाल कर आक्रमण कर दिया। संथालों ने अपनी जान पर खेल कर तिलका को बच निकलने का अवसर दे दिया। अनेक संथाल वीरगति को प्राप्त हुए।

एक बार पुन: तिलका की अंग्रेज सेना से आमने-सामने टक्कर हुई। बड़ी संख्या में संथाल वीरों ने अपने प्राणों की आहुति दे दी लेकिन कदम पीछे न हटाया, पीठ न दिखाई। तिलका माँझी पकड़े गये। उन्हें घोड़े की पूँछ से बाँध कर भागलपुर की सड़कों पर खदेड़ा गया। उसके बाद बरगद के पेड़ पर लटका कर 1784 में फाँसी दे दी गई। यह वनवासी संघर्ष का प्रथम चरण था।

पांड्याम कोट्टाबोमन

3 January 1790 to 16 October 1799

तिनैवेली क्षेत्र अब तमिलनाडु में आता है। पांड्याम कोट्टाबोमन अर्काट के नवाब के जागीरदार थे। इन्होंने अंग्रेजों की राज्यों को हड़पने की नीति का विरोध किया। इसी हेतु लै० क्लार्क से इनका संघर्ष हुआ। पांड्याम कोट्टाबोमन ने 1798 में अपनी ही राजधानी रामनद (Ramnad) में लै० क्लार्क को मार गिराया। उसके बाद मेजर बेनर मैन ने पांड्याम कोट्टाबोमन के विरुद्ध बड़ी भारी सेना से चढ़ाई कर दी। एक सप्ताह तक संघर्ष चलता रहा। बाद में कोट्टाबोमन को भाग कर जान बचानी पड़ी। अन्ततः पांड्याम कोट्टाबोमन को उसके दो भाइयों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। कोट्टाबोमन को फाँसी दे दी गई।

कोट्टाबोमन के बाद भी पालीगर क्रांति शांत नहीं हुई। जनता ने जेल पर आक्रमण कर उनके दोनों भाइयों को जेल से मुक्त करा लिया। कई महीने तक यह संघर्ष चलता रहा। अंत में पांड्याम कोट्टाबोमन के भाई को एवं उनके कमांडरों को भी गिरफ्तार कर फाँसी पर लटका दिया गया।

फतेह अली टीपू

10 December 1750 to 4 May 1799

हैदर अली का बड़ा बेटा फतेह अली टीपू इतिहास में टीपू सुलतान के नाम से प्रसिद्ध हुआ। छोटी आयु में ही टीपू ने अपने पिता हैदर अली से छीना हुआ मंगलौर न केवल अंग्रेजों से वापस छीना अपितु उसने अंग्रेज सेनापति सहित उनके 46 अंग्रेज अधिकारियों, 680 अंग्रेज सैनिकों तथा 6000 से भी अधिक कम्पनी के हिन्दुस्तानी सिपाहियों को भी कैद कर लिया। वह अपने पिता हैदर अली के साथ अंग्रेजों से किले पर किले फतेह करता गया। टीपू ने एक ही महीने में महीमंडल गढ़, कैलाश गढ़, सातगढ़, आदि अंग्रेजों के मजबूत ठिकानों पर अपना कब्जा कर लिया। अंग्रेज लोग टीपू के नाम से इतना भयभीत थे कि अंग्रेज माताएं टीपू का भय दिखा कर बच्चों से अपनी बात मनवा लेती थीं। अंग्रेजों ने समझ लिया कि टीपू सुलतान के सैन्य-कौशल के आगे उनकी विजय असंभव है। अत: 1784 में अंग्रेजों ने टीपू से संधि कर ली। टीपू रणवीर था लेकिन उदार और नातजुर्बेकार था। क्योंकि वह हर किले को जीत कर शत्रु सेना को पराजित कर, शक्ति विहीन कर उन्हें छोड़ देता था। संधि के बाद टीपू ने जीते हुए अधिकतर क्षेत्रों को वापस लौटा दिया। यह उसकी अपरिपक्वता का उदाहरण है।

कम्पनी अधिकारी हैदराबाद के निजाम और मराठों को टीपू के विरुद्ध भड़काने में सफल हुए। 1792 में टीपू को पेशवा, निजाम व अंग्रेज तीनों की सेनाओं से एक साथ युद्ध करना पड़ा। 1799 में श्री रंगपट्टन में अंग्रेजों से टीपू का अंतिम युद्ध हुआ। 4 मई, 1799 को टीपू युद्ध लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ।

अंग्रेजों ने टीपू एवं हैदरअली के चरित्र को लांछित कर लिखने हेतु फारसी के विद्वान मिरजा इकबाल को धन देकर खरीदा। उसी के द्वारा उनके चरित्र को तोड़मरोड़ कर प्रस्तुत करवाया गया।

टीपू प्रायः कहा करता था ''दो सौ वर्ष भेड़ की तरह जीने की बजाय दो दिन शेर की तरह जीना ज्यादा अच्छा है।'' इस कथन को उसने सिद्ध करके दिखाया।

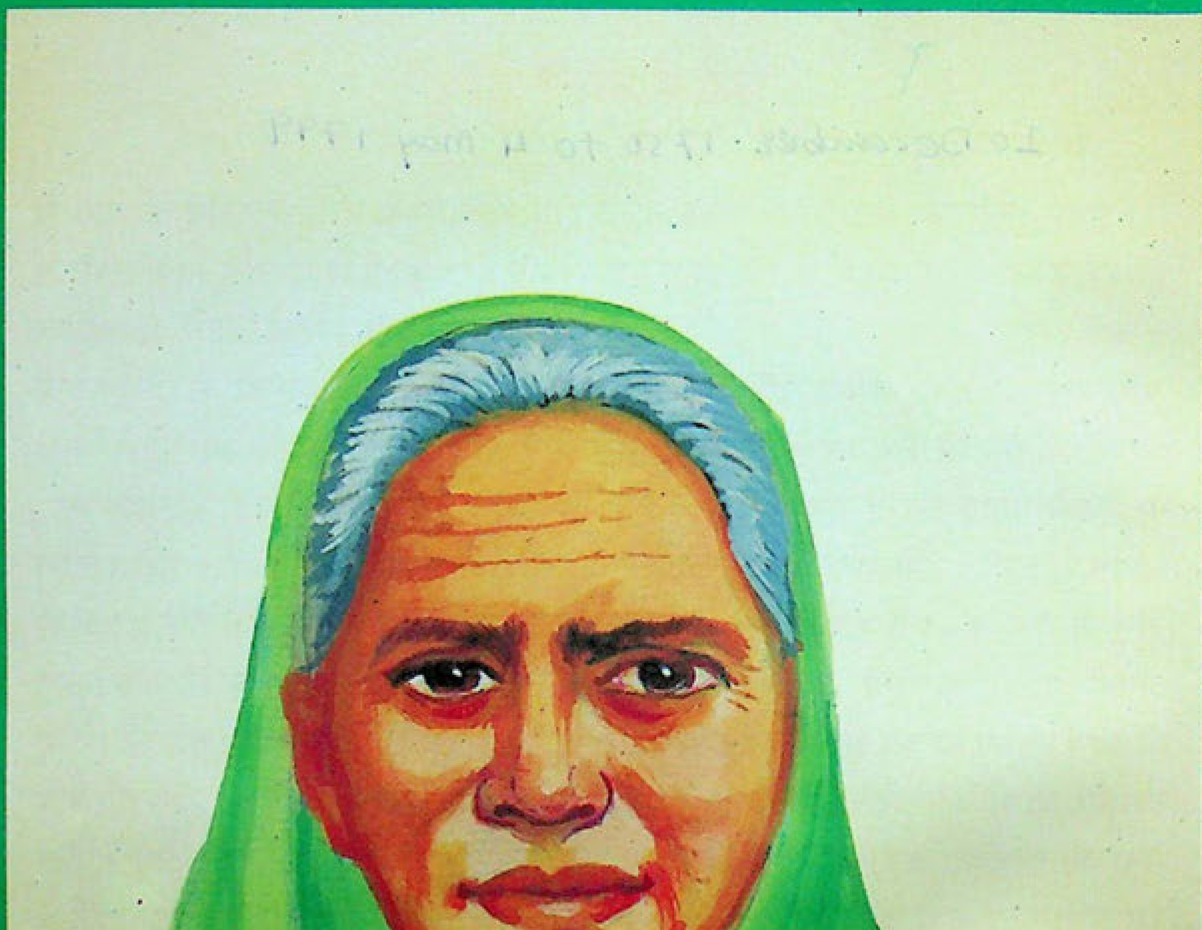

रानी चेनम्मा

1778 to 21 February 1829.

रानी चेनम्मा तत्कालीन मैसूर राज्य (अब कर्नाटक) में कित्तूर की महारानी थी। कित्तूर के शासक मल्लसर्ज और अपने पुत्र की मृत्यु के पश्चात् रानी चेनम्मा ने एक समारोह में अपने दत्तक पौत्र गुरुलिंग मल्लसर्ज का राज्याभिषेक कर दिया। अंग्रेज सरकार ने इसे स्वीकार न कर रानी पर कुछ शर्तें थोप दीं। थैकरे ने 23 अक्तूबर, 1824, को कित्तूर के दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। रानी ने अपने सैनिकों को ललकारा - 'जिस दिन के लिए वीर माताएँ अपने पुत्रों को जन्म देती हैं वह दिन आ गया है। किले का फाटक खुलते ही पहले दुश्मन की तोपों पर कब्जा कर उनका मुँह मोड़ दो।' रानी के सैनिकों ने वैसा ही किया। अंग्रेज थैकरे मारा गया। मुख्य सैनिक अधिकारी स्टीवेंसन व ईलियट पकड़े गए। अंग्रेजों की हार हुई।

30 नवंबर को पुन: अंग्रेज सेना ने कित्तूर को घेर लिया, किले पर 200 भारी तोपों के गोले आग उगलने लगे। लेकिन अंग्रेजों की यहाँ भी पराजय हुई। अगली बार अंग्रेजों ने गुप्तचरों के माध्यम से कित्तूर के किलेदार शिव वासप्पा को लालच दे कर अपने पक्ष में कर लिया। भारी सैन्य बल के साथ कित्तूर पर पुन: आक्रमण किया गया। रानी के ही कुछ सैनिकों ने विश्वासघात किया। जिसके कारण रानी को हार स्वीकार करनी पड़ी। अंग्रेजों ने रानी को गिरफ्तार कर लिया। रानी को भारी सैनिक पहरे में बेलगाँव के दुर्ग से धारवाड़ ले जाया जा रहा था। रानी को मुक्त कराने के लिए हथियारों से सुसज्जित सेना के विरुद्ध निहत्थी जनता जान पर खेल गई, लेकिन अपनी प्यारी रानी को मुक्त न करा सकी। ब्रिटिश क्रूरता का शिकार हो कर रानी ने झुकना स्वीकार न किया। अन्तत: धारवाड़ की जेल में ही 21 फरवरी, 1829 को रानी स्वर्ग सिधार गई।

23 अक्तूबर को रानी ने विश्व की सबसे बड़ी शक्ति को ललकारा था। अत: दक्षिण भारत में यह दिन रानी चेनम्मा की याद में 'महिला दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

बैरकपुर सैनिक मुख्यालय

यहाँ 1824 में 700 भारतीय सैनिकों को तोप से उड़ाया गया।

यहीं से 1857 में मंगलपांडे ने सैनिक क्रान्ति की मशाल प्रज्जवलित की।

बैरकपुर की प्रथम सैनिक क्रांति

भारत की जिस पावन माटी से 1857 के मुक्ति संग्राम की ज्वाला फूटी थी उसी बैरकपुर छावनी के भारतीय सैनिकों ने उससे तैंतीस वर्ष पूर्व हुगली नदी के किनारे स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अपने रक्त के अर्घ्य से भावी संग्राम की भविष्यवाणी कर दी थी।

24 फरवरी, 1824 को लार्ड एमहर्स्ट (तत्कालीन गवर्नर जनरल) ने बर्मा पर अधिकार करने हेतु युद्ध छेड़ दिया। बंगाल आर्मी की तीन पलटनों को समुद्री मार्ग से बर्मा के मोर्चे पर जाने का आदेश मिला। इन पलटनों में अधिकतर अवध व बिहार के कुलीन जातियों के लोग थे। इनमें समुद्र पार जाना अधर्म माना जाता था। अत: सैनिकों ने अपनी अर्जी लिख कर कमांडर-इन चीफ के पास भेजी। जब उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया तब इन सिपाहियों ने तुलसी और गंगाजल हाथ में ले कर शपथ ली कि कोई भी जहाज के ऊपर पैर न रखेगा। कम्पनी अधिकारियों को इसका पता चल गया।

2 नवम्बर को भारतीय सिपाहियों की 47 वीं रेजीमेंट को परेड के लिए बुलाया गया। तभी परेड में ही उनपर अंग्रेज पलटन ने गोलियों की वर्षा कर दी। सिपाहियों ने भागने का प्रयास किया तो तोपों के गोलों ने उनका मार्ग रोक दिया। सात सौ सैनिक तोप से उड़ा दिये गये। भगदड़ मचने पर अनेक सैनिक हुगली नदी में डूब गये। शेष गिरफ्तार कर लिये गये। बलिदान हमेशा बाद में अपना रंग लाता है। 1824 में सैनिकों की कुर्बानी से प्रेरणा पा बुंदेलखंड में जालौन के एक जमींदार ने, नर्मदा तट पर पिंडारी सरदार शेखदुल्ला ने, मराठों के वीर चिमना ने भीलों की मदद से क्रांति का बिगुल बजा दिया। अंग्रेजों के अत्याचारों से त्रस्त कित्तूर (आज के मैसूर का एक भाग) राज्य की रानी चेनम्मा ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

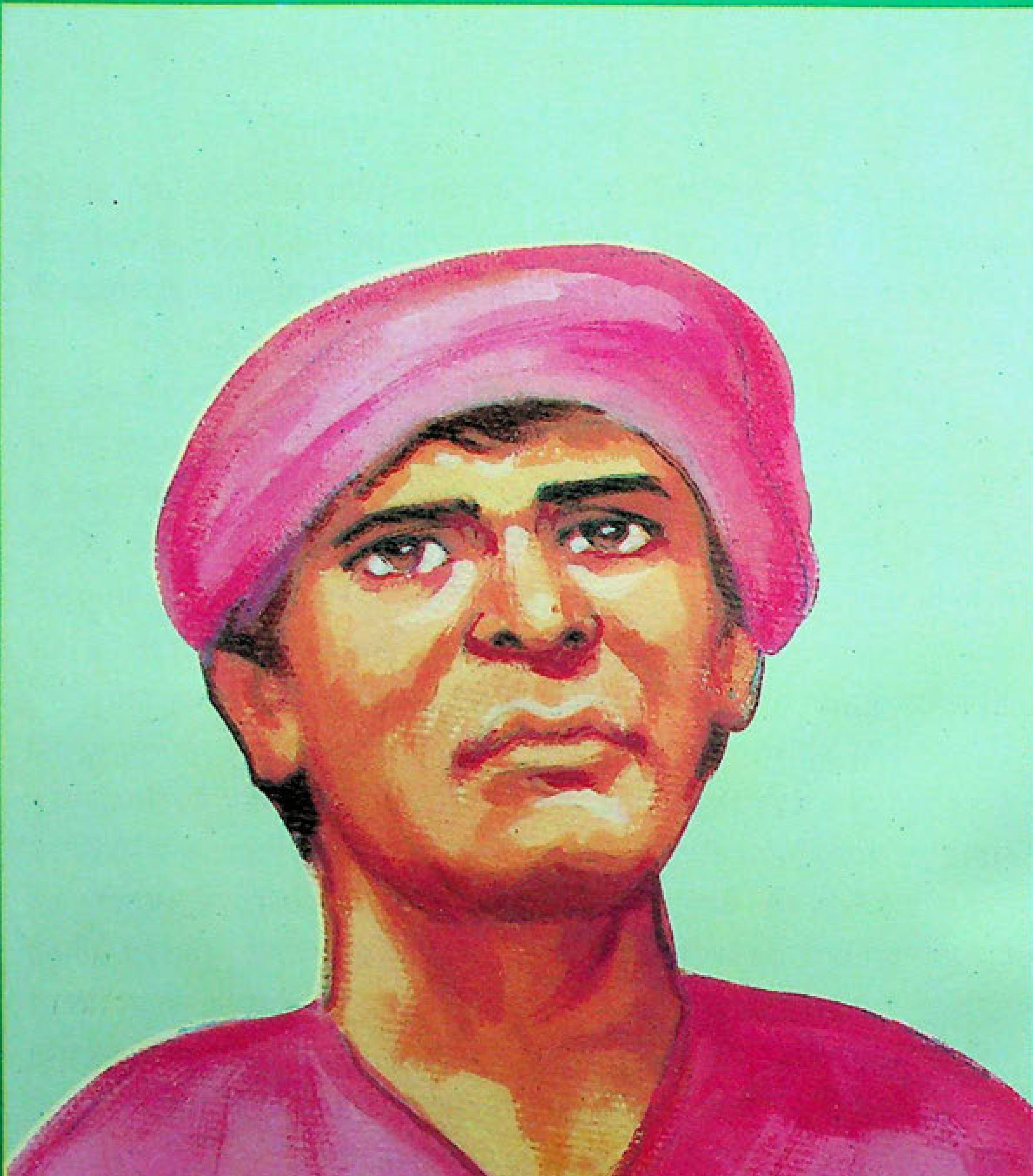

बुद्धू भगत

बुद्धू भगत का जन्म रांची (झारखंड) के सिलालाई गांव में हुआ था। वे उराँव जन-जाति के थे। अंग्रेजों ने जन-जातियों के साथ जानवरों जैसा व्यवहार किया हुआ था। बुद्धू भगत ने जनजातियों की जमीनें हड़पने का विरोध किया। इन्होंने 1828 में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। जन-जातियों ने एकत्र होकर अपनी जन्मभूमि की रक्षा की शपथ ली। समस्त जन-जातियों ने बुद्धू भगत के नेतृत्व में घोषणा कर दी, ''अंग्रेज को देखते ही उस पर हमला बोल कर उसे वहीं खत्म कर दो।'' ब्रिटिश कम्पनी सरकार ने भी घोषणा कर दी, 'बुद्धू भगत को जीवित या मृत पकड़वाने वाले को इनाम दिया जायेगा।' कैप्टन इम्पे ने घुड़सवार सैनिक उसके ठिकाने पर दौड़ा दिये। इन सैनिकों ने जनजातियों के डेरों पर भारी विनाश लीला मचाई। उनकी जवान बहू-बेटियों के साथ अमानवीय कृत्यों से सारा क्षेत्र थरथरा उठा। हर शाम उनके डेरों पर चीख पुकार सुनाई पड़ती। एक दिन विनाश लीला की खबर सुन कर बुद्धू भगत डेरे पर आया। इम्पे को पता चला। उसने सारे गाँव को घेर लिया, गाँव वालों ने बुद्धू भगत को बचाने के लिये अपने को गोलियों की बौछारों में झोंक दिया और उसे बचा कर गाँव से सकुशल निकाल दिया। लोगों के इस साहस की प्रशंसा अंग्रेजों ने भी की। बाद में बुद्धू भगत और उनके भाई लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए। अंग्रेजों ने उनके सर काट कर पिठौरिया के सैनिक शिविर में लटका कर रखे। जिससे कि भयभीत होकर भविष्य में कोई भी ऐसा साहस न कर सके।

मुझे तोड़ लेना वन-माली उस पथ पर तुम देना फेंक
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जायें वीर अनेक।

— पं. माखन लाल चतुर्वेदी

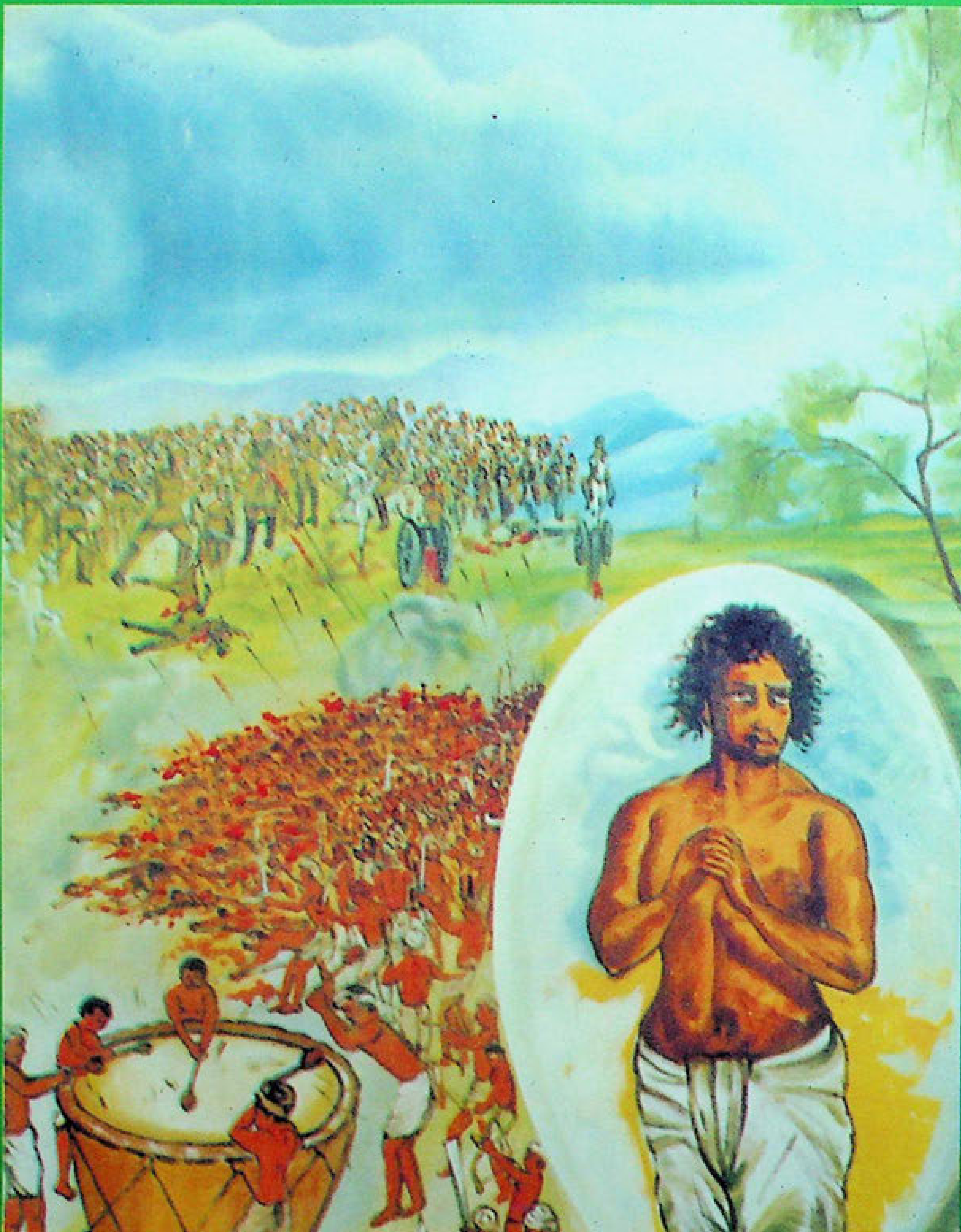

सिद्धू और कान्हू

संथाल बिहार का वनवासी क्षेत्र है। यहाँ के जमींदारों ने अंग्रेजों के संकेत पर वनवासियों का खूब शोषण किया। रकम पर 50 से 500 प्रतिशत तक ब्याज वसूला जाता था। न देने पर संपत्ति हड़प ली जाती थी।

सिद्धू और कान्हू दो सगे भाइयों ने इस शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई। फलस्वरूप सिद्धू व कान्हू के नेतृत्व में 30 जून, 1855 को 10 हजार संथालों की सभा में अंग्रेजों की सत्ता को नकार कर संथाल राज्य की घोषणा कर दी गई। शालवृक्ष की टहनी घुमा कर क्रांति संदेश घर-घर पहुँचाया गया। तदनुसार लगभग 50 हजार की संख्या में संथाल अंग्रेजों का विनाश करते हुए कोलकाता की ओर चल पड़े।

मेजर बूरो के साथ 5 घंटे तक खूनी संघर्ष में आदिवासियों ने अंग्रेज सेना को परास्त कर पकूर के किले पर अधिकार कर लिया। कम्पनी के अधिकारियों में घबराहट फैल गई। बढ़ते हुए जन सैलाव को रोकने में अनेक अधिकारी जान गँवा बैठे। सारा क्षेत्र सेना के सुपुर्द कर 'मार्शल ला' लागू कर दिया गया। इसके बाद कत्ले-आम आरम्भ कर दिया गया। प्रो० नटराजन के अनुसार इस युद्ध में 15 से 25 हजार के लगभग संथालों ने शहादत प्राप्त की। हंटर ने अपनी पुस्तक 'एनल्स आफ रूरल बंगाल' में लिखा है—

''संथालों को आत्मसमर्पण जैसे, किसी शब्द का ज्ञान नहीं था। जब तक उन का ड्रम बजता रहता, वह युद्ध में रत रहते व जब तक उनका एक भी साथी बचा वह लड़ता ही रहता। ब्रिटिश सेना में एक भी सैनिक ऐसा न था जो इस साहसपूर्ण बलिदान पर शर्मिंदा न हुआ हो।'' इस संघर्ष में सिद्धू, कान्हू, चाँद और भैरव चारों भाइयों ने भी शहादत प्राप्त की।

1857 का आग्नेय झंझावात

पिछले 90 वर्षों में क्रांतिवीरों ने अपने रक्तिम अर्घ्य से स्वाधीनता आन्दोलन की जो भूमिका तैयार की थी उस की चरम परिणति 1857 के आग्नेय झंझावात के रूप में प्रकट हुई। इस झंझावात ने भारतीय स्वतंत्रता की यज्ञाग्नि की ज्वाला को समस्त भारत में फैला दिया। जिसने समूचे भारत में ऐसी चेतना जागृत कर दी कि एक बार यहाँ का जन-जन अपने समस्त मतभेदों को भूल कर अंग्रेज कम्पनी की गुलामी के जुए को उतार फेंकने के लिए व्यग्र हो उठा।

पहले बैरकपुर और फिर मेरठ में आरम्भ हुई इस यज्ञाग्नि की ज्वाला में कम्पनी शासन धू-धू कर जल उठा। 'हर हर महादेव' तथा 'अल्लाह हो अकबर' ध्वनियाँ गूँजने लगीं। जनता जनार्दन रूपी महादेव शंकर का तांडव आरम्भ हुआ। इस प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की यज्ञाग्नि में असंख्य भारतीयों ने अपने प्राणों की आहुति दे दी। अन्ततः कम्पनी शासन से तो मुक्ति मिली, लेकिन देश का दुर्भाग्य! भारत पुनः ब्रिटिश साम्राज्य के चंगुल में जा फँसा।

मंगल पांडे

नाहरसिंह

बेगम हजरतमहल

राव तुलाराम

जन क्रांति का प्रचार

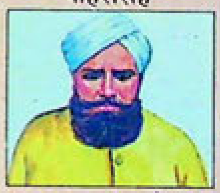
हुकमचन्द जैन

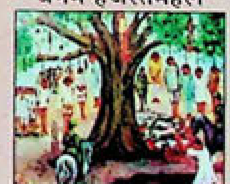
धौलाना के शहीद

गुरू रामसिंह

अजीमुल्ला खाँ

धनसिंह कोतवाल

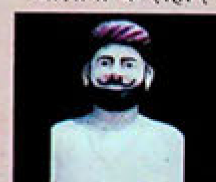
राव उमरावसिंह

बिशनसिंह कूका

नाना साहब पेशवा

महारानी लक्ष्मीबाई

तात्या टोपे

वसुदेव बलवंत फड़के

1857 की क्रांति

वीरांगना अजीजन

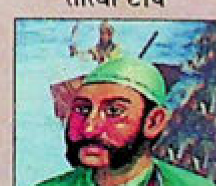
कुंवरसिंह

तातिया भील

बहादुरशाह जफर

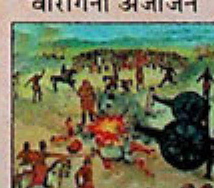
गोंड राजा शंकर शाह

नारायणसिंह सोनाखान

रानी तपस्विनी

रामजीदास गुडवाले

राजा भास्कर राव

सुरेन्द्र साईं

1857 की प्रथम आहुति - मंगल पांडे

मंगल पांडे का जन्म 19 जुलाई, 1927 को फैजाबाद के सुरडरपुर गांव (उ.प्र.) में हुआ था। वे बैरकपुर में 34वीं रेजीमेंट में सिपाही था। ब्रिटिश सेना के भारतीय सैनिकों में गाय और सूअर की चर्बी से चिकनाए हुए कारतूसों के प्रयोग पर असंतोष था। सभी को 31 मई का इंतजार था। लेकिन मंगल पांडे अपनी भावनाओं से नियंत्रण खो बैठा। उसने 29 मार्च को परेड ग्रांउड में अंग्रेजी सत्ता को खुली चुनौती दे दी। उस ने सार्जेंट मेजर ह्यूसन एवं लै० बाग को घायल कर रण-घोष करते हुए भारतीय सैनिकों को चेताया, ''धर्म और ईमान पर हैवानियत के अत्याचारों को कब तक बर्दाश्त करते रहोगे? उठो! जागो! समाप्त कर दो इस दानवी सत्ता को!'' भारतीय सैनिकों में से केवल ईश्वरी पांडे ने मंगल पांडे का साथ दिया। लेकिन तुरंत यूरोपियन सैनिकों ने मंगल पांडे को गिरफ्तार कर लिया। उसने अपनी बन्दूक से आत्म-बलिदान करने का असफल प्रयास किया। मंगल पांडे को दिनांक 8 अप्रैल, 1857 को बैरकपुर में ही फाँसी पर लटका दिया गया। 22 अप्रैल को ईश्वरी पांडे को भी फाँसी दे दी गई। इसके बाद 19वीं और 34वीं रेजीमेंट के भारतीय सैनिकों से हथियार रखवा लिये गये। लेकिन उन सैनिकों ने स्वयं भी सहर्ष अंग्रेजी दासता अस्वीकार कर अपनी वर्दी फाड़ दी तथा दासता की प्रतीक टोपियाँ हवा में उड़ा कर फेंक दीं। सैकड़ों सैनिकों ने फाँसी का फंदा चूम लिया।

मंगल पांडे की पत्नी विद्या को सरकारी यातनाओं एवं पड़ोसी व समाज की उपेक्षा के कारण अपने एक मात्र पुत्र कीर्ति को लेकर गाँव छोड़ना पड़ा। बाद में वह जयपुर आ गई और वहीं के महाराणा माधोसिंह के प्रमुख अमात्य राम प्रताप पुरोहित ने उनके रहने-खाने की व्यवस्था की। संभवतः उनके परिवार के श्री राम आज भी राजस्थान में रह रहे हैं।

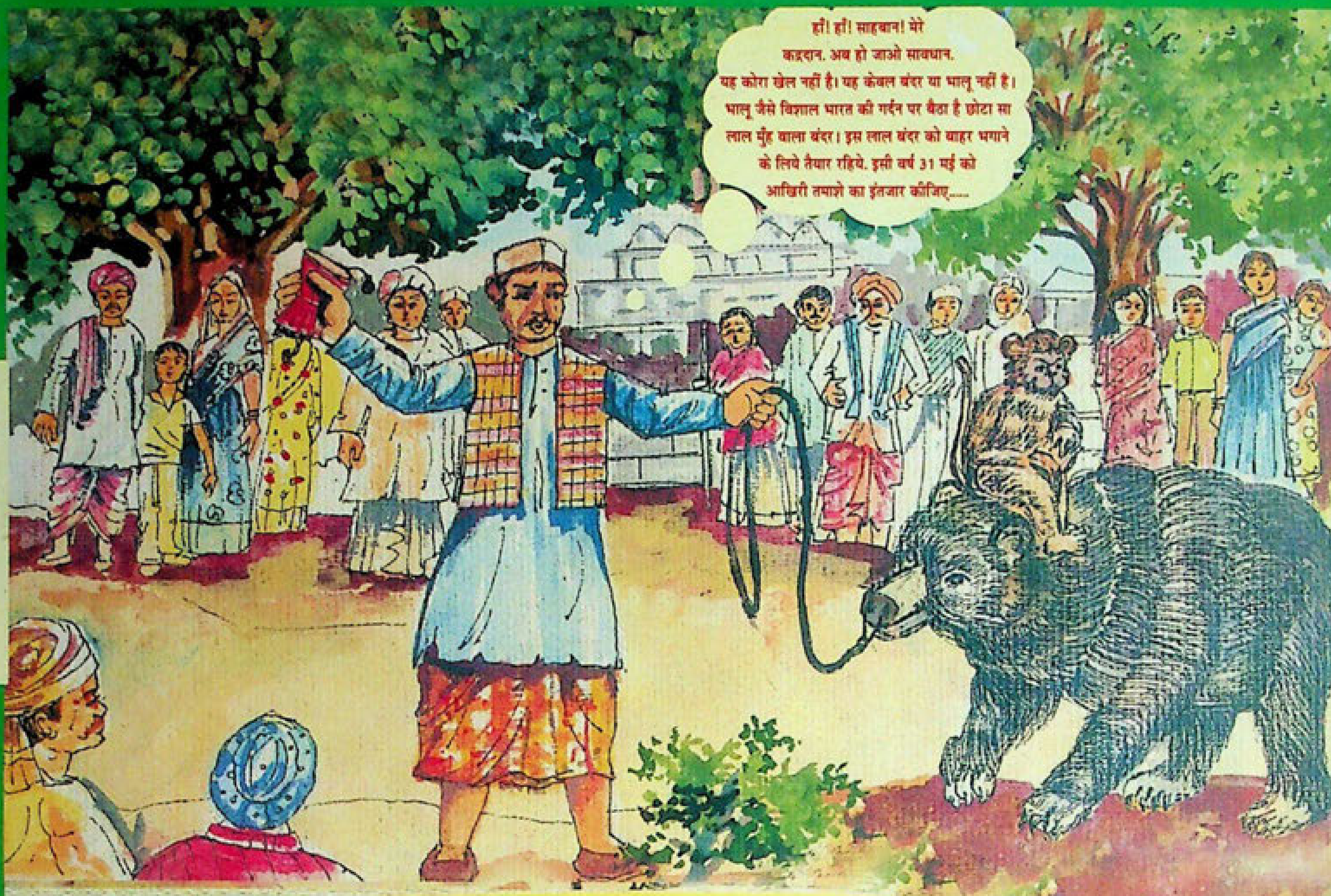

एक मदारी 1857 की जन-क्रांति की सांकेतिक भाषा में सूचना देता हुआ

1857 की जन-क्रांति की योजना

ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों ने समस्त भारत में ईसाईयत के प्रचार का जाल फैला रखा था। उधर एक-एक कर सारी रियासतों को कम्पनी हड़पती जा रही थी। अतः सारे भारत में ही कम्पनी शासन के विरुद्ध भारी असंतोष था। कम्पनी के बर्बर शासन से मुक्ति पाने हेतु 1856 में बिठूर के महल में गुप्त योजना बनी। नाना साहब, अजीमुल्ला खाँ, तात्या टोपे व राव साहब ने 31 मई, 1857 के दिन समस्त भारत के नगरों,ग्रामों एवं सैनिक छावनियों में अंग्रेजों के विरुद्ध एक साथ संघर्ष का ताना-बाना बुन दिया। इस क्रांति का संदेश देने हेतु तीर्थाटन के बहाने नाना साहब के साथ 400 क्रांतिवीरों का दल भारत-भ्रमण पर निकल पड़ा। इस क्रांति की तिथि की सूचना के माध्यम बने जनता के लिए 'आटे की चपाती' एवं सैनिकों के लिए 'लाल कमल का फूल'। क्रांति का संदेश जन-जन तक पहुँचाने हेतु गुप्तचर के रूप में वाहक बनाया गया संन्यासी-फकीरों, पीर-मौलवियों, मदारी व भिखारियों को। सैनिकों में यह संदेश पहुँचाने हेतु पुजारियों (धार्मिक अनुष्ठान कराने के बहाने), संत व महात्माओं तथा कुशल नर्तकियों को चुना गया। सभी को अपनी-अपनी भाषा में एक ही संदेश देना था- ''31 मई, 1857 को सूर्योदय के साथ ही सभी एक साथ अंग्रेज, कम्पनी अधिकारियों के विरुद्ध क्रांति का उद्घोष कर दें।''

आटे की चपातियों और कमल के फूलों का आदान-प्रदान समस्त भारत में इस गोपनीय ढंग से हो गया कि ब्रिटिश अधिकारियों को अन्त तक पता ही न चला कि आखिर इस सब का क्या प्रयोजन है?

अजीमुल्ला खाँ

अजीमुल्ला खाँ का जन्म सन् 1820 में कानपुर (उ.प्र.) में हुआ था। उनके पिता राज-मिस्त्री थे। माता-पिता के निधन के बाद 9 वर्ष का अजीम हेलर्सडेन अंग्रेज के घर बावर्ची का काम करने लगा। हेलर्सडेन की कृपा से वह बावर्ची के कार्य के साथ-साथ पढ़ाई भी करता रहा एवं एक स्कूल में अध्यापक नियुक्त हो गया। उसकी विद्वत्ता के कारण कानपुर के नाना साहब ने अजीमुल्ला खाँ को अपना कानूनी सलाहकार नियुक्त कर लिया।

नाना साहब ने अपनी पेंशन बहाल कराने हेतु अजीमुल्ला खाँ को लंदन भेजा। वहाँ उन्हें सतारा के महाराज प्रतापसिंह के वकील रंगोजी बापू मिले। ब्रिटिश संसद से दोनों को निराशा हाथ लगी थी। अतः लन्दन के एक होटल में दोनों ने योजना बनाई। उन्होंने निश्चय किया कि समस्त भारत के राजे-महाराजे, जनता व शाही सेना के भारतीय सैनिक एक ही दिन व एक ही साथ अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांति का उद्घोष कर दें तो कम्पनी शासन से भारत उसी दिन मुक्त हो सकता है। इस योजना को साथ लेकर अजीमुल्ला खाँ इंग्लैंड से टर्की व रूस गये। वहाँ की सरकारों से भारत के स्वतंत्रता युद्ध में मदद हेतु आश्वासन लेकर वह भारत लौटे। उन्होंने भारत की सहायता हेतु इटली व मिस्र की सरकारों से पत्र-व्यवहार भी किया।

पूर्व निर्धारित तिथि से पहले ही 10 मई, 1857 को मेरठ से क्रांति का उद्घोष हो गया। समस्त उत्तर भारत सशस्त्र क्रांति की चपेट में आ गया।

कानपुर में क्रांति का उद्घोष होने पर अजीमुल्ला खाँ ने युद्ध वेश धारण कर अंग्रेजों से आमने-सामने युद्ध किया। लेकिन बाद में उन्हें भूमिगत होना पड़ा। भूमिगत रहकर नेपाल की ओर निकल गये। संभवतः 1859 में भुरवल (नेपाल) में उन्होंने अंतिम श्वाँस ली।

धनसिंह कोतवाल

धनसिंह का जन्म मेरठ जनपद (उ. प्र.) के पांचली गांव में लम्बरदार मोहरसिंह गुर्जर के पुत्र के रूप में हुआ। 1857 की जन-क्रान्ति के समय धनसिंह गुर्जर मेरठ शहर के कोतवाल थे। गाय और सूअर की चर्बी के प्रश्न पर सभी भारतीय सैनिकों में असंतोष व्याप्त था। उन्होंने तुरंत ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देने का निश्चय कर लिया। मेरठ के कोतवाल धनसिंह गुर्जर सैनिकों से लगातार सम्पर्क में थे। मेरठ छावनी की तृतीय केवलरी में गुर्जर समुदाय के सैनिकों की अच्छी संख्या थी। 9 मई की रात्रि को ही सैनिकों के साथ उन्होंने पूरी योजना बना ली एवं अगले दिन आस-पास के गांवों के लोगों को मेरठ पहुंचने का संदेश भेज दिया। अंग्रेज प्रशासन इस आगामी क्रांति की सुगबुगाहट से बेखबर रहा। धनसिंह ने कोतवाली के सिपाहियों को भी क्रांति की योजना में शामिल कर लिया। कोतवाली के हथियार क्रांतिकारियों को बांट दिये। 10 मई को सायं 5 बजे गिरजाघरों के घंटे बजते ही धनसिंह के नेतृत्व में जनसमूह पुरानी जेल पहुँच गया। उन्होंने जेल तोड़कर कोर्ट मार्शल द्वारा सजा पाये राजबंदियों एवं 720 अन्य कैदियों को मुक्त करा क्रांतिकारी सेना में मिला लिया। इसके बाद तृतीय कैवलरी के अन्य भारतीय सैनिक भी इनके साथ मिल गये। इस क्रांतिकारी दल ने नई जेल पहुंच कर वहाँ भी सभी राजबंदियों को मुक्त करा लिया। अगले ही दिन क्रांतिकारी सेना ने जोकि अब मुक्ति वाहिनी बन चुकी थी, दिल्ली पहुंचकर बहादुरशाह जफर को हिन्दुस्तान का बादशाह घोषित कर दिया। चन्द दिनों के अन्दर दिल्ली पर भी मुक्तिवाहिनी का अधिकार हो गया, लेकिन अन्त में मुक्तिवाहिनी को अंग्रेजों द्वारा परास्त कर दिया गया। हजारों भारतीय शूरवीरों को ब्रिटिश दमन की चक्की में पिसना पड़ा। धनसिंह कोतवाल को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें मेरठ के एक चौराहे (वर्तमान विक्टोरिया पार्क) पर फाँसी पर लटका दिया गया।

नाना साहब पेशवा

नाना साहब ने अपने विश्वस्त साथियों से गुप्त मंत्रणा कर 31 मई, 1857 अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र सैनिक क्रांति का दिन निश्चित कर दिया। नाना साहब के गुप्तचरों द्वारा सैनिक छावनियों के भारतीय सिपाहियों को कमल का फूल और गाँवों में आटे की चपाती क्रांति के संदेश के रूप में बाँटी जाने लगीं। नाना साहब 400 क्रांतिकारियों के साथ साधुओं की टोली के रूप में तीर्थाटन के बहाने से सारे भारत में भ्रमण हेतु निकल पड़े। सब जगह अंग्रेजों के विरुद्ध एक साथ विद्रोह के लिए क्रांति का शंख फूँकने लगे। लेकिन कुछ अपरिहार्य कारणों से मेरठ के भारतीय सैनिकों ने 'हर-हर महादेव' के साथ क्रांति का सूत्रपात 10 मई को ही कर दिया। मेरठ से दिल्ली तक अंग्रेजी शासन को समाप्त कर बहादुरशाह जफर को हिंदुस्तान का बादशाह घोषित कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप कानपुर के सैनिकों ने भी 4 जून को नाना साहब के नेतृत्व में अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंका। नाना साहब ने दया का भाव दिखाते हुए यूरोपियन लोगों को नावों द्वारा सुरक्षित इलाहाबाद पहुँचाने का प्रबंध कर दिया। फिर भी दुर्भाग्यपूर्ण सती चौरा घाट एवं बीबीघर की नृशंस हत्याओं को वह न रोक सके। नाना साहब को जनरल व्हीलर, रेनाड, कर्नल नील, हैवलाक, आऊट्रम, कैम्पवैल आदि बड़े-बड़े शूरवीरों से घमासान युद्ध करना पड़ा, अंत में नाना साहब की हार हुई। अंग्रेजों ने उनकी गिरफ्तारी पर एक लाख का इनाम घोषित कर दिया। अत: नाना साहब ने मोरोपंत को अपने वेष में उत्तर की तरफ (नेपाल) भेज कर अंग्रेजों को भ्रमित कर दिया एवं स्वयं सौराष्ट्र की तरफ जाकर जीवनपर्यन्त भूमिगत रहे।

नाना साहब पेशवा का जन्म 1824 में हुआ था। उनका मूल नाम घोंडू पंत माधव भट्ट था। वे बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र थे। बाजीराव पेशवा पुणे छोड़कर बिठूर आ बसे थे।

सैनिक क्रांति के समय मेरठ की जेल को तोड़ते हुए क्रांतिवीर

1857 की सैनिक क्रांति

1857 की जिस सैनिक क्रांति के महायज्ञ का श्री गणेश मंगल पांडे ने 29 मार्च को बैरकपुर की छावनी से किया था, उस यज्ञ की पूर्णाहुति मेरठ के सैनिकों ने 10 मई को कर दी। मेरठ छावनी में 90 घुड़सवार भारतीय सैनिकों को चर्बी-युक्त कारतूस दिये गये। उनमें से 85 सैनिकों ने उन्हें छूने से इनकार कर दिया। अत: इन सैनिकों को सैनिक न्यायालय द्वारा 8 से 10 वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया। इस बात से सारे शहर में उत्तेजना व्याप्त थी। अगले दिन जब कुछ भारतीय सैनिक मेरठ के बाजार में घूम रहे थे तो उन पर कुछ महिलाओं ने व्यंग्य किया ''ये जा रहे हैं देश द्रोही! इनके साथी जेलों में बंद हैं और यह....।'' इस तरह के अपमानजनक शब्दों ने सैनिकों को व्यथित कर दिया। उनके हृदय की रक्त-पिपासा तीव्र हो उठी। मेरठ में उन दिनों धनसिंह गुर्जर कोतवाल थे। राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत श्री धनसिंह ने इस विद्रोह में सक्रिय भाग लिया। रात्रि में सैनिक शिविर में सुनियोजित योजना बना ली गई। ''31 मई तक इंतजार अब संभव नहीं है''। 10 मई रविवार को सायं 5 बजे सैनिक शिविरों से युद्ध घोष गूँज उठा ''मारो फिरंगी को!'' क्रांतिकारी सैनिकों ने सबसे पहले बंदियों को कारागृह से मुक्त कराया। इन सैनिकों ने बड़े ही सुनियोजित ढंग से अंग्रेजों का नरमेध करते हुए मेरठ की क्रांति पताका मेरठ वासियों एवं ग्रामों से आये क्रांति वीरों को सौंप दी एवं स्वयं दिल्ली की ओर कूच कर गये। बाद में समस्त मेरठ व मुजफ्फरनगर जनपदों के ग्राम-ग्राम में क्रांति की लपटें उठने लगीं। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि मेरठ में भारतीय सिपाहियों की केवल दो पैदल रेजीमेंट और एक अश्वारोही रेजीमेंट ही थी जब कि गोरे सिपाहियों की एक पूरी राइफल बटालियन, एक ड्रगन तथा तोपखाना भी उन्हीं के अधिकार में था, ऐसे में अंग्रेजों ने मेरठ में विद्रोह की कभी कल्पना भी न की थी।

बहादुरशाह 'जफ़र'

मेरठ के क्रांतिवीरों का जत्था 11 मई, 1857 को दिल्ली पहुँचा। उसने केवल पाँच दिनों में पूरा दिल्ली नगर अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त करा लिया। बहादुरशाह जफ़र को हिन्दुस्तान का सम्राट घोषित कर दिया गया। बादशाह की तरफ से एक फरमान जारी कर देश के कोने-कोने में भिजवाया गया। इस फरमान में हिन्दुस्तान के समस्त हिन्दू व मुस्लिम भाइयों को एक होकर अंग्रेजी सत्ता को जड़ से उखाड़ फेंकने का आह्वान किया गया था। बहादुरशाह के 134 दिन के शासन में दिल्ली में एक भी गौवध नहीं हुआ। हिन्दू-मुस्लिम एकता का यह अद्वितीय उदाहरण था। इसके बाद अलीगढ़, इटावा, मैनपुरी, असीराबाद, अजमेर, औरंगाबाद, काशी, बदायुँ, जौनपुर, इलाहाबाद और जबलपुर के हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने भी क्रांति की पताका फहरा दी। ईस्ट इंडिया कम्पनी का सितारा डूबने ही वाला था। देश का दुर्भाग्य कि आपसी फूट एवं अंग्रेजों की कूटनीतिक चाल ने पासा पलट दिया।

पंजाब के तत्कालीन चीफ कमिश्नर सर जॉन लारेंस ने सम्राट बहादुरशाह जफ़र की नकली मुहर बनवा कर, उनके नाम से यह आज्ञापत्र (फरमान) जगह-जगह सिख रियासतों में चिपकवा दिया।

'हिन्दुस्तान में फिर से मुस्लिम सल्तनत कायम होने पर सिखों का सफाया कर दिया जायेगा।'

अफसोस! अंग्रेजों की कूटनीति सफल हुई। पूर्व, उत्तर और पश्चिम की अनेक सिख रियासतों ने ब्रिटिश कम्पनी का साथ दिया और एक सौ चौंतीस दिन बाद दिल्ली पर पुनः अंग्रेजी सेना का कब्जा हो गया। बहादुर शाह जफ़र के तीन बेटों को कत्ल कर दिया गया। बहादुरशाह जफ़र ने रंगून की जेल में 7 नवम्बंर, 1862 को अंतिम श्वाँस ली।

बहादुरशाह जफ़र का जन्म 1775 में हुआ था। 1837 में उन्होंने मुगल साम्राज्य की गद्दी संभाली।

रामजीदास गुड़वाले

रामजीदास गुड़वाले दिल्ली के निवासी थे। वे अपार धन-सम्पत्ति के मालिक थे। जब 1857 में मेरठ से आरम्भ होकर क्रान्ति की चिनगारी दिल्ली पहुँची तो मुगल सम्राट बहादुरशाह जफ़र को 1857 की सैनिक क्रांति का नायक घोषित कर दिया गया। दिल्ली से अंग्रेजों की हार के बाद अनेक रियासतों की भारतीय सेनाओं ने दिल्ली में डेरा डाल दिया। उनके भोजन और वेतन की समस्या पैदा हो गई। बादशाह का खजाना खाली था। एक दिन उन्होंने अपनी रानियों के गहने मंत्रियों के सामने रख दिये। रामजी दास गुड़वाले बादशाह के गहरे मित्र थे। त्यौहारों पर बादशाह रामजीदास गुड़वाले के घर पर दावत के साथ मोहरों व अशर्फियों के थालों से सम्मान पाते थे। रामजीदास को बादशाह की यह अवस्था नहीं देखी गई। उन्होंने अपनी करोड़ों की सम्पत्ति बादशाह के हवाले कर दी और कह दिया।...

''मादरे वतन की रक्षा होगी तो धन फिर कमा लिया जायेगा''।

रामजीदास ने केवल धन ही नहीं दिया, सैनिकों को सत्तू (भुना आटा) व चने तथा बैलों, ऊँटों व घोड़ों के लिए चारे की व्यवस्था स्वयं संभाल ली। कुछ कारणों से दिल्ली पर अंग्रेजों का पुनः कब्जा होने लगा। एक दिन उन्होंने चाँदनी चौक की दुकानों के आगे जगह-जगह जहर मिश्रित शराब की बोतलों की पेटियाँ रखवा दीं, अंग्रेज सेना उनसे प्यास बुझाती एवं वहीं लोट-पोट हो जाती।

क्रांति के असफल होने पर दिल्ली पर पुनः अंग्रेजों का कब्जा हो गया, सेठ रामजी दास को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें रस्सियों से बाँध कर पहले कुत्तों से नुचवाया गया फिर उन्हें चाँदनी चौक में कोतवाली के सामने सरेआम फाँसी पर लटका दिया गया।

राजा नाहरसिंह

राजा नाहरसिंह बल्लभगढ़ (हरियाणा) के राजा थे। इनका जन्म 9 जनवरी, 1823 को हुआ था। शौर्य और पराक्रम में उनका कोई मुकाबला नहीं था। 1857 का स्वतंत्रता संग्राम छिड़ते ही मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर ने उन्हें दिल्ली बुला लिया। दिल्ली में क्रांतिकारी सेना का कब्जा हो चुका था लेकिन चारों ओर से भारी मात्रा में भारतीय सैनिकों का दिल्ली में जमावड़ा होने से बादशाह के सामने समस्या खड़ी हो गई थी। बादशाह की पारिवारिक कलह के कारण यह स्थिति अधिक विकट थी। राजा नाहरसिंह ने दिल्ली आकर सारी स्थिति को संभालने का भरसक प्रयास किया। उन्होंने बादशाह को सलाह देकर दिल्ली में गौवंश के वध पर पूर्ण प्रतिबंध लगवा दिया। युद्ध नीति में भी उचित फेर बदल किया। आगरे की ओर से अंग्रेज सेना बार-बार दिल्ली की ओर बढ़ रही थी। अतः राजा ने पुनः बल्लभगढ़ जा कर अंग्रेजों की बढ़ती हुई सेना पर रोक लगा दी। उन्होंने ऐसी किलेबन्दी की कि भविष्य में भी आगरे की ओर से अंग्रेज सेना दिल्ली की ओर न फटक सकी।

बादशाह की पारिवारिक कलह और अंग्रेजों की फूट डालने की नीति के कारण दिल्ली पर पुनः अंग्रेजों का कब्जा हो गया। बादशाह गिरफ्तार कर लिये गये। अब अंग्रेजों ने धोखे से नाहरसिंह को भी दिल्ली बुला कर गिरफ्तार कर लिया। बादशाह ने इस कुकृत्य पर हडसन को बहुत फटकारा। लेकिन शेर पिंजरे में बंद हो चुका था। 9 जनवरी, 1858 को राजा नाहरसिंह को उनके जन्म दिन पर ही चाँदनी चौक में कोतवाली के सामने फाँसी पर लटका दिया गया।

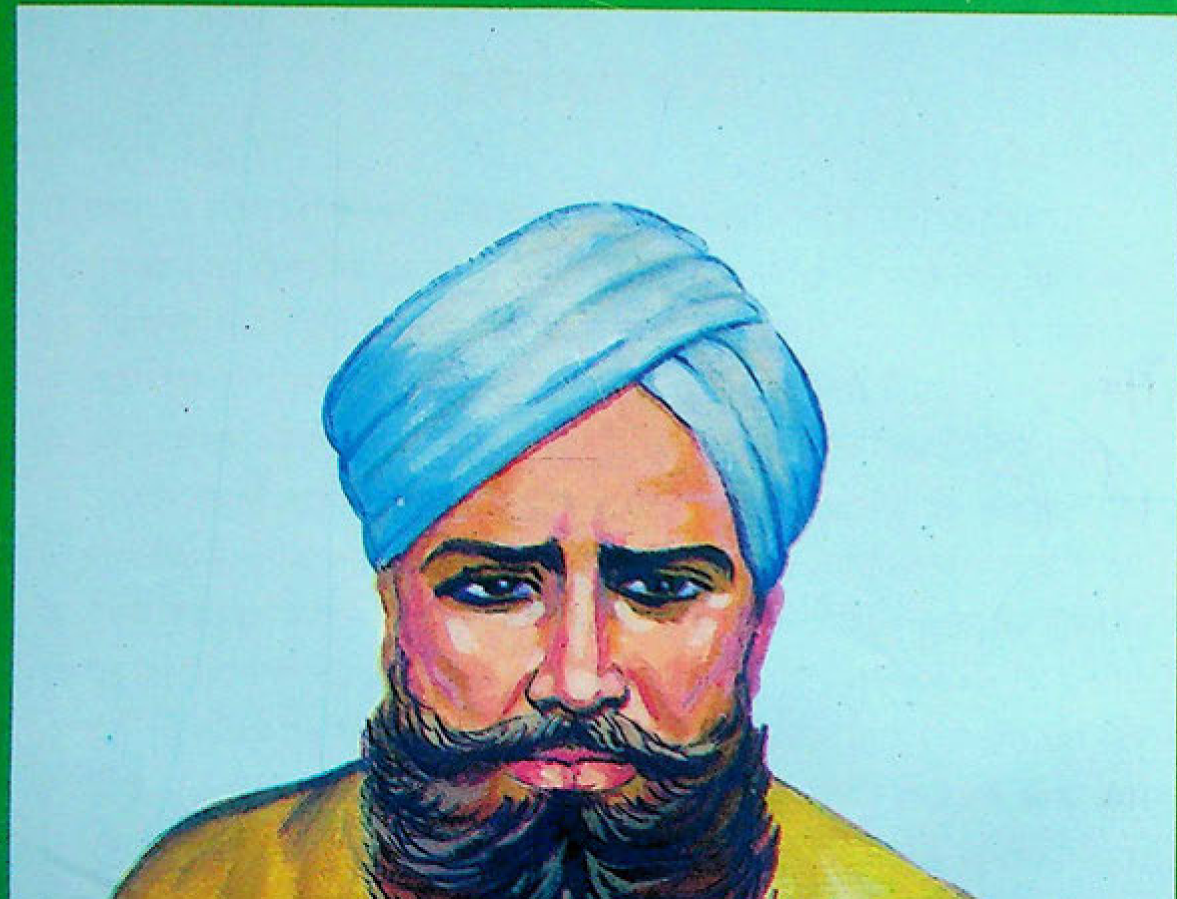

हुकमचन्द जैन

हुकमचन्द जैन का जन्म 1816 में हाँसी (हिसार) में लाला दुनी चन्द के पुत्र के रूप में हुआ था। वे फारसी और गणित के विद्वान, अनेक विषयों की किताबों के लेखक तथा बहादुरशाह 'जफर' के दरबार में उच्चाधिकारी थे। सन् 1841 ई. में इन्हें हाँसी का कानूनगो नियुक्त किया गया। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की तैयारी हेतु बादशाह के दरबार में हो रही एक गुप्त सभा में वह भी उपस्थित थे। उस सभा में उन्होंने सिंह गर्जना करते हुए घोषणा की 'मैं हरियाणा क्षेत्र में कंपनी सरकार के विरुद्ध क्रांति की ज्वाला धधका कर अंग्रेजों की टुकड़ियों का सफाया कर दूँगा।' बादशाह की ओर से उन्हें सैनिक सहायता का आश्वासन दिया गया।

1857 का स्वतंत्रता संग्राम छिड़ते ही हुकमचन्द जैन ने सर्वप्रथम हांसी में अंग्रेजों की संचार व्यवस्था ठप्प कर दी। इसके बाद अपनी सेना के साधारण हथियारों से ही ब्रिटिश ठिकानों पर आक्रमण कर दिया। लेकिन बादशाह की ओर से सहायता नहीं पहुँची अत: हुकमचन्द जैन ने अपने तथा मिर्जा मुनीरबेग के संयुक्त हस्ताक्षरों से तुरंत सहायता उपलब्ध कराने हेतु बादशाह को पत्र भेजा।

134 दिन स्वतंत्र रहने के बाद दिल्ली पर पुन: अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। बादशाह बहादुरशाह जफर को गिरफ्तार कर उनके महलों की तलाशी ली गई। तलाशी में हुकमचन्द जैन का पत्र बरामद हुआ। ब्रिटिश अधिकारियों ने तत्काल हिसार के कलक्टर को उनके विरुद्ध कार्यवाही का सख्त आदेश भेजा।

जनरल कोर्ट लैंड के नेतृत्व में लै० वियर्स ने हाँसी पर तोपों से भारी हमला कर हुकमचन्द जैन और मिर्जा मुनीरबेग को गिरफ्तार कर लिया। 19 जनवरी, 1858 को मिर्जा मुनीरबेग तथा हुकमचन्द जैन को हाँसी में फाँसी पर लटका दिया गया। बाद में इनके 13 वर्षीय भतीजे फकीरचन्द जैन को इन्हीं के घर के सामने फाँसी दे दी गई।

राव उमरावसिंह

राव उमरावसिंह का जन्म सन् 1832 में दादरी (उ.प्र.) के निकट ग्राम कटेहड़ा में राव किशनसिंह गुर्जर के पुत्र के रूप में हुआ था। 10 मई को मेरठ से 1857 की जन-क्रांति का श्री गणेश हो चुका था। राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत भारत-पुत्र राव उमरावसिंह ने आस-पास के ग्रामीणों को प्रेरित कर 12 मई, 1857 को सिकन्द्राबाद तहसील पर धावा बोल दिया। वहाँ के खजाने को अपने अधिकार में कर लिया। इसकी सूचना मिलते ही बुलन्दशहर से सिटी मजिस्ट्रेट सैनिक बल के साथ सिकन्द्राबाद आ धमका। सात दिन तक क्रान्तिकारी सेना अंग्रेज सेना से टक्कर लेती रही। अन्त में 19 मई को सशस्त्र सेना के सामने क्रान्तिवीरों को हथियार डालने पड़े। 46 लोगों को बंदी बनाया गया। उमरावसिंह बच निकले। इस क्रांतिकारी सेना में गुर्जर समुदाय की मुख्य भूमिका होने के कारण उन्हें ब्रिटिश सत्ता का कोप भाजन होना पड़ा। उमरावसिंह अपने दल के साथ 21 मई को बुलन्दशहर पहुँचे एवं जिला कारागार पर धावा बोल कर अपने सभी राजबंदियों को मुक्त करा लिया। बुलन्दशहर से अंग्रेजी शासन समाप्त होने के बिंदु पर था लेकिन बाहर से सेना की मदद आ जाने से यह संभव न हो सका। हिंडन नदी के तट पर 30 व 31 मई को क्रांतिकारी सेना एवं अंग्रेज सेना का ऐतिहासिक युद्ध हुआ। 26 सितम्बर, 1857 को कासना-सूरजपुर के मध्य उमरावसिंह की अंग्रेज सेना से भारी टक्कर हुई। लेकिन दिल्ली के पतन के कारण क्रांतिकारी सेना का उत्साह भंग हो चुका था। भारी जन हानि के बाद क्रांतिकारी सेना ने पराजय स्वीकार कर ली। उमरावसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। बुलन्दशहर में कालेआम के चौराहे पर हाथी के पैर से कुचलवा कर उनकी नृशंसतापूर्वक हत्या कर दी गई।

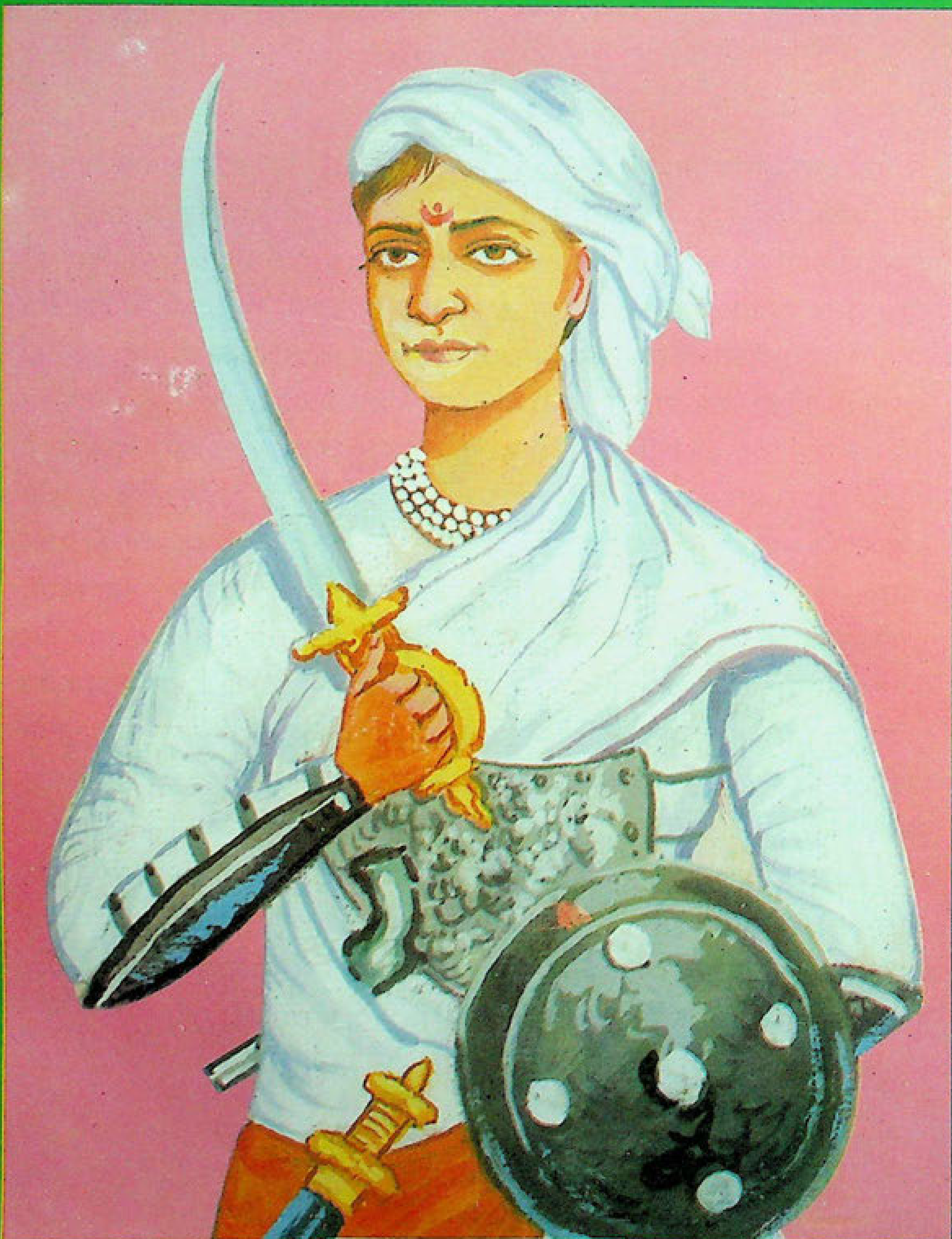

महारानी लक्ष्मीबाई

महारानी लक्ष्मीबाई का जन्म 19 नवम्बर, 1835 को काशी में हुआ था। इनका विवाह झाँसी के राजा राव गंगाधर के साथ हुआ, लेकिन वह शीघ्र ही स्वर्ग सिधार गये। 13 मार्च सन् 1854 को झाँसी राज्य पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया और महारानी को अंग्रेजों द्वारा 5000 रुपया मासिक पेंशन की घोषणा कर दी गई। इससे महारानी के स्वाभिमान को गहरी चोट पहुँची। रानी ने पेंशन लेने से मना कर दिया और किराये के मकान में रह कर अंग्रेजों से बदले की तलाश में रहने लगीं। उधर मंगल पांडे ने सैनिक विद्रोह का श्रीगणेश कर दिया था। इधर नाना साहब व अजीमुल्ला खाँ ने 1857 की सशस्त्र क्रांति की योजना तैयार कर ली। 4 जून, 1857 को रानी ने अवसर पा झाँसी को अंग्रेजों से मुक्त करा लिया और घोषणा करा दी, ''खल्क खुदा का, मुल्क बादशाह का, हुक्म लक्ष्मीबाई का''। परन्तु रानी को सदैव अपनों से धोखा मिला। पहले एक संबंधी ने आक्रमण किया। फिर ओरछा का दीवान 20,000 की सेना ले झाँसी पर आ धमका। रानी ने दोनों को ही परास्त किया। इसके तुरंत बाद ह्यूरोज अंग्रेज भारी सेना लेकर झाँसी पर आ चढ़ा। रानी के विश्वासपात्र दूल्हाजू व पीरअली ने किले में छिपे बारूदखाने का संकेत दुश्मन को दे दिया। शत्रु की तोपों ने बारूदखाने को उड़ा दिया। रानी के अत्यंत विश्वासपात्र खुदाबख्श और गौसखाँ मारे गये। रानी किले से सुरक्षित बाहर निकलीं, 102 मील का सफर तय करके कालपी पहुँच गईं। यहाँ तात्या टोपे, रावसाहब व बाँदा के नवाब आदि से संपर्क साधा। ह्यूरोज भारी सेना लेकर यहाँ भी आ पहुँचा। यहाँ रानी का अंग्रेजों से घमासान युद्ध हुआ। रानी के शौर्य से शत्रु चकित हो उठा। लड़ते - लड़ते रानी के सिर का दाहिना भाग व दाहिनी आँख अलग हो गई। लेकिन वाह री अद्भुत शौर्य की मशाल! फिर भी तलवार चलाती रही और इसी मैदान में यह 'शेरनी' 18 जून, 1858 के दिन अमरत्व को प्राप्त हुई।

वीरांगना अजीजन

वीरांगना अजीजन का जन्म 22 जनवरी, 1824 को मालवा क्षेत्र के राजगढ़ के जागीरदार शमशेरसिंह की पुत्री के रूप में हुआ। उसका नाम अंजुला था। एक दिन हरादेवी मेले में अपनी सहेलियों के साथ घूमते हुए अंग्रेज सैनिकों ने उसका अपहरण कर लिया। इसी गम में उसके पिता का निधन हो गया। जागीर पर अंग्रेजों ने कब्जा कर लिया। अंग्रेजों ने अंजुला को कानपुर के लाठी मुहाल चकले में 500 रुपये में बेच दिया। यहाँ उसका नाम अजीजन पड़ा। उसने उमरावजान के कोठे पर नृत्य का व्यवसाय अपना लिया।

कानपुर की बदनाम गलियों में जब अंग्रेजों के खिलाफ 1857 की सशस्त्र क्रांति की सुगबुगाहट पहुँची तो इस नर्तकी के अंदर छिपा वीरांगना का स्वरूप जाग उठा। और यह नाना साहब के विश्वस्त शमशुद्दीन खाँ के माध्यम से गुप्तचर सेना में शामिल हो गईं। नर्तकी अजीजन कभी मर्दाने वेष में अंग्रेजों की सैनिक छावनियों में जाकर गुप्त संदेश देती तो कभी नृत्य के बहाने सैनिक छावनी से गुप्त सूचना ले आती। जून 1857 में कानपुर पर नाना साहब का अधिकार हो गया लेकिन शीघ्र ही हैवलाक ने भारी आक्रमण कर दिया। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में अजीजन मर्दाने वेष में नंगी तलवार लिये शत्रु सेना को चीरती चली जाती तो कभी स्त्रियों को प्रशिक्षण, घायलों को दूध, भोजन व औषधि बँटवाती। 21 दिन निरंतर संघर्ष के बाद कानपुर पर अंग्रेजी सेना का अधिकार हो गया। अन्य सैनिकों के साथ अजीजन को भी गिरफ्तार कर लिया गया। हैवलाक ने इस सुंदर युवती को क्षमा न माँगने पर गोली मारने का आदेश दिया। अजीजन गरजी-''गोलियों का भय दिखा कर आप मुझसे क्षमा मँगवाना चाहते हैं, यह कभी हो नहीं सकता। मैं अंग्रेजों का पूर्ण विनाश चाहती हूँ। मैं अंग्रेजों का विनाश चाहती हूँ।'' यह कहते हुए 'लीजिए मारिये गोली' अजीजन ने अपना सीना संगीनों के आगे कर दिया। तभी 'धाँय' की आवाज के साथ अजीजन देश पर बलिदान हो गई।

गोंड राजा शंकरशाह

शंकरशाह गढ़मंडला (मध्य प्रदेश) के यशस्वी और प्रतापी राजघराने के वंशज थे। वे जबलपुर के पास पुरबा में शाही महल में रहते थे। इनके वंशजों ने डेढ़ हजार वर्ष तक मध्य प्रदेश के मंडला, दमोह, सागर, सिवनी, जबलपुर, होशंगाबाद और पूर्व भोपाल रियासत के 23 हजार गाँवों पर एक छत्र शासन किया था। लेकिन अब 1857 का वर्ष चल रहा था और शंकर शाह कम्पनी सरकार की पेंशन पर गुजारा कर रहे थे। उधर जबलपुर की सैनिक छावनी में भारतीय सैनिक कम्पनी सरकार के विरुद्ध क्रांति के लिए तैयार बैठे थे।

शंकरशाह को जबलपुर की छावनी से क्रांति का गुप्त संदेश मिला। अत: उन्होंने समस्त ठाकुरों, सामन्तों व जमींदारों से सम्पर्क कर उन्हें क्रांति में शामिल होने के लिए तैयार कर लिया। अंग्रेज अधिकारियों को गुप्तचरों से शंकरशाह की योजना का पता चल गया। 14 सितम्बर, 1857 को ले. क्लार्क पुलिस दल के साथ पुरबा पहुँचा और शंकरशाह, उसके पुत्र व कुछ अन्य लोगों को उनके निवास से गिरफ्तार कर लिया। शंकरशाह, के घर से तलाशी में उन्हीं की लिखी हुई एक कविता मिली। इस कविता का भाव इस प्रकार था- ''हे दुष्टों का संहार करने वाली काली माँ! इन म्लेच्छ अंग्रेजों का संहार कर शीघ्र ही इनके अत्याचारों से मुक्ति दिलाओ....।'' इसी कविता के आधार पर उन्हें और उनके चालीस वर्षीय बेटे रघुनाथशाह को 18 सितम्बर को तोप से उड़ा दिया गया। तोप से उड़ाने की रस्म 'मृत्यु दण्ड समारोह' के रूप में मनाई गई जिसमें नगरवासियों व शंकरशाह के रिश्तेदारों को आमंत्रित किया गया। तोप से उड़ाने के बाद उनकी पत्नी को क्षत-विक्षत शव के बिखरे अधजले टुकड़ों को बीनने के लिए बाध्य किया गया। इस प्रकार उस दिन अंग्रेजों ने क्रूरता एवं मानवता की सभी सीमाएँ लाँघ दीं।

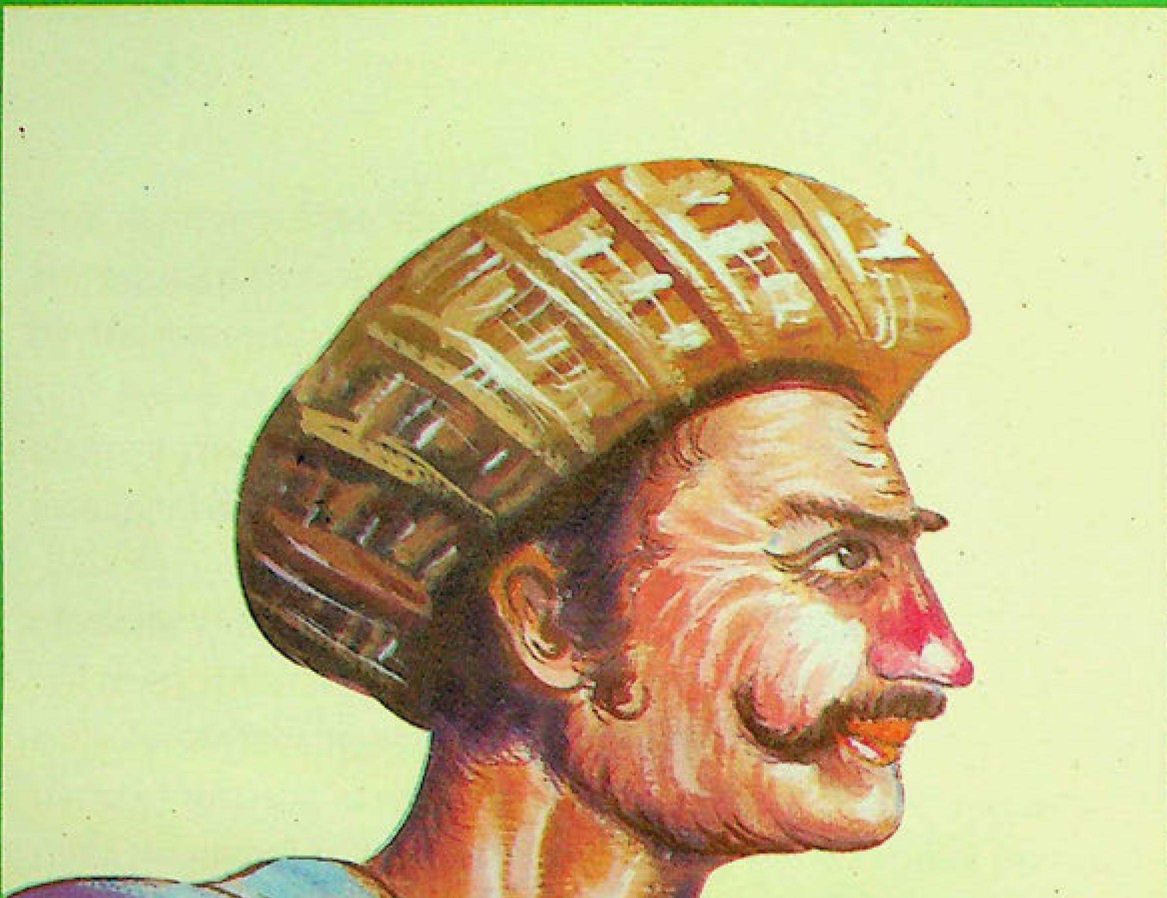

राजा भास्करराव

भास्करराव नारगुण्ड (महाराष्ट्र) के राजा थे। नारगुण्ड बेलगांव से 65 किलोमीटर पूर्व की ओर छोटा सा राज्य था। राजा भास्करराव को कोई संतान नहीं थी। अत: इनके राज्य को हड़पने की दृष्टि से अंग्रेजों ने कर्नल मानसन को इनके राज्य में पॉलिटिकल एजेंट नियुक्त कर दिया। राजा को पुत्र गोद लेने पर भी रोक लगा दी। लेकिन भास्करराव की रानी बहुत चतुर और बहादुर थी। अंग्रेजों के विरोध के बाद भी उसने राजा को पुत्र गोद लेने के लिए तैयार कर लिया और साथ ही अंग्रेजों से संघर्ष की तैयारी भी कर ली। मानसन द्वारा अंग्रेजों को भास्कर राव की गतिविधियों की सारी सूचना मिल गई। अत: अंग्रेजों ने कर्नल मानसन के नेतृत्व में सेना भेज कर नारगुण्ड पर चढ़ाई करने का आदेश दे दिया। 29 मई, 1858 को भास्करराव के सैनिकों ने मानसन को रास्ते में ही रोक कर उसको मार गिराया और उसकी सेना भाग खड़ी हुई।

अंग्रेजों ने भास्करराव के राज्य को नष्ट करने हेतु एक जून, 1858 को मालकोम के नेतृत्व में विशाल सेना नारगुण्ड के लिए भेजी। दोनों ओर से भयंकर युद्ध हुआ। किले की सुरक्षा के लिए रानी ने मोर्चा संभाला हुआ था। भास्करराव के रिश्ते के एक भाई ने धोखा दिया और शहर का एक ओर का दरवाजा खुला छोड़ दिया। मालकोम की सेना उसी रास्ते से नगर में प्रवेश कर गई। लेकिन उसके बाद भी रानी ने भारी टक्कर ली। अंत में भास्करराव को किला छोड़ कर भागना पड़ा। रानी और राजमाता ने नदी में कूद कर अपनी मान-मर्यादा की रक्षा की। कुछ समय बाद भास्करराव को गिरफ्तार कर लिया गया। 12 जून, 1858 को उन्होंने फाँसी का फंदा चूम कर अमरत्व प्राप्त कर लिया।

बेगम हज़रतमहल

अवध मुगल काल में एक सूबा था। लखनऊ उसकी राजधानी थी। बेगम हजरतमहल अवध के नवाब वाज़िदअलीशाह की पत्नी थीं। अवध के नवाब वाज़िदअलीशाह द्वारा अंग्रेजों के साथ संधि पर हस्ताक्षर करने से मना करने पर उन्हें गिरफ्तार कर कोलकाता ले जाया गया। 1857 का स्वतंत्रता संग्राम छिड़ने पर बेगम हज़रतमहल (जोकि नर्तकी से अपनी सुन्दरता के कारण रानी बनी थी) का वीरांगना का स्वरूप जाग उठा। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिमों के स्वाभिमान को ललकारते हुए एकजुट होने का आह्वान किया। फिर तो सारे नगर में 'अल्ला हो अकबर' व 'जय बजरंग बली' के नारे गूँज उठे। लोगों में नया उत्साह जागा। बेगम ने अपने पुत्र बिरजिस कादिर को अवध का नवाब घोषित कर दिया। बेगम ने क्रांतिकारी शक्तियों को एक साथ संगठित किया। मौलवी अहमदुल्ला की मदद से 5 जुलाई, 1857 तक लखनऊ को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त करा लिया। हिन्दू राजा कृष्णाराव को अपना वजीरे आज़म नियुक्त किया। उन्होंने महिलाओं की मुक्ति सेना बनाई एवं सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ़ कर ली। बेगम में कुशल प्रशासक, स्वाभिमान एवं योद्धा के गुणों की कमी नहीं थी। लेकिन वाज़िदअलीशाह की अन्य बेगमों एवं उनके चमचों की गद्दारी के कारण बेगम को भारी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। अंत में अंग्रेजों से भारी टक्कर लेने के बाद भी उन्हें लखनऊ छोड़ना पड़ा। बेगम ने दृढ़ निश्चय किया, 'मैं अंग्रेजों की गुलामी सहन नहीं करूँगी चाहे कितनी कठिनाई हों और कितना भी गरीबी में जीवन बसर करना पड़े,' यही कारण था कि एक नवम्बर, 1858 को महारानी विक्टोरिया की घोषणा के बाद अनेक राजा महाराजाओं ने सुख सुविधाओं के लालच में अंगेजों की अधीनता स्वीकार कर ली लेकिन बेगम हज़रतमहल ने नाना साहब की तरह नेपाल में गुमनाम रह कर वहीं 1859 में अंतिम श्वास ली।

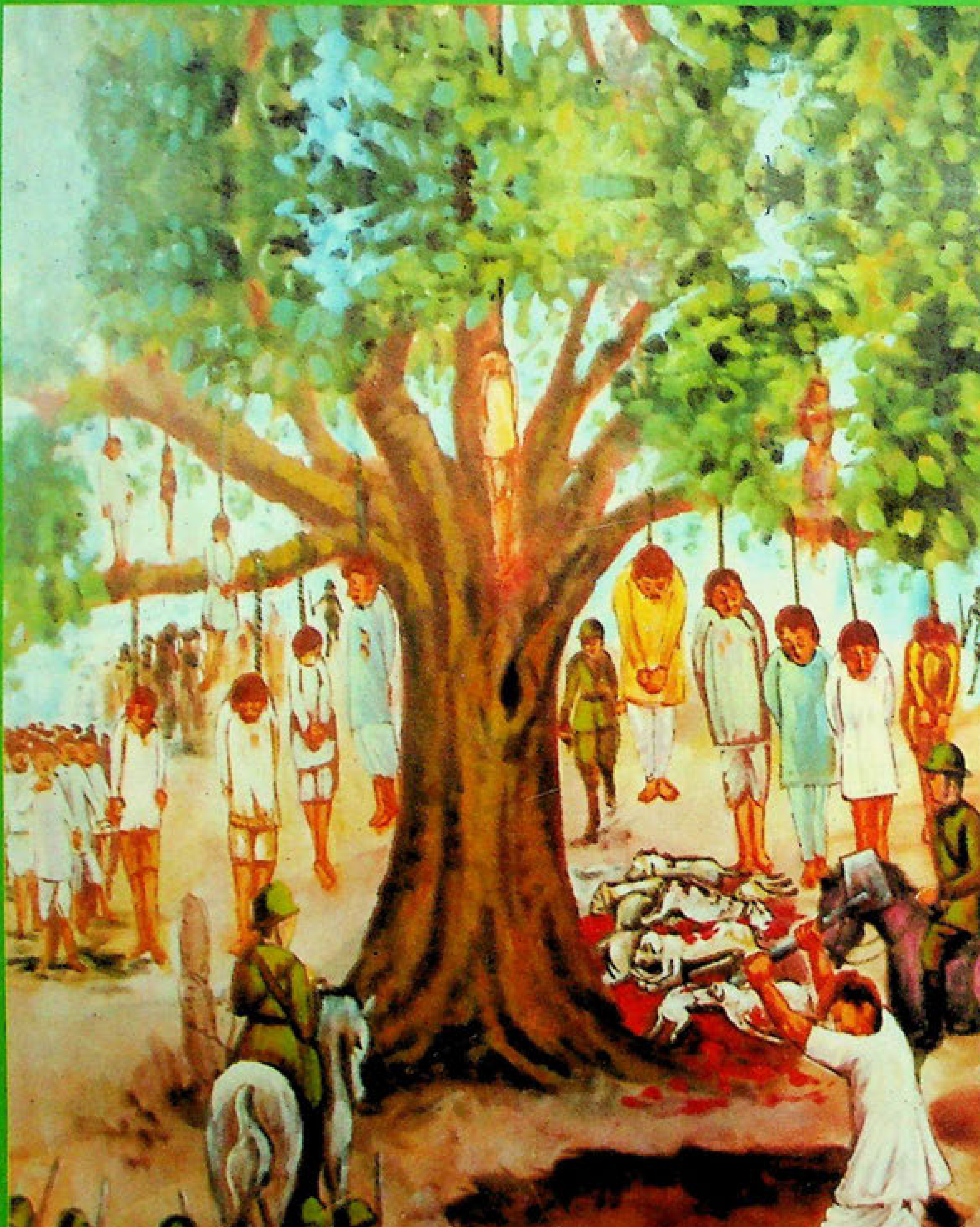

धौलाना के शहीद

धौलाना, गाजियाबाद से गढ़ की ओर जाने वाली सड़क पर पिलखुवा के पास एक कस्बा है। 10 मई, 1857 को मेरठ से आरम्भ हुई सशस्त्र क्रान्ति की चिनगारी ने मेरठ जनपद के अनेक गाँवों को भी प्रभावित किया था। धौलाना के ग्रामीण राजपूत मेवाड़ से आये महाराणा प्रताप के वंशज थे। मेरठ की क्रान्ति का पता चलते ही वहां के ग्रामीणों ने धौलाना को 'मारो फिरंगी को' उद्घोष से गुंजा दिया। वहां थानेदार ने अपशब्दों का प्रयोग किया। अत: नवयुवकों ने कुपित होकर थाने को घेर लिया और मिट्टी का तेल छिड़क कर उसमें आग लगा दी। थानेदार बच कर भाग निकला।

कुछ माह बाद दिल्ली और मेरठ पर अंग्रेजों का पुन: अधिकार हो गया तब एक दिन अचानक अंग्रेज कलक्टर एवं पुलिस कप्तान गोरे सिपाहियों के साथ धौलाना पहुँचा। थानेदार की रिपोर्ट के अनुसार उसने धौलाना के चौदह ग्रामीणों को गिरफ्तार कर लिया। इन चौदह राष्ट्र भक्तों के नाम थे– चन्दनसिंह, मक्खनसिंह, दौलतसिंह, जीराजसिंह, साहबसिंह, सुमेरसिंह, किड्ढासिंह, महाराजसिंह, दुर्गासिंह, दलेरसिंह, मसाहबसिंह, वजीरसिंह, जियासिंह तथा लाला झनकूमल सिंहल। 1857 के स्वातंत्र्य संघर्ष की यज्ञाग्नि में अपने धन की आहुति देकर सेठ झनकूमल ने उस संघर्ष को तीव्रता प्रदान कर भामाशाह की भूमिका अदा की थी।

सभी चौदह ग्रामीणों को सार्वजनिक रूप से पीपल के पेड़ पर फाँसी के फँदों से झुला दिया गया। गोरे कप्तान ने गाँव से चौदह कुत्तों को गोलियों से मरवा कर उनके शव भी इनके साथ ही जमीन में दफना दिये। गोरों ने पिलखुवा पहुँचकर चार राजपूतों को सरेआम फाँसी पर लटकाया। मौहल्ला गढ़ी के शिव मंदिर में रहने वाले नागा बाबा व उनकी प्रिय गाय को गोली से भून दिया गया। धौलाना के तत्कालीन विधायक व शिक्षाविद श्री मेघनाथसिंह शिशौदिया ने इन चौदह बलिदानी वीरों की स्मृति में धौलाना में स्मारक का निर्माण कराया। 'आज़ाद सेवा समिति' ने भी पिलखुवा के शिव मंदिर में नागाबाबा के स्मारक का निर्माण कराया है।

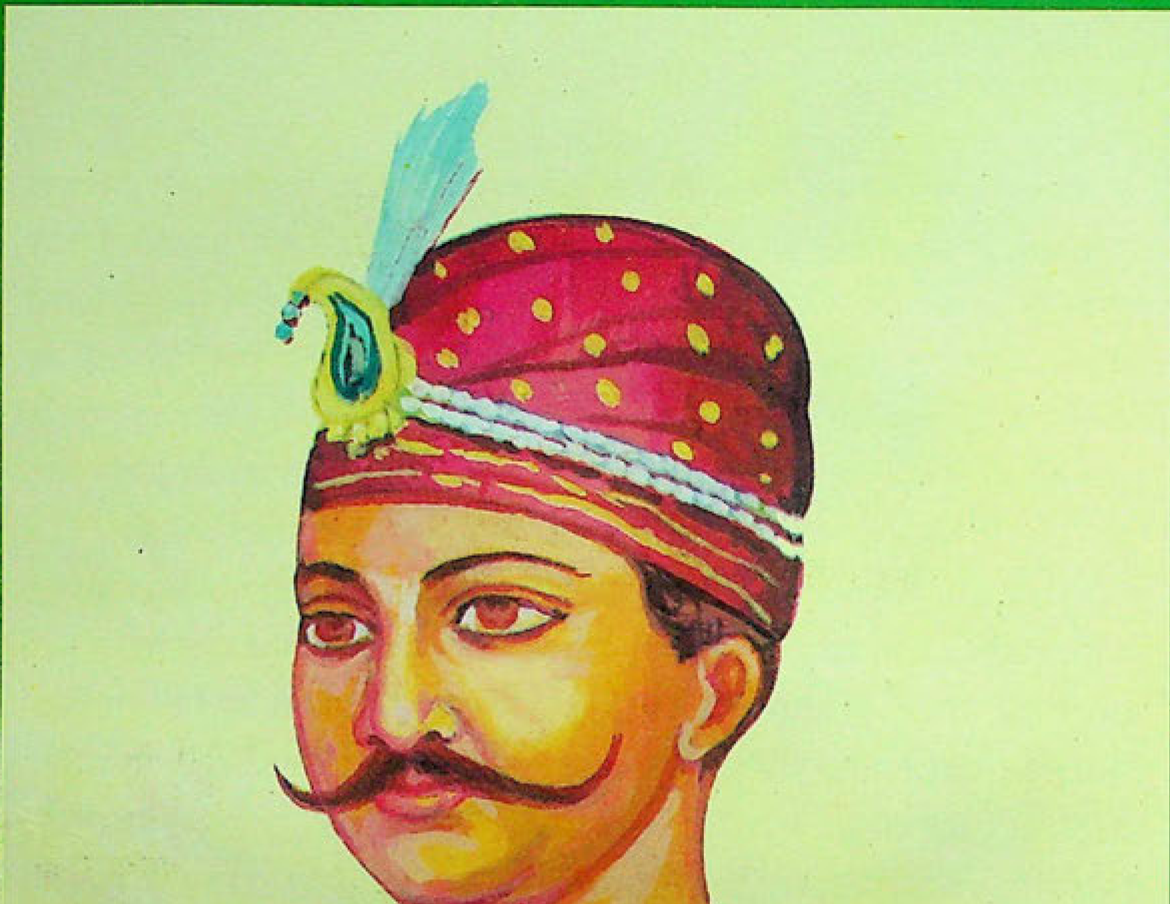

तात्या टोपे

तात्या टोपे का जन्म पुणे (महाराष्ट्र) में 1813 में हुआ था। तात्या टोपे का बचपन का नाम पाण्डुरंग यावलेकर था। बाजीराव पेशवा ने इन्हें सम्मानार्थ एक टोप भेंट किया तभी से यह तात्या टोपे कहलाने लगे। सन् 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम में तात्या टोपे ने नाना साहब के साथ मिल कर अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये। नाना साहब की पराजय के बाद भी तात्या टोपे ने हार न मानी। इन्होंने नए सिरे से सैनिक संगठन कर अंग्रेजों से टककर ली। भारतीय राजाओं की गद्दारी के कारण अंग्रेजों को हराने हेतु गुरिल्ला युद्ध का सहारा लिया। तात्या के किसी स्थान पर छिपे होने की सूचना मिलते ही फौज जैसे ही उस स्थान का घेरा डालती वह फौज की आँखों में धूल झोंक कर गायब हो जाते। वह आया, अरे! चला गया 'अभी तो यहीं था, फिर कहाँ गया?' तात्या एक झोंके की तरह आ कर अपना वार करता और गायब हो जाता। ब्रिटिश अधिकारी विस्मय से देखते ही रह जाते।

अंग्रेजों ने अपनी पूरी शक्ति तात्या को गिरफ्तार करने में झोंक दी। तात्या राजा मानसिंह के क्षेत्र पड़ौन के जंगलों में पड़ाव डाले हुए थे। कहते हैं मानसिंह ने इन्हें धोखे से गिरफ्तार करा दिया। लेकिन मानसिंह के वंशजों ने ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं जिनसे प्रतीत होता है कि मान सिंह ने अंग्रेजों को धोखे में रख कर योजनाबद्ध तरीके से तात्या के वेष में नारायण राव भागवत को गिरफ्तार करवाया। अंग्रेजों ने नारायण राव को ही तात्या समझ कर फाँसी दे दी। तात्या टोपे बच निकले और अपने जीवन के अंत तक पकड़े नहीं जा सके। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजी सत्ता सबसे अधिक तात्या टोपे से भयभीत रही। अतः इन्हें इस संग्राम का ''सर्वोच्च योद्धा'' कहा जा सकता है।

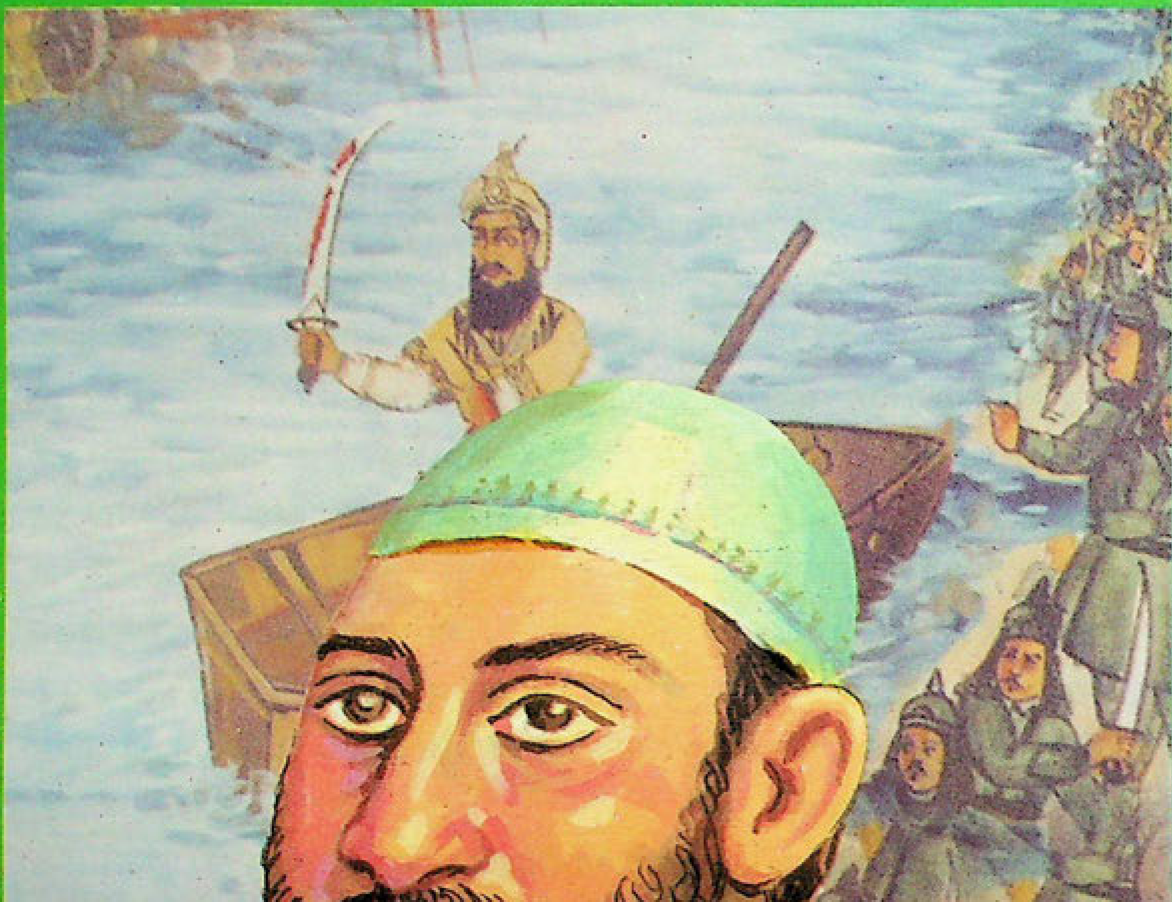

वीर कुँवरसिंह

वीर कुँवरसिंह का जन्म 1782 में जगदीशपुर (शाहबाद, बिहार) में हुआ था। यद्यपि वह जगदीशपुर जैसे विशाल राज्य के स्वामी थे लेकिन मौका मिलते ही इनकी जागीर 'अंग्रेजी कम्पनी' ने हड़प ली। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में इन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांतिकारी शक्तियों का साथ दिया। इन्होंने बिहार के रजवाड़ों को अंग्रेजों के विरुद्ध एकजुट होने का आह्वाहन किया। कुँवरसिंह ने अपने को शाहाबाद का शासक घोषित कर आरा क्षेत्र को भी अंग्रेजों से मुक्त करा लिया। उन्हें जगदीशपुर तो छोड़ना पड़ा लेकिन पहले मीरजापुर फिर बाँदा होते हुए वह कालपी आकर नाना साहब से मिले। आजमगढ़ पर विजय के कारण लखनऊ में विरजिस कादर ने उनका भव्य स्वागत किया। ब्रिटिश शक्तियाँ एकजुट हो कर कुँवर सिंह का पीछा कर रही थीं। लेकिन यह शूरवीर ब्रिटिश सेना को हर बार चकमा देकर बच जाता था। अब उन्होंने किसी भी तरह अपनी जन्मभूमि जगदीशपुर लौटने का निश्चय किया। ब्रिटिश सेना लगातार उनका पीछा कर रही थी। जगदीशपुर के लिए उन्होंने अपनी सेना को गंगा नदी पार करवाई। जब वह गंगा नदी पार कर रहे थे तो ब्रिटिश सेना की गोलियों से उनके हाथ का पंजा छलनी हो गया। सारे हाथ में जहर न फैल जाये अतः उन्होंने अपनी भुजा काट कर गंगा माँ की भेंट चढ़ा दी। अन्त में घायल शेर ने एक ही भुजा से 23 अप्रैल, 1858 को ब्रिटिश सेना से भारी टक्कर ली। अन्त में उसी दिन अपनी जन्म भूमि जगदीशपुर पहुँच कर इस घायल शेर ने शहादत प्राप्त की।

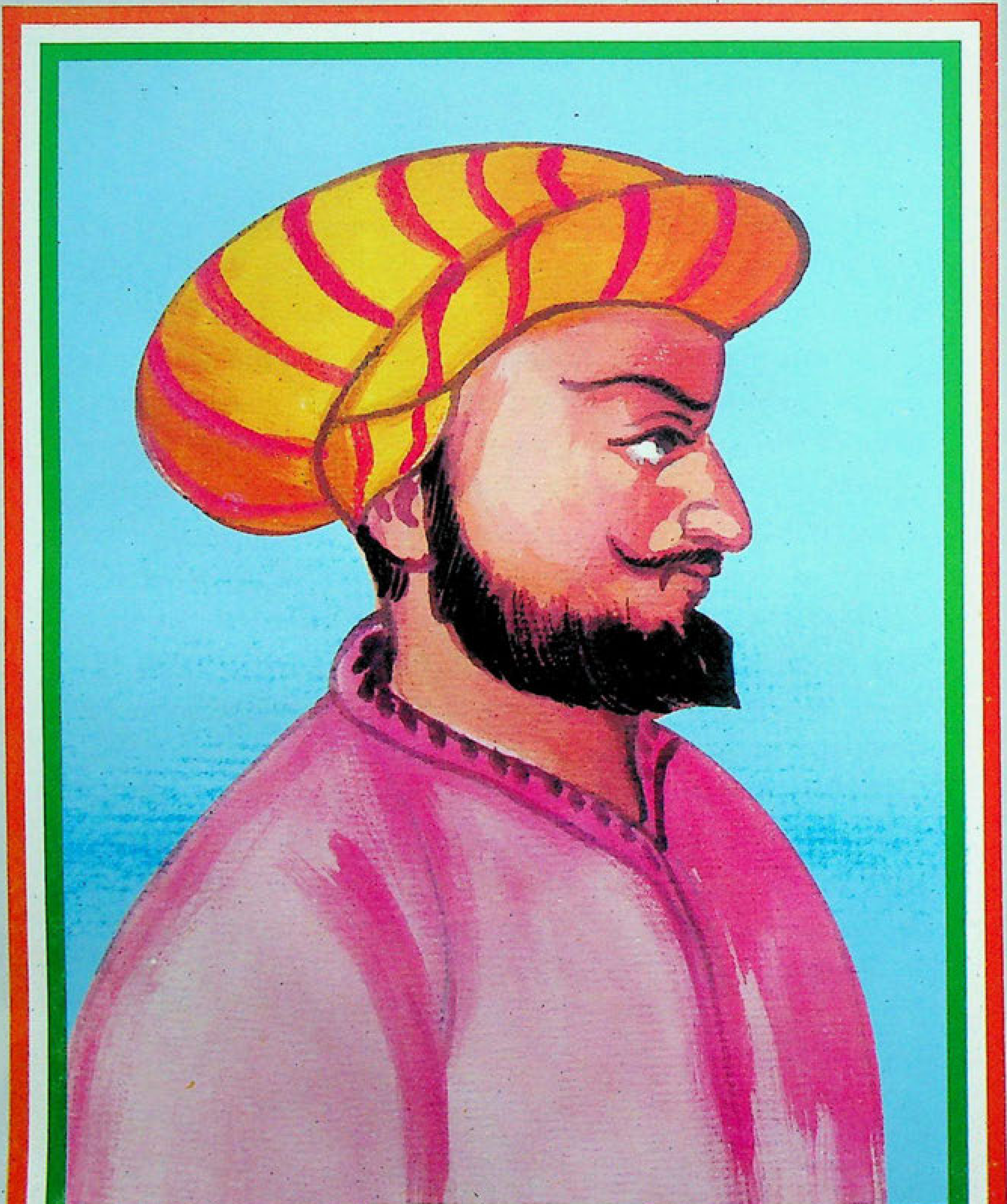

नारायणसिंह सोनाखान

रायपुर (छत्तीसगढ़) में नारायणसिंह, सोनाखान के जनप्रिय जमींदार थे। अतः वह बाद में नारायणसिंह सोनाखान नाम से प्रसिद्ध हो गये। नारायणसिंह में राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी थी। सन् 1856 में भारत में भयंकर अकाल पड़ा। उन्होंने अपने गोदामों का समस्त अन्न जनता में बाँट दिया। करोंद गाँव के व्यापारी माखन के पास गोदामों में अनाज भरा था। उसने नारायणसिंह की प्रार्थना पर भी अनाज गोदामों से न निकाला। नारायणसिंह ने बलपूर्वक उसके गोदामों का अनाज भूखी जनता में बँटवा दिया। इसी कार्य से कुपित होकर रायपुर के तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर इलियट ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। जनता में इसका प्रबल विरोध हुआ। सोहागपुर, रायगढ़ कवधी व पंडरिया आदि के जमींदारों ने नारायणसिंह सोनाखान को जेल से मुक्त कराने की योजना बनाई। उधर 10 मई को मेरठ से क्रांति का उद्घोष हो गया था। सारे भारत में कम्पनी शासन को उखाड़ फेंकने की तैयारियाँ हो रही थीं। तभी 27 अगस्त, 1857 को नारायणसिंह एक सुरंग के माध्यम से जेल से भाग निकले। सोनाखान ने अंग्रेजों के विरुद्ध सेना को पुनः संगठित किया। उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र क्रांति की घोषणा कर दी। नारायणसिंह सोनाखान ने ऐसी नाकेबंदी की हुई थी कि अंग्रेज सेना उसे छू भी नहीं सकती थी। लेकिन नारायणसिंह सोनाखान का भाई महाराजसाय देवरी का जमींदार था। उसने गद्दारी कर अंग्रेज सेना को अपने क्षेत्र से (सोनाखान से) प्रवेश करा दिया। साथ ही अंग्रेज सेना का साथ भी दिया। परिणामस्वरूप नारायणसिंह सोनाखान को गिरफ्तार कर लिया गया। दिनांक 10 दिसम्बर, 1857 को रायपुर के चौराहे पर सोनाखान को तोप के मुँह से बाँध कर उड़ा दिया गया। रायपुर में 'जय स्तंभ चौक' आज भी उनकी स्मृति को ताजा कर देता है।

सुरेन्द्र साईं

सुरेन्द्र साईं का जन्म 23 जनवरी, 1809 में खिण्डा, संबलपुर (उड़ीसा) में हुआ था। सन् 1826 में अंग्रेजों ने संबलपुर पर अपना अधिकार कर लिया। वह अंग्रेजों के इस कुकृत्य के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। रामपुर का शासक अंग्रेजों के समर्थन में खड़ा हो गया। अतः सुरेन्द्र साईं ने उसकी हत्या कर दी। अंग्रेजों ने सुरेन्द्र साईं को गिरफ्तार कर हजारीबाग जेल में डाल दिया।

1857 में स्वतंत्रता संग्राम आरम्भ होने पर हजारीबाग जेल के राज-बंदियों ने विद्रोह कर दिया एवं कारागृह के दरवाजे तोड़ सुरेन्द्र साईं सहित सभी राजबंदियों को मुक्त करवा लिया। हजारीबाग से मुक्त होते ही सुरेन्द्र साईं अपनी जन्म-भूमि संबलपुर पहुँचे। उन्होंने संबलपुर में ईस्ट इंडिया कंपनी के समानान्तर अपनी सरकार स्थापित कर दी। जनता एवं जमींदारों ने उनका साथ दिया। क्रांतिकारी सेना ने अंग्रेज सेना को बहुत क्षति पहुँचाई। हार कर अंग्रेजों ने सुरेन्द्र साईं के अतिरिक्त सभी क्रांतिकारियों के आत्मसमर्पण करने पर उन्हें क्षमा करने की घोषणा कर दी। लेकिन क्रांतिकारी सुरेन्द्र साईं के अतिरिक्त अन्य किसी की भी सत्ता स्वीकार करने को तत्पर नहीं थे। अन्त में कम्पनी सरकार ने घेरा डाल कर 23 जनवरी, 1858 को सुरेन्द्र साईं को गिरफ्तार कर ही लिया। जनता द्वारा विप्लव की संभावना थी। अतः अधिकारियों ने सुरेन्द्र साईं को आँखों से अंधा कर दिया। जेल में ही 28 फरवरी, 1884 में स्वाधीनता संग्राम के इस महान सेनानी ने अंतिम श्वाँस ली।

राव तुलाराम

राव तुलाराम का जन्म 1825 को रिवाड़ी के राज परिवार में हुआ था।

सन 1803 में राव तुलाराम के पूर्वजों ने अंग्रेजों के विरुद्ध मराठों की सहायता की थी। तभी से उनका परिवार अंग्रेजों का कोपभाजन बनता रहा। 1857 का स्वतंत्रता संग्राम आरम्भ होने पर 7 अक्टूबर को राव तुलाराम ने अपने चार-पाँच सौ सहयोगियों के साथ अंग्रेजों का सफाया कर रिवाड़ी पर अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर लिया। बादशाह बहादुर शाह जफ़र ने उन्हें 361 ग्रामों का राजा घोषित कर दिया। उन्होंने 500 सेनानियों की सेना खड़ी कर रामपुरा में तोपें आदि सैन्य सामग्री बनाने का कारखाना खोला। उन्होंने दिल्ली की क्रांतिकारी सेना की सहायता हेतु सैन्य सामग्री, सैनिक व 45000 रुपये की आर्थिक मदद भेजी। नारनौल के निकट नसीबपुर में राव तुलाराम का अंग्रेज सेना से भारी संघर्ष हुआ। यदि उस समय अंग्रेजों की मदद को गल्ता (जयपुर) के नागा साधु एवं जींद, कपूरथला व पटियाला की सिख सेना न आ गई होती तो अंग्रेजों की हार निश्चित थी। फिर अंग्रेजों का दिल्ली पर भी कब्जा न होता। राव साहब भूमिगत हो गये। नाना साहब, व लक्ष्मीबाई आदि क्रांतिवीरों ने कालपी में इकट्ठा होकर निश्चय किया कि राव साहब विदेशी मदद प्राप्त करने हेतु भारत से निकल जाएँ। अत: वह क्रांतिकारियों से मिल कर आगे की योजना बनाने लगे। भारत को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त कराने हेतु विदेशी सहायता लेने वह 1862 में ईरान पहुँचे। तेहरान में रूस के राजदूत से सम्पर्क किया। अफगानिस्तान पहुँच कर कंधार में वहाँ के अमीर दोस्त मोहम्मद खान से मिले। लेकिन कंधार में उनका स्वास्थ्य जवाब देने लगा। अपनी मातृ-भूमि को स्वतंत्र कराने के प्रयास में अपने देश की माटी से दूर 19 सितम्बर, 1863 को केवल 38 वर्ष की अल्पायु में ही वह क्रांतिवीर इस संसार से चल बसा।

गुरु रामसिंह

सद्‌गुरु रामसिंह का जन्म सन् 1826 में लुधियाना जनपद के भैणी नामक स्थान पर हुआ था। गुरु रामसिंह महाराज रणजीत सिंह की सेना में थे। ईश्वर के प्रति आसक्ति होने पर उन्होंने नौकरी छोड़ दी और भजन-पूजा में व्यस्त रहने लगे। उनकी पंजाब में ख्याति फैल गई। उनके सिख अनुयायी भगवान के ध्यान में इतने मग्न हो जाते थे कि उनकी कूक (चीख) निकल जाती थी। अत: वह कूके कहलाने लगे। महात्मा रामदास की प्रेरणा ने गुरु रामसिंह को ईश्वर - भक्ति से देश-भक्ति की ओर मोड़ दिया। अब भारतीय जनता को अंग्रेजी शासन से मुक्ति दिलाना ही उनके जीवन का लक्ष्य बन गया। उन्होंने गुप्त रूप से पंजाब को 25 जिलों में बाँट दिया। स्कूल, अस्पताल एवं डाकखाने आदि खोल कर ब्रिटिश सरकार के समानान्तर सरकार स्थापित कर दी। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया। गौहत्या बन्द किए जाने की मांग की गई। गुरु रामसिंह की योजना समय आने पर समूचे पंजाब में ब्रिटिश शासन को पलटने की थी। लेकिन उनके कुछ अनुयायी अपने जोश पर नियंत्रण नहीं कर सके। 150 कूकों ने गुरु राम सिंह की इच्छा न होते हुए भी अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उन्होंने मलौध एवं मालेरकोटला पर आक्रमण कर उन्हें अपने अधिकार में ले वीरता की मिसाल कायम कर दी। अंग्रेजी सरकार ने अपनी सशस्त्र सेना की कई टुकड़ियाँ कूका क्रांतिवीरों के विरुद्ध लगा दीं। पटियाला रियासत के सीमान्त गाँव रड़ के जंगल में भीषण युद्ध हुआ। अनेक कूके वीरगति को प्राप्त हुए। 68 कूकों को गिरफ्तार करके तोपों से उड़ाने का आदेश हुआ। गुरु राम सिंह को उनके ग्यारह साथियों के साथ गिरफ्तार करके देश निकाला देकर रंगून (बर्मा) की जेल में बंद कर दिया गया। 1885 में गुरु राम सिंह ने रंगून जेल में ही अंतिम श्वास लीं।

बिशनसिंह कूका

सन् 1872 का वर्ष था। कूका सम्प्रदाय के प्रवर्तक गुरु रामसिंह ने पंजाब में ब्रिटिश सरकार के समानान्तर सरकार खड़ी कर दी। लगभग 25 जिलों में अपने गवर्नर, प्रशासन अधिकारी व पोस्ट आफिस आदि की व्यवस्था कर दी। गौ-हत्या के विषय पर कूकों और ब्रिटिश सरकार में टकराव बढ़ गया। ब्रिटिश सरकार ने लगभग 150 कूकों को गिरफ्तार कर उन्हें तोपों से उड़ाने का आदेश दे दिया। एक-एक करके 49 कूकों को तोपों से उड़ाया जा चुका था। इसके बाद एक तेरह वर्षीय बालक बिशन सिंह कूका की बारी आई। तोपों से उड़ाने की कार्यवाही के समय डिप्टी कमिश्नर मि. कावेन की पत्नी भी वहाँ उपस्थित थीं। कावेन की पत्नी ने बालक पर दया करके उसे माफ करने की प्रार्थना की। मि. कावेन ने अपनी पत्नी की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए बिशनसिंह को अपने पास बुलाया। उसने बालक के सामने गुरु रामसिंह के प्रति कुछ अपमानजनक टिप्पणी की। इस पर बिशनसिंह आग बबूला हो गया। सुरक्षा अधिकारियों से छूटते हुए दौड़ कर वह कावेन की दाढ़ी से लटक गया। छुड़ाने पर भी दाढ़ी को न छोड़ने पर सैनिकों ने बिशनसिंह के दोनों हाथ काट दिये। अन्त में बिशनसिंह के अंगों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। इस प्रकार एक गुरु भक्त बालक ने अंग्रेजों की क्रूरता का शिकार होकर मातृ-भूमि पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिये।

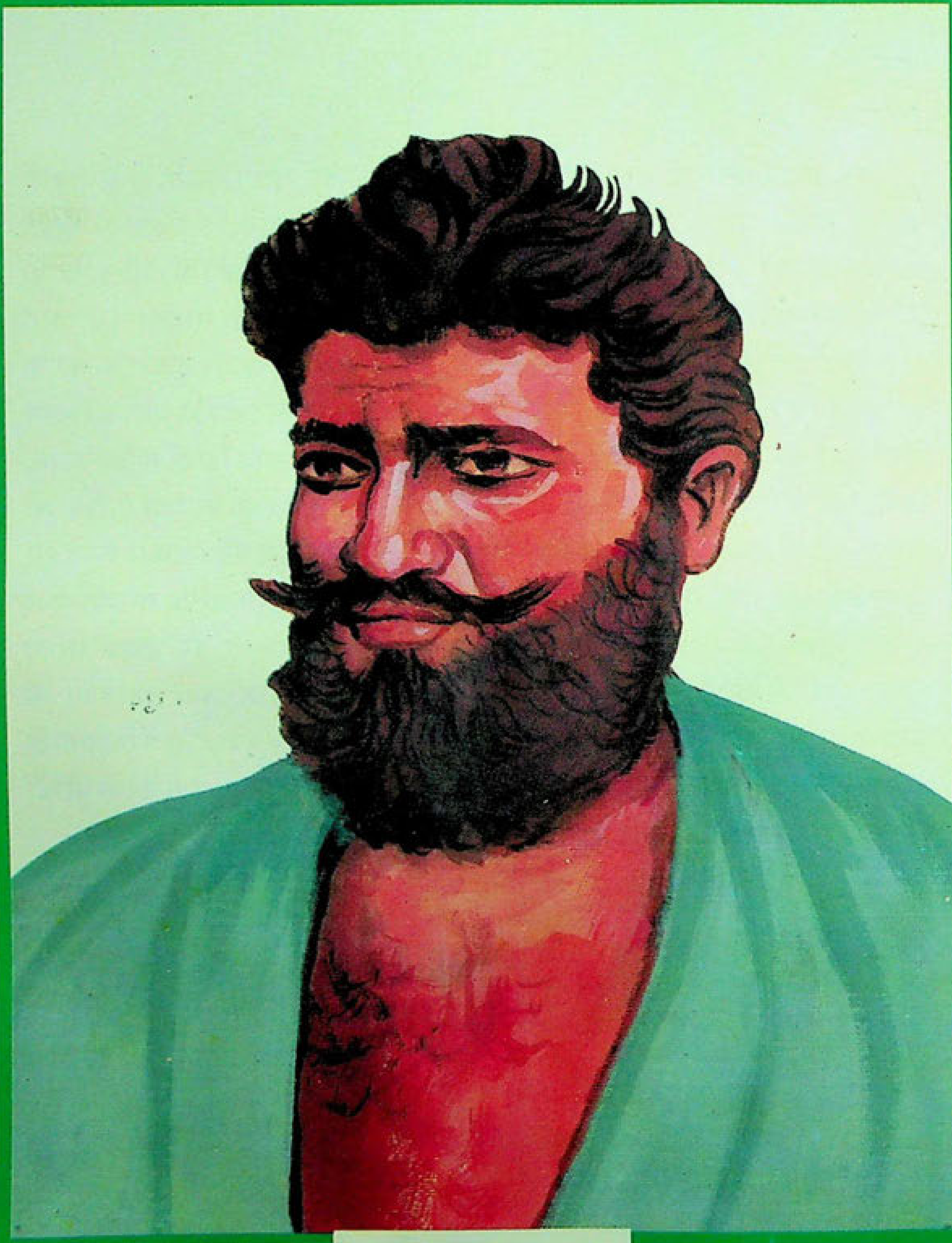

वासुदेव बलवंत फड़के

वासुदेव बलवंत फड़के का जन्म 4 नवम्बर, 1845 को पुणे में हुआ था।

वासुदेव बलवंत फड़के ने रेलवे की सरकारी नौकरी छोड़ दी और ब्रिटिश सरकार का तख्ता पलटने हेतु क्रांति की राह पकड़ ली। 'काशी बाबा' के छद्म नाम से विख्यात होकर रामोशी आदिम जाति के शूरवीरों की एक सेना गठित कर ली। 1874 में तोरण (महाराष्ट्र) के किलों पर अपना अधिकार कर अस्थाई सरकार की घोषणा कर दी। ब्रिटिश सरकार को खतरा लगने लगा। अत: सरकार ने घोषणा करा दी 'जो व्यक्ति बलवंत फड़के को गिरफ्तार करा देगा या उसकी सूचना पुलिस को देगा उसे सरकार पचास हजार का इनाम देगी।' इसके उत्तर में फड़के ने जगह-जगह पोस्टर लगवा दिये ''जो व्यक्ति गवर्नर रिचर्ड रेम्प का सर काट कर बलवंत फड़के के पास पहुँचा देगा, फड़के उसे पिछत्तर हजार रुपया इनाम देगा।' सरकार ने किसी भी कीमत पर फड़के को गिरफ्तार करने की ठान ली। पूना के विश्राम बाग कचहरी पर फड़के की सेना का अंग्रेजों के साथ जमकर संघर्ष हुआ। अनेक अंग्रेज हताहत हुए। ब्रिटिश शासन में पहली बार कर्फ्यू की घोषणा करनी पड़ी। अंत में एक बार सोते हुए 20 जुलाई, 1879 को बीजापुर जिले के देवरनबदगी गाँव से उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। 17 फरवरी, 1883 को अदन में उनकी मृत्यु हो गई।

तातिया भील उर्फ टण्ड्रा

तातिया भील का जन्म 1842 में नीमाड जिले के बिरदा गांव (मध्य प्रदेश) में हुआ था। अंग्रेजों की शह पर माल-गुजारों एवं पटेलों द्वारा मध्य प्रदेश के वनवासियों की जमीनें हड़पने का सिलसिला जारी था। तातिया ने इसका विरोध किया। उसे खूब पीटा गया और कैद कर लिया गया। जेल से छूटते ही उसने माल-गुजारों और पटेलों के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ कर दिया। अंग्रेजों ने उसे डाकू और लुटेरा घोषित कर दिया। लेकिन धन लूट कर उस धन से वह गरीबों की खूब मदद करता था। अनेक गरीब और बेसहारा लड़कियों के विवाह कराता था। अत: वनवासी क्षेत्रों में गरीब लोग उसे 'तातिया मामा' कह कर पुकारने लगे। जब कि अंग्रेज अधिकारियों ने उसे टण्ड्रा कहना आरम्भ कर दिया। अपने दल को उसने हथियार जुटाने के लिए थानों को लूटने की योजना बनाई। उसने अपने दल की कई टोलियाँ बनाईं। 24 घंटे के अन्तराल में ही कई थानों को लूटकर पुलिस को अपनी तूफानी गति का अहसास करा दिया। माल-गुजारों और पटेलों में इतनी घबराहट थी कि उनके अत्याचारों और शोषण पर लगाम लग गई। तातिया पुलिस को चकमा देने में बड़ा निपुण था। इस प्रकार 1878 से 1888 तक उसने अंग्रेज अधिकारियों को खूब छकाया। 400 लूट की घटनाओं से पुलिस परेशान थी। गाँव के लोग उसे पुलिस से बचाने के लिए अपना जीवन तक दाँव पर लगा देते थे। लेकिन एक बार गणपति नामक भेदिये ने उसे पकड़वा दिया। जबलपुर के वकीलों ने तातिया को क्षमा करने के लिए सरकार पर बहुत जोर डाला। लेकिन उसे नवम्बर, 1888 में फाँसी पर लटका दिया गया। नीमाड़ की जनता ने अपने आँसुओं से 'तातिया मामा' को मौन श्रद्धांजलि दी। तातिया भील को इतिहास में अभी तक डाकू और लुटेरे के रूप में ही दर्शाया जाता रहा है। अब हमें अंग्रेज इतिहासकारों की नकल न कर तातिया को साहसी क्रांतिवीर और शहीद का सम्मान देना ही चाहिए।

महारानी तपस्विनी

महारानी तपस्विनी का जन्म लगभग 1836 में वाराणसी में हुआ था। वह महारानी लक्ष्मीबाई की भतीजी थी। इनका वास्तविक नाम सुनन्दा था। पिता पेशवा नारायण राव के निधन के बाद अंग्रेजों ने सुनन्दा को गिरफ्तार कर त्रिचनापल्ली के किले में कैद कर लिया। सुनन्दा मुक्त होते ही सीतापुर के पास नैमिषारण्य तीर्थ पहुँची. वहीं उन्होंने संत गौरी शंकर से दीक्षा लेकर वैराग्य धारण कर लिया और गुप्त रूप से अंग्रेजी शासन के विनाश के कार्यों में जुट गई। 'माता तपस्विनी' के नाम से इनकी ख्याति सर्वत्र फैल गई। इन्होंने नाना साहब से संपर्क स्थापित किया तथा 1857 के सैनिक विद्रोह हेतु साधु व सन्तों की टोली का गठन किया। वह देश की प्रमुख छावनियों में धार्मिक अनुष्ठानों के बहाने प्रवेश करने लगीं और निश्चित तिथि को ब्रिटिश सत्ता उखाड़ फेंकने का संकल्प दिलाने लगीं।

दुर्भाग्यवश सशस्त्र क्रांति असफल हो गई। बड़ी संख्या में ब्रिटिश सरकार द्वारा साधु व सन्तों का कत्लेआम किया गया। माता तपस्विनी बच कर नेपाल की ओर कूच कर गई। नेपाल में 'जर्मन क्रुप्स' कम्पनी के नाम से बंदूकें बनाने का कारखाना खोला। इसके लिए लोकमान्य तिलक ने महाराष्ट्र से एक युवक श्रीमान खाडिलकर को उनके सहयोग के लिए भेज दिया। भेद खुलने पर कारखाने में छापा पड़ गया। खाडिलकर को गिरफ्तार कर लिया गया। घोर यातनाओं के बाद भी इन्होंने तपस्विनी के किसी भेद को नहीं खोला। अत: यह स्वयं कोलकाता लौट आईं और महाकाली पाठशाला के माध्यम से छात्रों में राष्ट्रीय भावना का संचार करने लगीं।

1905 में बंग-भंग आंदोलन के अवसर पर उन्होंने साधु - सन्तों में पुन: विद्रोह का मंत्र फूँका। गुप्त संदेशों को देश के एक कोने से दूसरे कोने में पहुँचाने के लिए माता तपस्विनी सशक्त माध्यम बनीं। माता तपस्विनी 1907 में पंचतत्व में विलीन हो गईं।

वन्देमातरम् बोल

1857 में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के झंझावातों से उद्दीप्त यज्ञाग्नि को ब्रिटिश अधिकारियों ने क्रूरता की सीमाएँ लांघते हुए ठंडा कर दिया। लेकिन 'वन्देमातरम्' का उद्‌घोष करते हुए क्रांतिवीरों की आहुति से वह यज्ञाग्नि पुनः प्रदीप्त हो उठी। ब्रिटिश-प्रतिबंधों के बाद भी 'वन्देमातरम्' स्कूल-कालेजों, कोर्ट-कचहरियों, जेलों की कोठरियों तथा देश व विदेशों में भी ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती देता रहा।

1915 में प्रवासी भारतीय क्रांतिवीरों के सहयोग से रासबिहारी बोस ने एक बार पुनः 1857 के इतिहास को दोहराने की योजना बनाई। 21 फरवरी, 1915 को समस्त भारत में एक साथ सैनिक क्रांति होनी थी। लेकिन होनी को कुछ और ही मंजूर था। देश के गद्दारों ने ब्रिटिश सरकार को इसकी पूर्व सूचना देकर, इस योजना को भी चौपट कर दिया।

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

मदनलाल ढींगरा

चम्पकरमण पिल्लै

सोहनलाल पाठक

दामोदरहरि चाफेकर

लाला हरदयाल

बाबा भानसिंह

मथुरासिंह

श्यामजीकृष्ण वर्मा

बाबा गुरुदत्तसिंह

वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय

सूफी अम्बाप्रसाद

मैडम भीखईजी कामा

रामरखा

मोहम्मद बरकतुल्ला

किशनसिंह गड़गज्ज

खुदीराम बोस

विष्णुगणेश पिंगले

भाई मेवासिंह

बालगंगाधर तिलक

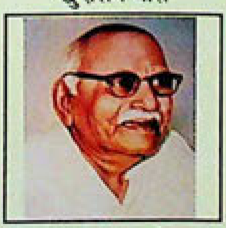
हनुमान प्रसाद पोद्दार

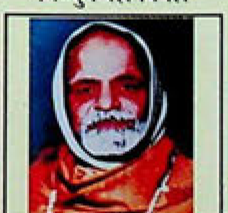
शंकराचार्य स्वामी भारतीकृष्ण तीर्थ

स्वामी चक्रधर मिश्र (राधा बाबा)

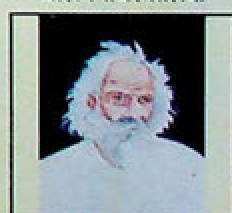
पुरुषोत्तमदास टंडन

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय का जन्म प. बंगाल के कंतलपाड़ा गांव में 26 जून, 1838 को डिप्टी कलेक्टर यादवचन्द्र के पुत्र के रूप में हुआ था। आप बंगला भाषा के शीर्षस्थ उपन्यासकार हैं। 1876 में उन्होंने 'वन्देमातरम्' गीत की रचना की। 1882 में इस गीत को उन्होंने 'आनन्द मठ' उपन्यास में स्थान दिया। 1896 में रविन्द्रनाथ टैगोर ने इस गीत को संगीत प्रदान किया एवं इसे काँग्रेस के अधिवेशन में गाया। इसके बाद तो 'वन्देमातरम्' स्वतंत्रता सेनानियों के गले का हार बन गया। फलस्वरूप तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने इस गीत पर प्रतिबंध लगा दिया। लेकिन प्रतिबंध के बाद भी क्रांतिवीर 'वन्देमातरम्' को एक नारे के रूप में प्रयोग में लाने लगे। इस गीत का केवल एक ही शब्द 'वन्देमातरम्' ब्रिटिश सरकार को शक्तिशाली बम की तरह विचलित कर देता था। बंकिमचन्द्र ने 'वन्देमातरम्' गीत के रूप में क्रांतिवीरों को एक सशक्त हथियार प्रदान किया और वह अमर हो गये। 'वन्देमातरम्' शब्द को ही लेकर बाद में अनेक क्रांतिकारी गीतों की रचना हुई, जिन्होंने ब्रिटिश सिंहासन को हिला दिया। छात्रों में इस गीत का खूब प्रचार हुआ। अनेक स्थानों पर छात्र कक्षा में अध्यापकों के आने पर 'वन्दे- मातरम्' से उनका अभिवादन करने लगे। इसे अपराध मान कर छात्रों को दंडित होना पड़ा। वन्देमातरम् गीत का पहला शब्द 'वन्देमातरम्' भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का उद्घोष बन गया। 'वन्दे मातरम्' गीत को भारतीय संविधान में 'राष्ट्रीय गीत' का गौरव प्रदान किया गया है। अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष हेतु 'आनन्द मठ' उपन्यास में वर्णित संन्यासी आन्दोलन भी भारतीयों के लिये प्रेरणा का स्रोत बना। बंकिमचन्द्र ने स्वतंत्रापूर्वक लेखन करने के लिये 53 वर्ष की आयु में ही सरकारी नौकरी छोड़ दी। उन्होंने अपने जीवन में कुल 15 उपन्यास लिखे। 'आनन्दमठ' ने उन्हें कीर्ति के शिखर पर पहुँचा दिया। 8 अप्रैल, 1894 को उनका निधन हो गया।

दामोदर हरि चाफेकर

चाफेकर बंधु

दामोदर हरि चाफेकर एवं बालकृष्ण हरि चाफेकर का जन्म क्रमशः 25 जून, 1869 एवं 1873, चिंचवाड, पुणे (महाराष्ट्र) में हुआ था। महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक की प्रेरणा से अनेक ऐसे संगठन कार्य कर रहे थे जिनका उद्देश्य भारत से ब्रिटिश शासन को समूल नष्ट करना था। दामोदर, बाल कृष्ण और वसुदेव तीनों सगे चाफेकर भाई ऐसे ही दल के सदस्य थे। 1897 में पूना में प्लेग महामारी फैली। प्लेग कमिश्नर वाल्टर चार्ल्स रैण्ड के कर्मचारी प्लेग की गिल्टी को देखने के बहाने औरतों के वस्त्र उतरवा कर अभद्रता की सीमा लाँघ जाते थे। उनके जेवर उतरवा कर उन्हें छीन लेते थे। घरों के सामान को आग लगा देते थे। इन अत्याचारों से मुक्ति दिलाने का इन तीनों भाइयों ने बीड़ा उठाया। दामोदर हरि चाफेकर ने अपने साथियों के साथ मिल कर 22 जून, 1897 को रैण्ड का वध कर दिया। उसके वध के समाचार से पूरे शहर के लोगों में खुशी की लहर दौड़ गई। लोग मन ही मन क्रांतिवीरों को दुआएँ देने लगे। इन्हीं के दल में शामिल गणेश शंकर और रामचन्द्र दो सगे भाइयों ने इनाम के लालच में पुलिस को भेद दे दिया। दामोदर गिरफ्तार कर लिये गये। उन्हें 8 अप्रैल, 1898 को फाँसी दे दी गई। बालकृष्ण भूमिगत हो गये। बाद में वह भी पकड़े गये। सबसे छोटे भाई वसुदेव ने गणेश शंकर और रामचन्द्र दोनों का बध करके राष्ट्रद्रोह की सजा दे दी। वसुदेव ने 8 मई, 1899 को फाँसी का फंदा चूम कर शहादत प्राप्त की। इनका बीच वाला भाई बाल कृष्ण हरि चाफेकर भी 12 मई, 1899 को फाँसी का फंदा चूम कर शहीद हो गया। इस प्रकार एक ही माँ के तीन लाल मातृ-भूमि पर कुर्बान हो गये। उनकी जननी माँ ने वीर प्रसूता होने का गौरव प्राप्त किया।

श्यामजी कृष्ण वर्मा

पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा ने 4 अक्तूबर, 1857 को कच्छ (गुजरात) के माण्डवी ग्राम में एक वैश्य परिवार में जन्म लिया। वे महर्षि दयानन्द के पक्के शिष्य एवं संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने अपनी क्रांतिकारी गतिविधियाँ इंग्लैड, जर्मनी, फ्रांस व स्विटजरलैंड आदि देशों से संचालित कीं। इन्होंने इंग्लैंड में 1905 में 'होमरूल सोसायटी' व 'इंडिया हाउस' होस्टल की स्थापना की। 1905 में उन्होंने 'इंडियन सोशियोलोजिस्ट' नाम का अंग्रेजी पत्र निकाला। इस पत्र में भारत में अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे क्रूर अत्याचारों की पोल खोली जाती थी। इंग्लैंड में गिरफ्तारी के भय से वे पेरिस पहुँचे। 'इंडिया हाउस' क्रांतिकारी गतिविधियों का केन्द्र बन गया। भारत में रासबिहारी बोस ने 21 फरवरी, 1915 को सारे देश से एक साथ अंग्रेज हुकूमत को उखाड़ फेंकने की योजना बना रखी थी। उनकी मदद के लिए इन्होंने मैडम कामा को साथ लेकर जर्मनी से स्टीमरों द्वारा हथियारों का जखीरा व 'बम बनाने की विधि' पुस्तक को गुप्त रूप से भारत भेजा। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि 1857 की क्रांति के सूत्रधार नाना साहब पेशवा गुप्त रूप से श्याम जी कृष्ण वर्मा को आर्थिक सहायता भेज रहे थे। लेकिन यह शोध का विषय है। प्रथम विश्व युद्ध में भारतीय सैनिकों को उकसाने पर फ्रांस की सरकार ने इन्हें राजद्रोही घोषित कर दिया। अतः श्याम जी कृष्ण वर्मा गुप्त रूप से स्विटजरलैंड चले गये। निरंतर संघर्ष करते-करते 73 वर्ष की आयु में 31 मार्च सन् 1930 को जिनेवा में भारत माँ का यह सच्चा सपूत इस संसार से सदा के लिए विदा हो गया।

''स्वतंत्रता की लड़ाई एक बार आरम्भ हो जाय और पिता अपने पुत्र को उसके लिए सौंप दे तो अक्सर हार होने पर भी हमेशा जीत होती है।''

-मैडम भीखई जी कामा

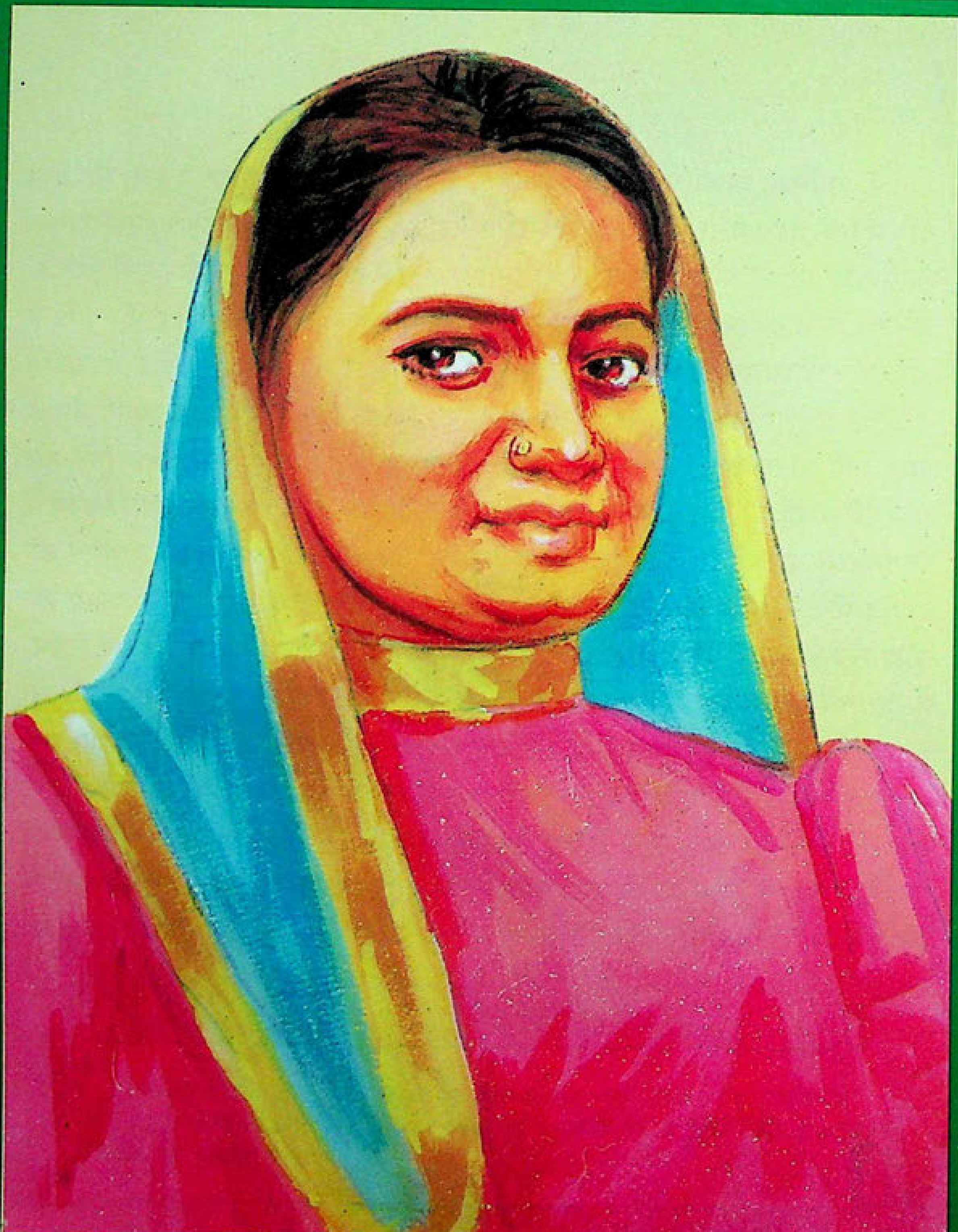

मैडम भीखईजी रुस्तम कामा

मैडम भीखईजी कामा का जन्म मुम्बई के धनिक पारसी परिवार में 24 सितम्बर, 1861 को हुआ था। मैडम भीखईजी कामा इलाज के लिए 1901 में लन्दन गई थीं। वहाँ वह क्रांतिवीरों के सम्पर्क में आईं। उन्होंने देश को दासता के बंधनों से मुक्त कराने हेतु अपने पारिवारिक बंधनों को त्याग दिया। लन्दन में श्याम जी कृष्ण वर्मा के साथ मिल कर क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन करने लगीं। अपने ओजस्वी भाषणों से अंग्रेजों द्वारा भारत में किये जा रहे अत्याचारों की पोल खोली। लन्दन में गिरफ्तारी के भय से पेरिस जाकर वीर सावरकर व लाला हरदयाल आदि क्रांतिवीरों के साथ भारत की आजादी के संघर्ष में जुटी रहीं। जर्मनी में समाजवादियों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व किया एवं भारत की ओर से यूनियन जैक के स्थान पर भारत के राष्ट्रीय ध्वज के रूप में 'वंदे मातरम्' लिखा तिरंगा ध्वज फहरा कर सभी को अचंभित कर दिया। इस ध्वज पर सात सितारे, कमल, सूर्य व अर्धचन्द्र के चिह्न अंकित थे जोकि खुशहाल भारत के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करते थे। 1907 में विदेशों में फहराया जाने वाला यह प्रथम राष्ट्रीय ध्वज था। यह ध्वज आज भी पुणे में 'मराठा' व 'केसरी' समाचार पत्र के पुस्तकालय में सुरक्षित है। प्रथम विश्व-युद्ध छिड़ने पर मैडम कामा ने फ्रांस में घोषणा कर दी - 'भारत इस युद्ध में अंग्रेजों का साथ नहीं देगा'। अत: अंग्रेजों के दबाव में आकर फ्रांस की सरकार ने इन्हें गिरफ्तार कर लिया। और युद्ध की समाप्ति पर ही 1918 में छोड़ा। चार वर्ष के कठोर कारावास से उनका शरीर जर्जर हो गया। अत: अपना अंतिम समय निकट देख अपनी मातृभूमि भारत की रज का स्पर्श पाने को वह आतुर हो उठीं। ब्रिटिश सरकार ने बड़ी कठिनाई से उन्हें भारत प्रवेश की अनुमति दी। भारत आने के कुछ माह बाद 16 अगस्त, 1936 को वह पंचतत्व में विलीन हो गईं।

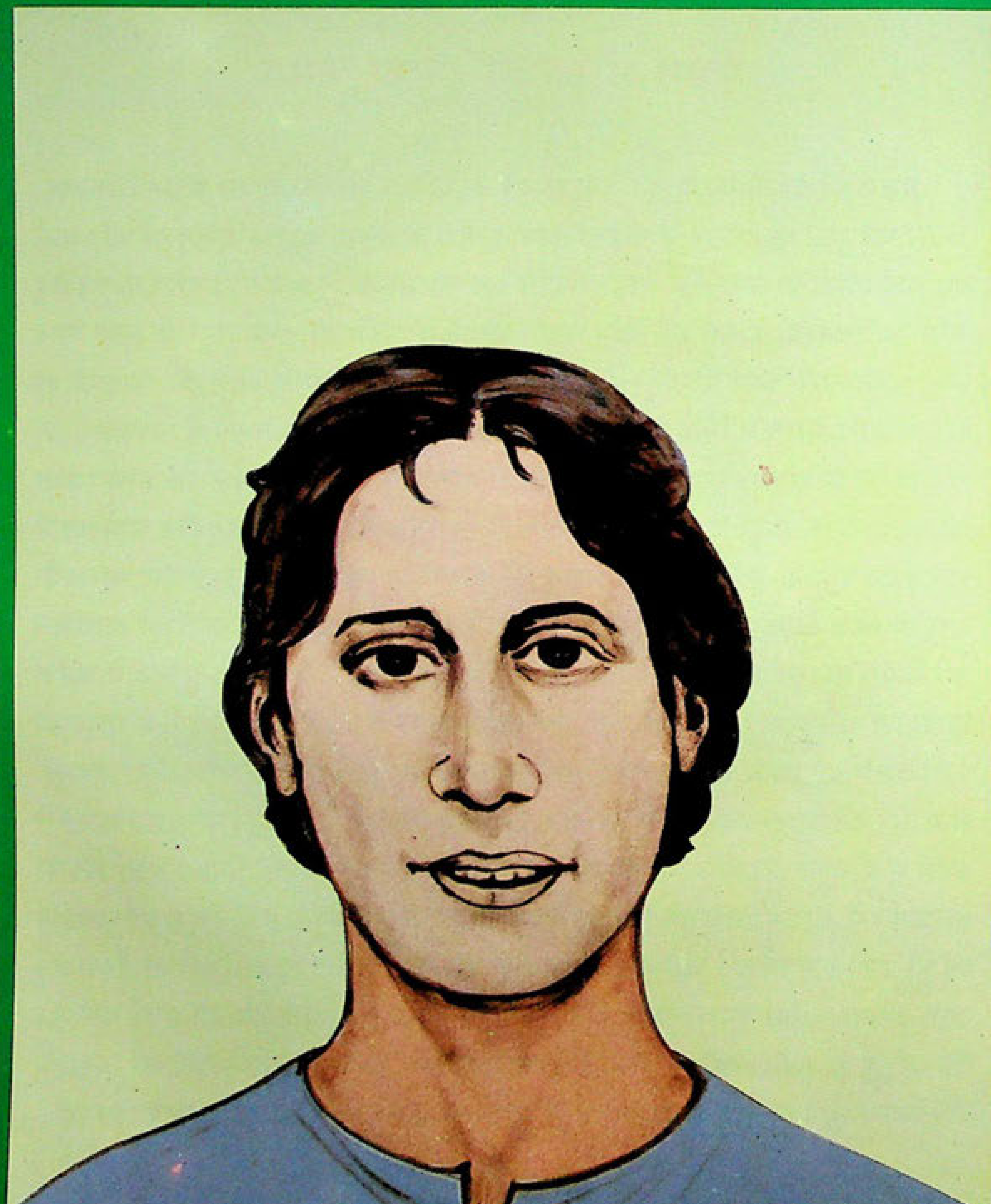

खुदीराम बोस

खुदीराम बोस का जन्म 3 दिसम्बर, 1889 को मिदनापुर जिले के मोहबनी गांव में त्रिलोक्यनाथ के पुत्र के रूप में हुआ। छः वर्ष की आयु में ही उनके माता पिता का निधन हो गया। उनकी बहिन ने उन्हें पाला। 1905 में बंगाल विभाजन की घटना से प्रभावित हो खुदीराम बोस ने विद्यालय छोड़ दिया एवं अंग्रेजी शासन के विरुद्ध क्रांति की राह पकड़ ली। 28 फरवरी, 1906 को 'सोनार बंगला' एवं 'नो कम्प्रोमाइज' पुस्तकें मुफ्त बाँटते हुए वे पकड़े गये परंतु पुलिस दल को गच्चा दे कर भाग निकले। यह दोनों पुस्तकें अरविंद घोष की थीं। इनमें ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध क्रांति का संदेश था। 1907 में हाटगेछा के पास सरकारी खजाना लूट लिया। कोलकाता के चीफ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट किंग्स फोर्ड के अत्याचारों से बंगाल के देशभक्त क्रांतिवीर परेशान थे। क्रांतिवीरों ने उसकी हत्या की योजना बना ली। डर कर उसने अपना स्थानान्तरण मुजफ्फरपुर करा लिया। क्रांतिवीरों ने उसकी हत्या का दायित्व खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी को सौंपा। दिनांक 30 अप्रैल, 1908 को दोनों क्रातिवीरों ने एक लाल बग्घी को किंग्स फोर्ड की समझ उस पर बम फेंका। लेकिन वह बग्घी केनेडी परिवार की थी जिसमें कैनेडी व उनकी दोनों पुत्रियाँ मारी गईं। दोनों क्रांतिवीर अलग-अलग दिशाओं में भागे। खुदीराम बोस बैनी रेलवे स्टेशन पर पकड़े गये। 11 अगस्त, 1908 को खुदीराम बोस केवल 19 वर्ष की आयु में ही गीता हाथों में लेकर फाँसी का फंदा चूम कर शहीद हो गये।

मेकाघाट पर प्रफुल्ल कुमार चाकी भी पकडे गये। लेकिन उन्होंने अपनी रिवाल्वर से ही आत्म-बलिदान कर लिया। एक सिपाही नन्द लाल बनर्जी पहचान कराने हेतु उनका सर काट कर मुजफ्फरपुर ले आया। इस सिपाही को इस कुकृत्य के लिए अंग्रेजों ने पुरस्कृत किया। बाद में क्रांतिवीरों ने उसके इस कुकृत्य पर उसका वध कर उसे यमलोक पहुँचा दिया।

मदनलाल ढींगरा

मदनलाल ढींगरा का जन्म पंजाब के एक गाँव में 1887 में हुआ था। मदनलाल ढींगरा ने श्याम जी कृष्ण वर्मा, विनायक सावरकर व मैडम कामा के साथ विदेशों में क्रांति की मशाल को प्रज्ज्वलित किया। लन्दन में कर्जन वायली भारतीय क्रांतिकारी वीरों के खिलाफ जासूसी करता था। इसी कारण अनेक क्रांतिकारी वीरों को सजा मिल चुकी थी या वे फाँसी पर लटकाये जा चुके थे। अत: एक जुलाई, 1909 को लन्दन के इम्पीरियल इंस्टीट्यूट के हाल में मदनलाल ढींगरा ने कर्जन वायली को गोली मार दी। इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। मुकदमे के अंतिम दिन वह अपने बयान को पहले ही कागज पर लिख कर ले गये थे। उनका बयान इस प्रकार था- ''मैंने जो कुछ किया है ठीक ही किया है, अंग्रेज लोगों को भारत को अपने कब्जे में रखने का कोई अधिकार नहीं है। यदि जर्मन लोग इंग्लैंड पर अपना अधिकार कर लें तो अंग्रेज लोग वही करेंगे जो मैंने किया। आप लोग मुझे मृत्यु दण्ड दे सकते हैं। मेरी मृत्यु अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह की आग को भड़काने का काम करेगी।''

अंग्रेजों ने यह बयान अपनी बदनामी के डर से प्रकाशित ही न होने दिया। लेकिन वीर सावरकर ने बड़ी चतुराई से अपने मित्र ज्ञान चन्द वर्मा के द्वारा उस बयान की प्रति फ्रांस भिजवा दी और वह बयान कुछ दिनों बाद ही फ्रांस, इंग्लैंड व विश्व के समाचार पत्रों में प्रकाशित हो गया। मदनलाल ढींगरा को 17 अगस्त, 1909 को पैन्टोनविले (लंदन) जेल में फाँसी दे दी गई। फाँसी वाले दिन ही प्रात: इंग्लैंड की सड़कों और चौराहों पर एक पर्चा वितरित किया गया- ''आज 17 अगस्त, 1909 का दिन प्रत्येक देश भक्त भारतीय के वक्ष पर खून से लिखा जाना चाहिए। आज के दिन सर्वोत्कृष्ट देश भक्त मदनलाल ढींगरा को फाँसी पर लटकाया जायेगा। उसका पवित्र नाम हमारे देश के इतिहास के पृष्ठों को अलंकृत करेगा। उसकी आत्मा हमारी आजादी की लड़ाई में हमारा पथ प्रदर्शन करेगी...।''

लाला हरदयाल

ला. हरदयाल का जन्म दिल्ली में 14 अक्तूबर, 1884 को लाला गौरी दयाल माथुर के पुत्र के रूप में हुआ था। एम.ए. की परीक्षा में पंजाब में प्रथम आने पर सरकार ने इन्हें इंग्लैंड पढ़ने भेजा। लेकिन वे लंदन में श्यामजी कृष्ण वर्मा व मैडम कामा के संपर्क में आ कर क्रांतिकारी वीरों के साथ भारत को स्वतंत्र कराने की योजना में व्यस्त हो गए। 1911 में इन्हें अमेरिका के सेनफ्रांसिस्को स्टेनफोर्ड में लैक्चरार नियुक्त होने का अवसर प्राप्त हो गया। 21 अप्रैल, 1913 को अमेरिका में स्टोरिया नगर के प्रवासी भारतीयों की विशाल सभा में इन्होंने भारत की आजादी हेतु सर्वस्व न्यौछावर करने का आह्वान किया। यहीं पर इन्होंने 'हिन्दुस्तानी एसोसिएशन' (गदर पार्टी के नाम से विख्यात) का गठन भी किया। 1913 में 'गदर' पत्र प्रकाशित किया। इस पत्र के माध्यम से शंघाई, मनीला, बैंकाक, हांगकांग, और पनामा आदि नगरों में भारत मुक्ति संघर्ष में आहुति देने के लिए वहाँ के प्रवासी भारतीयों को क्रांति का संदेश पहुँचाया। परिणामस्वरूप अमेरिका के 4000 भारतीयों ने अपना घर व व्यापार बेच सैनिक सामग्री के साथ भारत को मुक्त कराने के लिए विविध जहाजों द्वारा भारत की ओर कूच कर दिया। ब्रिटिश दबाव से अमेरिका सरकार ने लाला जी को गिरफ्तार कर लिया। रिहा होते ही यह जर्मन रवाना हो गये। जर्मन सरकार ने इन्हें एक वर्ष के लिए नजरबंद कर लिया। इसके बाद स्वीडन में स्थाई निवास बनाया। 1939 में फिलाडेल्फिया (अमेरिका) में रहकर भारत की स्वाधीनता की मांग उठाते रहे। यहीं पर 3 मार्च, 1939 को भारत की आजादी की अपने मन में आशा संजोये वह चिर-निद्रा में लीन हो गये।

बाबा गुरुदत्तसिंह
'कामागाटामारु' घटना के नायक

बाबा गुरुदत्तसिंह ने हांगकांग में एक 'कामागाटामारु' जहाज किराए पर लिया। कनाडा जाने वाले 376 भारतीय यात्रियों को लेकर वह जहाज 4 अप्रैल, 1914 को कनाडा की ओर चल पड़ा। वे यात्री अपने रिश्तेदारों से मिलने जा रहे थे। 48 दिन की यात्रा के बाद जब वह जहाज बैंकावूर पहुँचा तो कनाडा सरकार ने उसे प्रवेश की अनुमति नहीं दी और जहाज को बैंकावूर पर ही रोक दिया।

कनाडा सरकार ने उन्हें क्रांतिकारी समझ कर उन पर आक्रमण का प्रयास किया। बैंकावूर के प्रवासी भारतीयों ने घोषणा कर दी- ''यदि भारतीय यात्रियों को कुछ भी नुकसान पहुँचाया गया तो बैंकावूर को आग के शोलों में बदल देंगे'' अतः बैकावूर सरकार ने 23 जुलाई को जहाज को भारत की ओर लौटा दिया।

भारत में अंग्रेज सरकार को शंका थी कि इस जहाज में भारतीय क्रांतिकारी हैं अतः इसे कोलकाता से पूर्व बजबज बंदरगाह पर ही रोक लिया। यात्रियों को सशस्त्र पहरे में उतारा गया। गुरु नानक जी के चित्र पर बाबा गुरुदत्त सिंह मत्था टेक रहे थे तभी अंग्रेज सैनिकों ने गोली चला दी। लगभग 18 यात्री घटना स्थल पर ही मारे गए। बाबा गुरुदत्त सिंह के साथ कुछ यात्री बच कर भारत में प्रवेश कर गये।

वास्तव में कामागाटामारू की घटना बाबा गुरुदत्तसिंह का व्यक्तिगत प्रयास था लेकिन कनाडा और भारत की सरकारों द्वारा निहत्थे, भोले व भूखे व प्यासे यात्रियों के साथ अमानवीय व्यवहार ने इसे राष्ट्रीय घटना बना दिया। इस घटना के बाद विदेशों में भारतीयों का खून खौल उठा। हजारों की संख्या में गदर पार्टी के प्रवासी भारतीयों ने (जिनमें मुख्यतः सिख ही थे।) भारत को आजाद कराने हेतु शस्त्रास्त्र सहित भारत की ओर कूच कर दिया। इस घटना ने भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष को बल प्रदान किया।

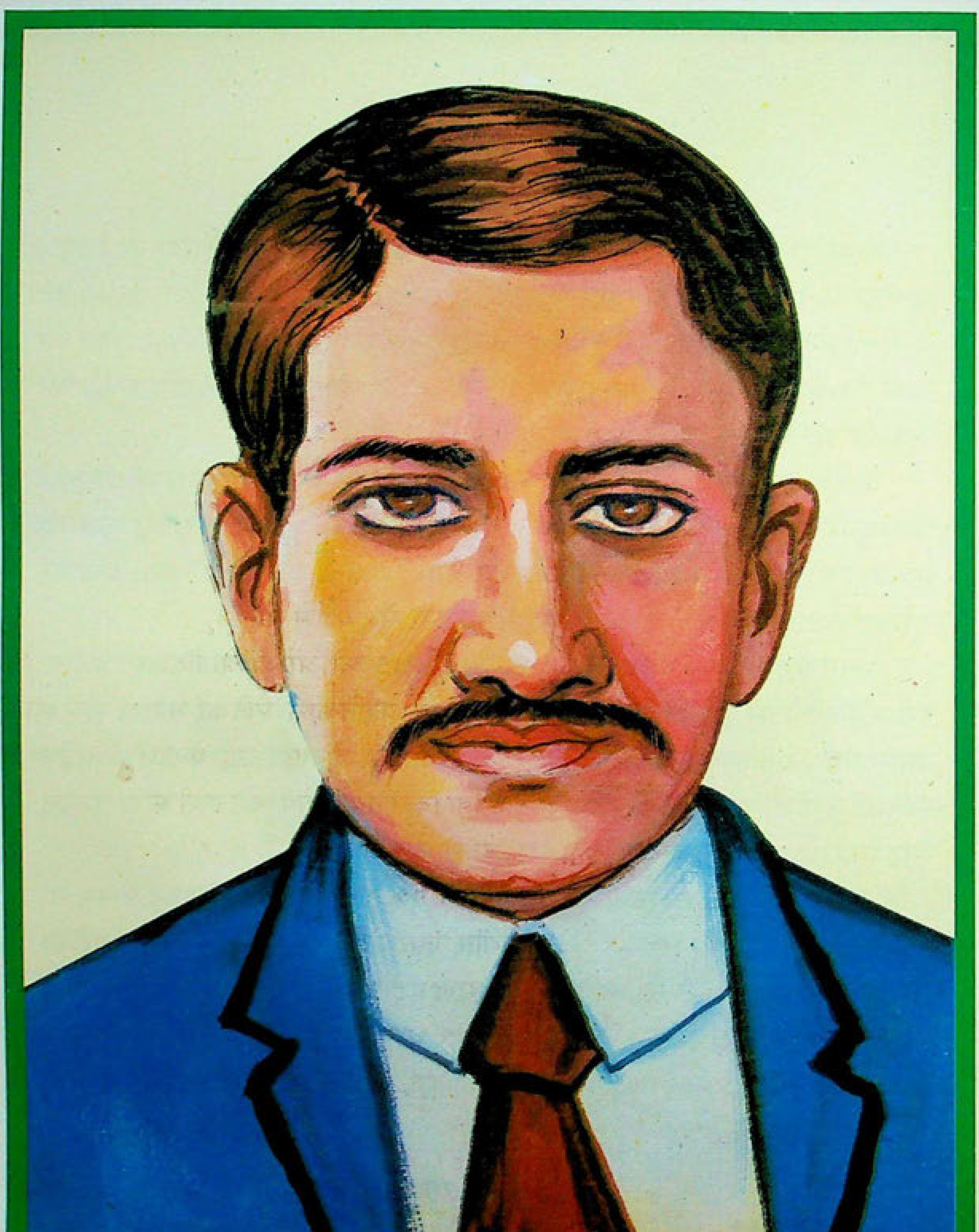

शहीद रामरखा

रामरखा का जन्म ससोली (पंजाब) में हुआ था। वे विदेशों में कार्यरत 'गदर पार्टी' के सक्रिय कार्य-कर्त्ता थे। सैंकड़ों भारतीय क्रांतिवीरों ने भारत की आजादी की खातिर विदेशों में जाकर स्वतंत्रता की अलख जगाई थी। इसी हेतु सेनफ्रांसिस्को में 'गदर पार्टी' की स्थापना हुई। सिंगापुर की सेना में भारतीय सैनिक बड़ी संख्या में थे। गदर पार्टी का उद्देश्य था कि सिंगापुर के भारतीय सैनिकों में हिन्दुस्तान के प्रति राष्ट्रभक्ति जाग्रत करके सिंगापुर पर अधिकार किया जाये। उसके बाद सिंगापुर से बर्मा होते हुए भारत पर आक्रमण किया जाय। इस कार्य के लिए सिंगापुर में भारतीय सैनिकों को अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष हेतु तैयार करने का दायित्व रामरखा को सौंपा गया। रामरखा एवं उनके साथियों ने साहस के साथ बड़े गोपनीय ढंग से अपना दायित्व पूरा किया। उन्होंने सिंगापुर की पाँचवीं लाइट इन्फैंट्री के भारतीय सैनिकों में मातृ-भूमि के प्रति निष्ठा जाग्रत कर दी। उन सैनिकों ने 15 फरवरी, 1915 को अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांति का उद्घोष कर दिया। चार दिन तक सिंगापुर पर क्रांतिकारी सैनिकों का वर्चस्व रहा लेकिन बाद में यूरोपियन सैनिकों की संख्या बढ़ा दी गई। 23 फरवरी को 136 क्रांतिकारी सैनिकों में से 27 को गोली से उड़ा दिया गया। शेष को लम्बी सजाएँ दी गईं। रामरखा को भी आजीवन कारावास देकर अंडमान भेज दिया गया। अंडमान में रामरखा को कठोर यातनाएँ दी गईं। लेकिन एक यातना वे सहन न कर सके। क्रूर अधिकारियों ने बलपूर्वक उनका यज्ञोपवीत उतारने की कुचेष्टा की। इसके विरोध में उन्होंने भूख हड़ताल कर दी। 92 दिन की भूख हड़ताल के बाद 1919 में यह क्रांतिवीर अमरत्व को प्राप्त हो गया। विनायक दामोदर सावरकर ने 'मेरा आजीवन कारावास' पुस्तक में शहीद रामरखा के आँखों देखे संघर्ष व बलिदान का प्रेरणादायक वृत्तांत प्रस्तुत किया है।

विष्णु गणेश पिंगले

विष्णु गणेश पिंगले का जन्म महाराष्ट्र के चितपावन ब्राह्मण परिवार में जनवरी सन् 1888 में हुआ था। विष्णु गणेश ने अमेरिका के सैतले विश्वविद्यालय से इंजीनियरिंग की स्नातक की डिग्री प्राप्त की। लेकिन इस योग्यता के बाद भी उन्होंने धन एवं वैभव को तिलांजलि दे दी। वे भारत को स्वतंत्र कराने हेतु अमेरिका में गदर पार्टी में शामिल हो गये। अमेरिका से भारत को स्वतंत्र कराने हेतु आ रहे 8000 भारतीयों के दल के साथ वे भी भारत पहुँच गये। भारत में रास बिहारी बोस ने 21 फरवरी, 1915 को समस्त भारत की सैनिक छावनियों में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सैनिक क्रांति की योजना बना रखी थी। विष्णु गणेश पिंगले ने भारत की सैनिक छावनियों में भारतीय सैनिकों में क्रांति की अलख जगाई। इसी कार्य से वे मेरठ छावनी में गये हुए थे।

23 मार्च, 1915 को मेरठ छावनी में एक रिसाले के जमादार नादिरखान ने विष्णु गणेश पिंगले को धोखे से गिरफ्तार करा दिया। पिंगले के विरुद्ध 'लाहौर षडयंत्र केस' में मुकदमा चलाया गया। विष्णु गणेश पिंगले को उनके छः अन्य सिख साथियों के साथ 17 नवम्बर को लाहौर केन्द्रीय कारागार में फाँसी पर लटका दिया। फाँसी से पूर्व उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की, ''हे भगवान! जिस पवित्र कार्य के लिए हम अपने-अपने जीवन की आहुतियाँ दे रहे हैं, उसकी रक्षा का भार तुम पर है। भारत स्वाधीन हो, यही मेरी अंतिम इच्छा है।''

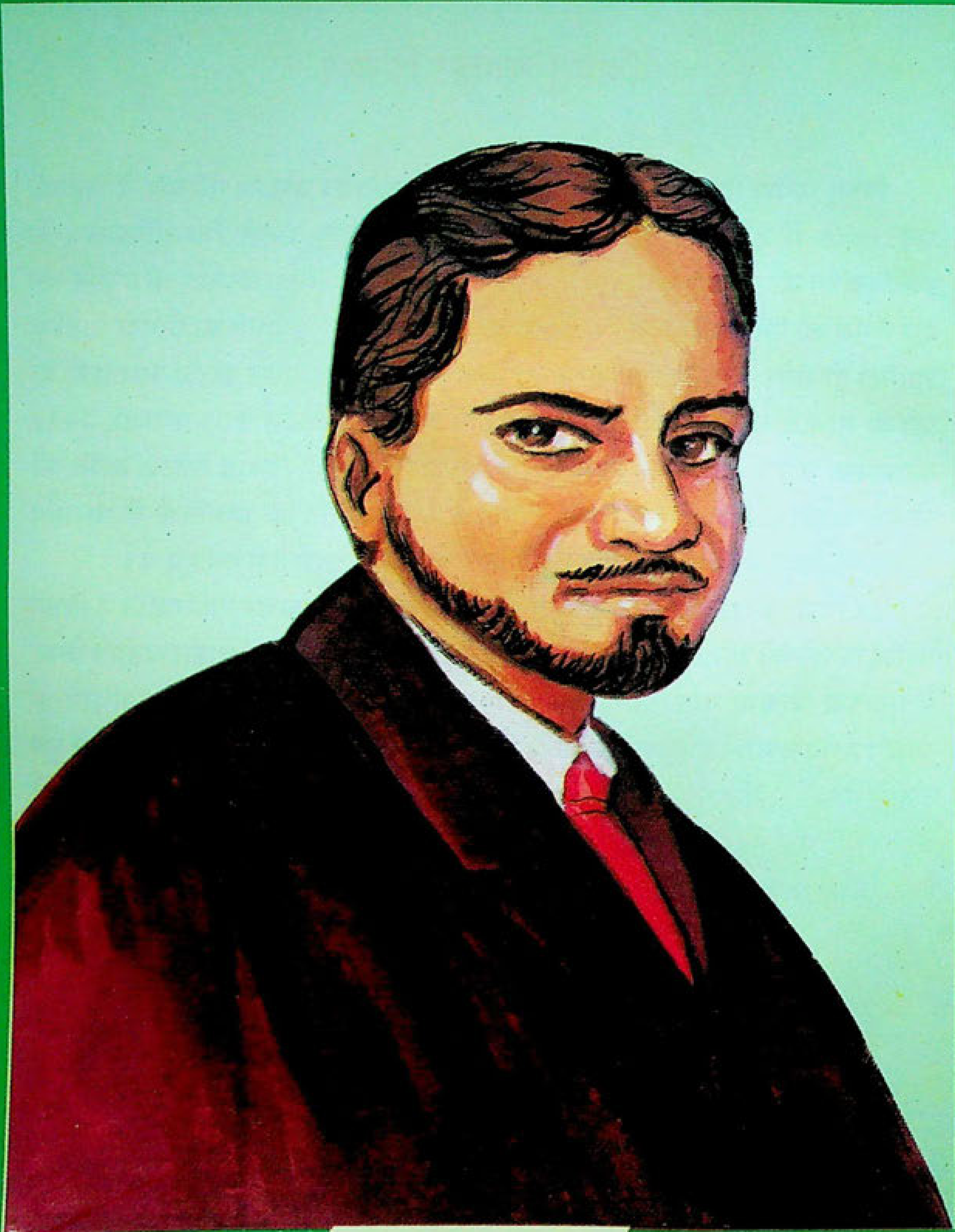

चम्पकरमण पिल्लै

चम्पकरमण पिल्लै का जन्म 15 सितम्बर, 1891 को तिरुअनन्तपुरम में हुआ था। चम्पकरमण पिल्लै ने भारतीय स्वतंत्रता की ज्योति को विदेशों में जाकर प्रज्जवलित किये रखा। उन्होंने इटली जाकर 12 भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। वे जर्मनी में सलाहकार इंजीनियर बने। वे ज्यूरिख में 'अन्तर्राष्ट्रीय भारत समर्थन समिति' के अध्यक्ष थे। चम्पक रमण पिल्लै ने 1914 में जर्मनी में 'इंडियन नेशनल पार्टी' की स्थापना की। लाला हरदयाल, मो० बरकतुल्ला, तारखनाथ दास व वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय आदि क्रांतिवीर इस पार्टी के सदस्य थे। इस पार्टी की योजना थी कि थाईलैंड से बर्मा में भारतीय सैनिकों की टोलियाँ भेजी जाएँ और बर्मा पर अधिकार किया जाये। बर्मा से भारत पर सैनिक कार्यवाही करके भारत को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त कराना आसान होगा। चम्पक रमण पिल्लै अंडमान के राजबंदियों को मुक्त कराने हेतु जर्मन पनडुब्बी लेकर अंडमान की ओर चल पड़े। लेकिन अंग्रेजों द्वारा यह पनडुब्बी समुद्र के बीच में ही नष्ट कर दी गई। वे समुद्र में कूद पड़े और बच कर जर्मन वापस पहुँच गये। काबुल में राजा महेन्द्र प्रताप द्वारा स्थापित 'आजाद हिन्द सरकार' के पिल्लै विदेश मंत्री बने। हिटलर द्वारा भारत के बारे में गलत टिप्पणी का इन्होंने विरोध किया। संभवतः इसी कारण कुछ नाज़ी लोगों ने बर्लिन में उनकी 23 मई, 1934 को हत्या कर दी और उनकी सम्पत्ति हड़प ली। उनकी पत्नी श्रीमती लक्ष्मी बाई ने इस महान स्वतंत्रता सेनानी की अस्थियों को संभाल कर रखा। 32 वर्ष बाद चम्पक रमण पिल्लै की अंतिम इच्छानुसार स्वतंत्र भारत के प्रथम स्वदेशी सैनिक पोत द्वारा उन अस्थियों को 1966 में उनकी जन्मभूमि के पास समुद्र में प्रवाहित किया गया।

बाबा भानसिंह

बाबा भानसिंह का जन्म लुधियाना (पंजाब) के सिख परिवार में हुआ था। उन्होंने अमेरिका जाकर अपना कारोबार स्थापित किया एवं वहाँ 'गदर पार्टी' के सदस्य बन गए। गदर पार्टी के साथ अमेरिका में रहने वाले 4000 भारतीय अपना घर-बार बेच कर भारत को अंग्रेजों से मुक्त कराने के लिए भारत जा रहे थे। बाबा भानसिंह ने भी अपना कारोबार बंद किया और बैंक से सारी धनराशि निकाल कर उन्हीं लोगों के साथ 29 अक्टूबर, 1914 को कोलकाता के लिए कूच कर दिया। कोलकाता पहुँचते ही सरकार ने इन्हें गिरफ्तार कर लिया। रिहा होने के बाद पुनः गिरफ्तार कर लिया गया। अब की बार इन्हें अण्डमान की सेल्यूलर जेल की काल कोठरी में डाल दिया गया। बाबा भानसिंह को कौमी तराने गाने का शौक था। अत: जेल अधिकारी चिढ़ कर उन्हें एक से एक कठोर यातनाएँ देते रहते थे। स्वाभिमान पर चोट पड़ने पर उनका अधिकारियों से प्रायः झगड़ा होता रहता था। आखिरकार अधिकारियों ने उन्हें तीसरी मंजिल पर ढाई फुट चौड़ी और ढाई फुट लम्बी छोटी सी कोठरी में बंद कर दिया। इस कोठरी में इतनी छोटी जगह थी कि इनके लंबे-चौड़े साठ वर्ष से भी ऊपर के बूढ़े शरीर को कभी-कभी खड़े-खड़े सोना पड़ता था। जब जेलर बारी के अत्याचार सहन नहीं हुए तो इन्होंने बारी को अंग्रेजी में गालियों की बौछार कर दी। अगले दिन जेलर बारी ने बारह पठान कैदियों को आदेश दिया, 'इस बूढ़े को इतना मारो कि इस की आवाज फिर कभी सुनाई न दे।' कैदियों ने वैसा ही किया। बाबा भानसिंह की चीत्कारों से जेल का वातावरण काँप उठा 'मुझे मारा जा रहा है। मुझे मारा जा रहा है। भाइयो मुझे बचाओ।' लेकिन वहाँ बचाने वाला कोई न था। एक माह बाद बाबा ने अस्पताल में तड़पते हुए दम तोड़ दिया। इन दिनों विनायक दामोदर सावरकर अण्डमान की कालकोठरी में बन्दी थे। उन्होंने भानसिंह के बलिदान का अपनी पुस्तक 'मेरा आजीवन कारावास' में सजीव वर्णन किया है।

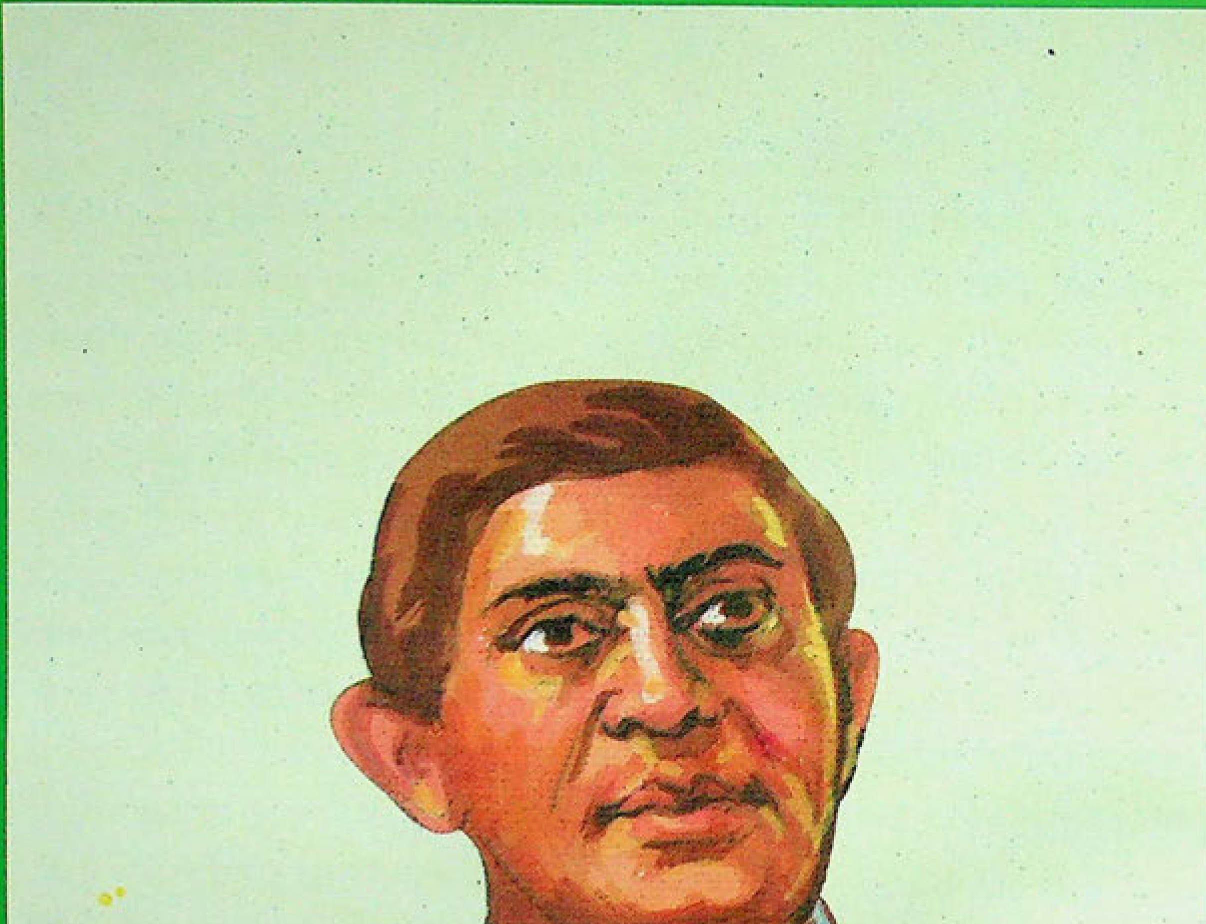

वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय

वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय का जन्म 31 अक्तूबर, 1880 को ब्राह्मण गाँव (ढ़ाका) में हुआ था। आप उच्च शिक्षा प्राप्त करने इंग्लैंड चले गये। इंग्लैंड में श्यामजी कृष्ण वर्मा व मैडम कामा के संपर्क में आये। इनके संपर्क में आकर चट्टोपाध्याय ने भारत की स्वतंत्रता को ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। इन्हें हिन्दी, उर्दू, अरबी व फ्रैंच भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। अतः इन्होंने क्रांतिकारी गतिविधियों के प्रचार का कार्य स्वयं संभाला। भारतीय स्वतंत्रता की वाणी से ओतप्रोत 'इंडियन सोशियोलोजिस्ट' पत्र के प्रकाशन का दायित्व इन्हीं ने संभाला। 1907 में जर्मनी के स्टूडगार्ड शहर में अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय के सहयोग से ही मैडम कामा ने प्रथम बार राष्ट्रीय तिरंगा झंडा फहराया। विभिन्न यूरोपीय देशों में मैडम कामा के साथ क्रांतिकारियों को हथियार व प्रचार सामग्री भेजने का कार्य किया। पेरिस से 'वन्देमातरम्' और बर्लिन से 'तलवार' पत्रों में अपने लेखों के माध्यम से भारतीयों में क्रांति की ज्वाला को उग्र रूप प्रदान किया। 1914 में बर्लिन में अनेक भारतीय क्रांतिवीर एकत्र थे। तभी चट्टोपाध्याय भी बर्लिन आ गये। इन्होंने बर्लिन की सरकार को इस बात के लिए राजी किया कि वह बर्लिन कमेटी के सदस्यों को भारतीय स्वतंत्रता हेतु धन व शस्त्रों की सहायता करे। रूस की 1917 की क्रांति के बाद वह रूस चले गये। लेनिन से आश्वासन मिलने पर यहीं से भारत की मुक्ति के लिए संघर्ष करते रहे। यहाँ पर वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय बीमार हो गये। आर्थिक तंगी और लंबी बीमारी के बाद भी इन्होंने अपने कदमों को जीवन की अंतिम घड़ी तक रुकने नहीं दिया। भारत मुक्ति की आकांक्षा मन में लिये ही वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय पंचतत्व में विलीन हो गये।

मोहम्मद बरकतुल्ला

मोहम्मद बरकतुल्ला का जन्म 1864 में भोपाल (म. प्र.) में हुआ था। वे भोपाल रियासत के एक अच्छे सम्पन्न घराने से संबंध रखते थे। उच्च शिक्षा प्राप्त करने वे इंग्लैंड चले गये। इंग्लैंड में श्याम जी कृष्ण वर्मा के साथ मोहम्मद बरकतुल्ला ने क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेना आरंभ कर दिया। मोहम्मद बरकतुल्ला टोकियो यूनिवर्सिटी जापान में भारतीय भाषा के अध्यापक नियुक्त हो गये। जापान में 'अल-इस्लाम' पत्र के माध्यम से देश-विदेश के लोगों में भारत की स्वतंत्रता हेतु जनमत तैयार करने में इन्होंने सराहनीय कार्य किया। अंग्रेजों के दबाव में आकर जापान सरकार ने इनके पत्र पर अंकुश लगा दिया तथा इन्हें टोकियो यूनीवर्सिटी से निष्कासित कर दिया। अतः वह 1914 में अमेरिका पहुँच गए एवं लाला हरदयाल के साथ गदर पार्टी के कार्यों का संचालन करने लगे। दिसंबर 1915 को काबुल में राजा महेन्द्र प्रताप ने अंतरिम 'आजाद हिन्द सरकार' की घोषणा कर दी। मोहम्मद बरकतुल्ला को इस सरकार का प्रथम प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। इन्होंने रूस में लेनिन से भारत की स्वतंत्रता हेतु महत्त्वपूर्ण चर्चा की। बरकतुल्ला ने ही 1927 के ब्रुसेल्स के साम्राज्यवाद विरोधी सम्मेलन में विश्व भर के साम्राज्यवाद से पीड़ित लोगों को एक मंच पर एकत्रित होने के लिए आमंत्रित किया। वे मधुमेह से पीड़ित हो गए। अतः डाक्टरों ने विश्राम की सलाह दी। पर वे न माने। कैलिफोर्निया में गदर पार्टी के कार्यकर्त्ताओं के सम्मेलन में इन्होंने बड़ा ओजस्वी भाषण दिया। कुछ दिनों बाद सितम्बर माह 1927 में कैलिफोर्निया में इन्होंने अंतिम श्वाँस ली।

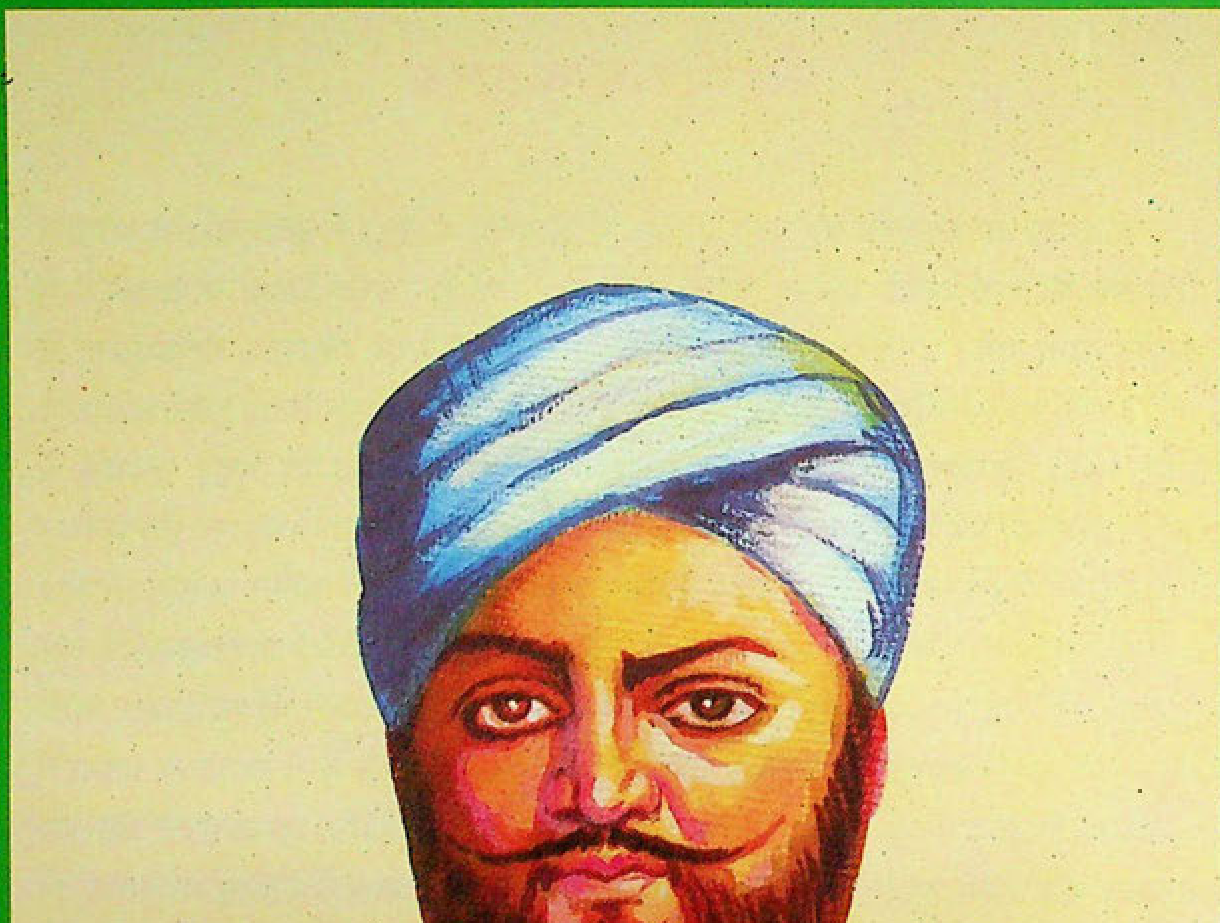

भाई मेवासिंह

भाई मेवासिंह का जन्म अमृतसर जिले के लोटोकी गांव (पंजाब) में हुआ था। उन्हें किसी कार्य से कनाडा जाना पड़ा। वहाँ वे गदर पार्टी के संपर्क में आये। कनाडा की पुलिस सेवा के अधिकारी विलियम हापकिंस ने गदर पार्टी में अपने भेदिये छोड़े हुए थे। एक दिन हापकिंस के भेदिये बेलासिंह ने कनाडा के भारतीय संगठन के अध्यक्ष भाई भागसिंह और वतन सिंह की हत्या कर दी। भाई भागसिंह कनाडा में भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों की बड़ी सहायता करते थे। इसी कारण उनकी हत्या से भारतीयों में बड़ा रोष था। इन हत्याओं में हापकिंस का दिमाग काम कर रहा था। वही भाई-भाई को लड़ा कर अपना उल्लू सीधा करता रहता था। अत: किसी भी तरह हापकिंस को रास्ते से हटाना जरूरी था। भाई मेवासिंह बोले, ''इसे रास्ते से मैं हटाऊँगा।'' गदर पार्टी के खिलाफ मुखबरी करने का आश्वासन देकर भाई मेवासिंह ने हापकिंस के यहाँ ही नौकरी कर ली और धीरे-धीरे उसका विश्वास प्राप्त कर लिया। एक दिन अदालत में बेलासिह के पक्ष में हापकिंस गवाही देने वाला था। तभी भाई मेवासिंह ने उसे गोली से समाप्त कर दिया और गिरफ्तार हो गये। 11 फरवरी, 1915 के दिन यह साहसी युवक गर्व के साथ फाँसी के फंदे पर झूल गया।

ऐ वतन की रेत, मुझे एड़ियाँ रगड़ने दे।
मुझे यकीं है, पानी यहीं से निकलेगा।।

सोहनलाल पाठक

7 जनवरी, 1883 को अमृतसर जिले के पट्टी गांव में जन्मे सोहनलाल पाठक को विश्वास था कि विदेशी सहायता एवं सैनिक कार्यवाही के बिना देश गुलामी से मुक्त नहीं हो सकता। अतः वह अध्यापक की नौकरी छोड़ कर सेनफ्रांसिस्को चले गए। सेनफ्रांसिस्को में इन्होंने गुप्तचर विभाग की आँखों में धूल झोंक कर अपनी निर्भीकता से लाला हरदयाल, भाई परमानंद आदि क्रांतिकारियों को बहुत प्रभावित किया। अतः गदर पार्टी की ओर से सन् 1915 में गुप्तचर के रूप में इन्हें बर्मा भेजा गया। योजना यह थी कि 21 फरवरी, 1915 को भारत की सैनिक छावनियों में भारतीय सैनिक सशस्त्र विद्रोह करेंगे। यह बर्मा के भारतीय सैनिकों को तैयार करें कि वह भी उसी दिन सशस्त्र विद्रोह कर भारत पर आक्रमण करें। इसी प्रयास में ब्रिटिश सेना के एक भारतीय जमादार ने उन्हें गिरफ्तार करा दिया। सोहनलाल पाठक को फाँसी की सज़ा सुना दी गई। फाँसी वाले दिन जल्लाद ने भी फाँसी लगाने से इंकार कर दिया। वह बोला, ''मैं दुष्टों, अपराधियों, चोर व डकैतों को फाँसी देता हूँ। फाँसी लगाना मेरा धर्म हैं, मेरा फर्ज है, मगर पंडित सोहनलाल जैसे देव पुरुषों को मैं फाँसी नहीं दे सकता''। दूसरे जल्लाद ने फाँसी दी। इनकी कुर्बानी रंग लाई। बर्मा आजाद हुआ लेकिन चन्द दिनों के बाद ही अंग्रेजों ने उस पर पुनः अधिकार कर लिया।

डॉ० मथुरासिंह

डॉ० मथुरासिंह का जन्म 1883 में ढुडियाल, झेलम (पाक.) में हुआ था। बाद में वे रावलपिण्डी में प्रसिद्ध डाक्टर बने। उच्च अध्ययन हेतु वे अमेरिका गये लेकिन वहाँ गदर पार्टी के सम्पर्क में आये। उन्होंने अपनी सेवाएँ मातृ-भूमि को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त कराने हेतु अर्पित कर दीं एवं बम बनाने में महारत हासिल कर ली। भारत को दासता के चंगुल से मुक्त कराने हेतु अमेरिका से भारत आ रहे दल के साथ वे भी भारत आ गये। सरकार को गुप्त सूचना मिल चुकी थी कि डॉ० मथुरा सिंह भारत मुक्ति संघर्ष में क्रांतिकारियों का सहयोग कर रहे हैं। अतः उन्हें भारत में किसी भी समय गिरफ्तारी का भय बना रहता था। वे अंग्रेज पुलिस से बचते हुए अफगानिस्तान पहुँच गये। उस समय राजा महेन्द्र प्रताप के नेतृत्व में अफगानिस्तान में भारत की स्वतंत्रता के प्रयास चरम सीमा पर थे। अफगानिस्तान में उन्हें काबुल का 'चीफ मेडिकल आफीसर' बना दिया गया। राजा महेन्द्र प्रताप अफगानिस्तान से भारत पर आक्रमण कर भारत को अंग्रेजों से मुक्त कराने की योजना बना रहे थे। संभावना थी कि इस में रूस भी मदद करेगा। अतः काबुल की 'अस्थाई-आजाद हिन्द सरकार' की ओर से डॉ० मथुरासिंह एवं खुशी मोहम्मद दो सदस्यों का एक 'शिष्टमंडल' रूस की सरकार से मिलने भेजा गया जिससे कि अफगानिस्तान से भारत पर आक्रमण के समय रूस भी भारतीय क्रांतिवीरों का साथ दे। लेकिन वहाँ उलटा ही हुआ। ताशकन्द पहुँचते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। रूस की सरकार ने डॉ० मथुरासिंह और उनके साथी को ब्रिटिश सरकार को सौंप दिया। लाहौर में मथुरासिंह को ब्रिटिश सम्राट के विरुद्ध युद्ध करने के अपराध में मृत्यु दण्ड सुना दिया गया। 27 मार्च, 1917 को उन्होंने फाँसी पर झूल कर शहादत प्राप्त की।

सूफ़ी अम्बाप्रसाद

सूफी अम्बाप्रसाद का जन्म सन् 1858 में मुरादाबाद में हुआ। उनका जन्म से ही दायाँ हाथ नहीं था। 1890 में मुरादाबाद से उर्दू साप्ताहिक ''जाम्युल इलूम'' व 1909 में ''पेशवा'' पत्रों का प्रकाशन किया। इनका पंजाब के 'हिन्दुस्तान' पत्र में विशेष योगदान रहा। इन्होंने ''भारत माता बुक सोसायटी'' स्थापित की। इनकी ''बागी मसीह'' पुस्तक अंग्रेजों द्वारा जब्त कर ली गई।

इन सभी प्रकाशनों द्वारा भारत व विदेशों के भारतीयों में अंग्रेजों के विरुद्ध चिंगारी को उग्र रूप प्रदान किया। 1897 में राजद्रोह के अपराध में डेढ़ वर्ष का कठोर कारावास काटा। सारी संपत्ति जब्त कर ली गई। सरकार उनके लेखों से इतना घबराती थी कि उन्हें अबकी बार छः वर्ष के कठोर कारावास की सजा दे दी। मुक्त होने के बाद भी अंग्रेजों के विरुद्ध लेखन कार्य जारी रखा। पंजाब के किसानों पर कर के विरोध में आवाज उठाने पर ब्रिटिश सरकार ने इन्हें देश निकाला दे दिया। अतः सरदार अजीतसिंह के साथ वे ईरान चले गये। ईरान में ''आबेहयात'' पुस्तक लिखी। 1915 में ईरान पर भी अंग्रेजों का कब्जा हो गया। यहाँ पर इन्हें अंग्रेजों से आमने-सामने एक ही हाथ से रिवाल्वर से युद्ध करना पड़ा। शेर चारों ओर से अंग्रेज सेना से घिर गया। सूफी जी को गिरफ्तार करके मुकदमे में गोली मारने का आदेश हुआ। सूफी साहब आदेश के पालन से पूर्व ही 21 फरवरी, 1915 को काल कोठरी में समाधि लेकर चिर निद्रा में सो गये। ईरान के लोगों ने इन्हें ''स्वामी सूफी'' की उपाधि से सम्मानित किया। भारत में चाहे इस क्रांतिवीर को कोई न जानता हो लेकिन ईरान में इनकी समाधि पर प्रतिवर्ष मेला लगता है।

किशनसिंह गड़गज

सरदार किशनसिंह गड़गज ब्रिटिश सेना की सिख रेजीमेंट में हवलदार थे। 1919 में 13 अप्रैल को जलियाँ वाला बाग के नर-संहार में निर्दोष व निहत्थे लोगों की हत्या के बाद उनका मन विचलित हो गया। ब्रिटिश सम्राट के प्रति वफादारी की शपथ से मुक्त होकर उन्होंने नौकरी छोड़ दी। वह अकाली दल में सम्मिलित होकर ब्रिटिश सरकार की जड़ें खोदने लगे। नौकरी छोड़ते समय उन्होंने उन कारणों की घोषणा इन शब्दों में की :-

''सरदार अजीत सिंह की नजरबंदी, दिल्ली के रकाबगंज गुरुद्वारे की दीवार तोड़े जाने, बजबज में निर्दोष यात्रियों पर गोली चलाने, रोलेट एक्ट और जलियाँ वाला बाग की दुर्घटना व मार्शल ला आदि बातों के कारण मेरे हृदय में अंग्रेजी शासन से घृणा उत्पन्न हो गई.... अतः मैंने नौकरी छोड़ दी।''

अकाली दल के अन्तर्गत ही उन्होंने 'चक्रवर्ती-दल' खड़ा किया। यह दल अंग्रेजों को ईंट का जवाब पत्थर से देता था। अंग्रेजों पर यह दल बब्बर शेर की तरह झपटता था। इसीलिये बाद में इस दल का नाम ही 'बब्बर अकाली दल' पड़ गया। भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में अकाली दल आन्दोलन का महत्वपूर्ण स्थान है। किशनसिंह को इस दल में बड़े कर्मठ साथी मिल गये। इन्होंने 'बब्बर-अकाली' नाम की पत्रिका निकाली। इनके दल ने देश द्रोही भारतीयों को मौत के घाट उतारना आरम्भ किया। इस कार्य को उन्होंने - 'सुधार आन्दोलन' की संज्ञा दी। किशनसिंह ने पंजाब में 327 स्थानों पर जोशीले भाषण देकर लोगों को अंग्रेजों के विरुद्ध एकजुट किया। अन्त में वह पकड़े गये। 27 फरवरी, 1926 को किशन सिंह और उनके पाँच साथी फाँसी पर झूल कर शहीद हो गये।

बाल गंगाधर तिलक

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का जन्म कोंकण प्रदेश (महाराष्ट्र) के चिखलगाँव में 23 जुलाई, 1856 को गंगाधर पंत तिलक के पुत्र के रूप में हुआ था। तिलक ने कानून की परीक्षा पास कर जीवन भर देश-सेवा का व्रत धारण किया। इन्होंने राष्ट्रीय भावना के संचार हेतु 1881 में 'मराठा' (अंग्रेजी) व 'केसरी' (मराठी) पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। 1893 में इन्होंने 'गणपति' व 'शिवाजी' महोत्सवों की धूम मचा दी। महाराष्ट्र में 1886 में प्लेग व 1897 में अकाल के समय जनसेवा से किसानों का मन जीता। इनकी ख्याति के कारण सरकार ने झूठे केसों में फँसा कर इन्हें गिरफ्तार कर डेढ़ साल की सजा सुना दी। सजा काट कर वह बाहर निकले। 1908 में तिलक जी ने 12 मई एवं 9 जून के अपने पत्रों में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध 'देशाचे दुर्दैव' एवं 'हे उपाय टिकाऊ नाहीत' दो लेख लिखे। इन लेखों पर तिलक के विरुद्ध मुकदमा चलाया गया एवं इन्हें छः वर्ष के लिए देश से निर्वासित कर माँडले जेल में बन्द कर दिया गया। इसका जनता में तीव्र विरोध हुआ। मुंबई के मजदूरों ने 6 दिन की ऐतिहासिक हड़ताल कर दी। लेकिन सरकार पर कोई प्रभाव न पड़ा। इन्हें जेल में असह्य यातनाएँ दी गईं। इसी अवधि में इनकी पत्नी का स्वर्गवास भी हो गया। तिलक जी ने जेल में गीता रहस्य अपने ऐतिहासिक ग्रंथ की रचना की। जेल से छूटते ही बाल गंगाधर तिलक ने 'होमरूल' आंदोलन छेड़ दिया और निरंतर 18 महीने तक देश में घूम-घूम कर क्रांति की ज्योति प्रज्ज्वलित करते रहे। 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है' घोषणा कर ब्रिटिश सरकार को खुली चुनौती दे डाली। अब तिलक का स्वास्थ्य जवाब दे चुका था। अतः आंदोलन की बागडोर महात्मा गाँधी को सौंप, 1 अगस्त, 1920 को वह इस दुनिया से चल बसे।

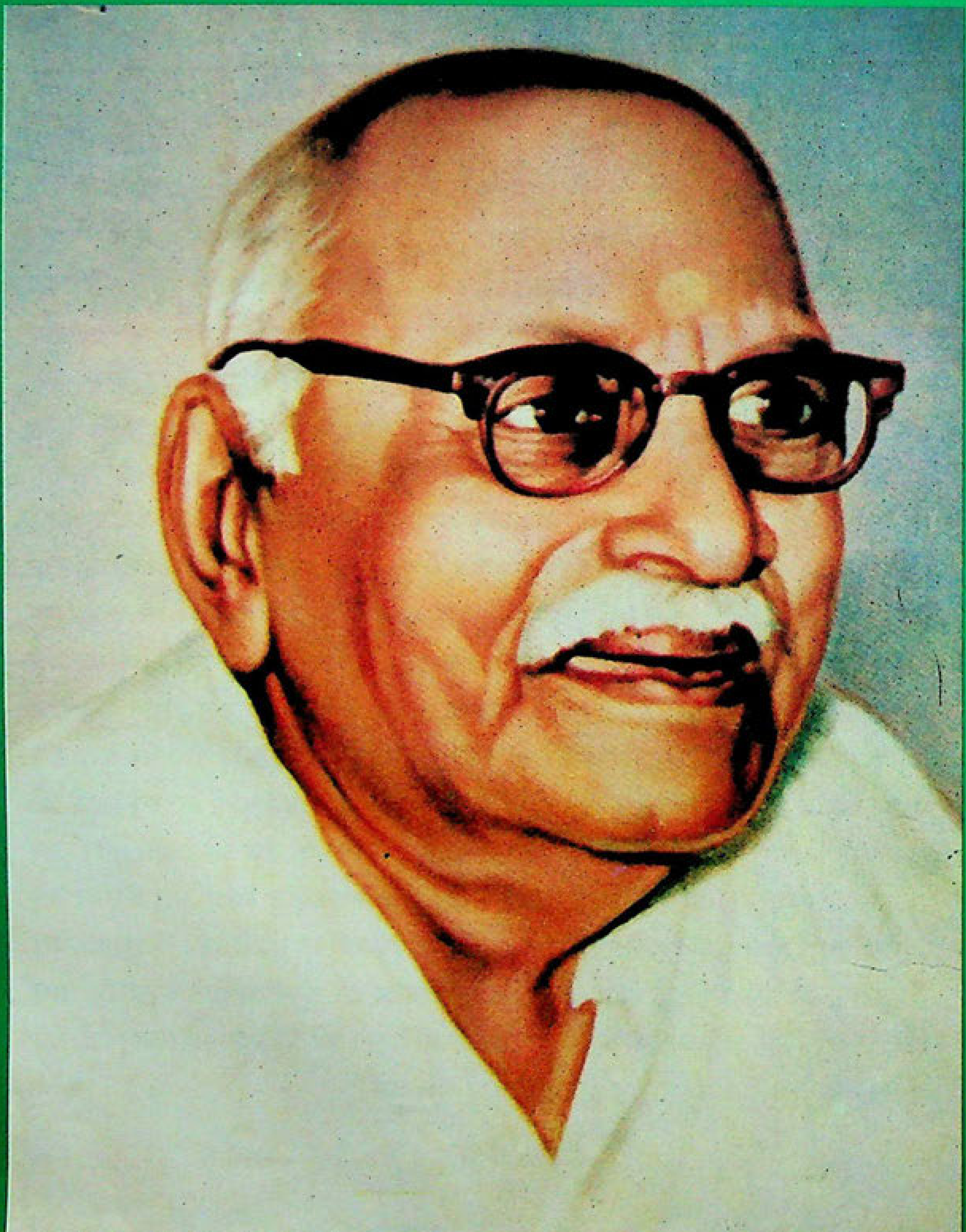

हनुमानप्रसाद पोद्दार

आध्यात्मिक विभूति तथा 'गीता प्रेस' (गोरखपुर) के संस्थापकों में से एक श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार ने युवावस्था में देश की स्वाधीनता के आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर जेल में यातनाएं सहन की थीं।

17 सितम्बर, 1892 को राजस्थान के रतनगढ़ नगर में ला. भीमराज अग्रवाल के पुत्र के रूप में जन्मे हनुमानप्रसाद जी व्यापार के सिलसिले में पिता के साथ कोलकाता में रहते थे। लोकमान्य तिलक तथा अन्य विभूतियों के लेखों से प्रभावित होकर वे कोलकाता में युवा क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आए। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का उन पर अमिट प्रभाव था। साहित्य संवर्धिनी समिति की ओर से उन्होंने 'गीता' का प्रकाशन कराया, जिसके मुख पृष्ठ पर भारत माता का हाथ में खड्ग लिए हुए का चित्र प्रकाशित किया गया। कलकत्ता के प्रशासन ने गीता के इस संस्करण को जब्त कर लिया।

सन् 1914 में कलकत्ता की रोडा एंड कम्पनी द्वारा जर्मनी से मंगवाए गए शस्त्रास्त्रों की पेटियां गायब हो जाने के बाद हड़कम्प मच गया था। कोलकाता प्रशासन ने छानबीन की तो पता चला कि युवा क्रांतिकारियों ने 50 पिस्तौलें व 46 हजार कारतूस गायब कराए हैं। पता चला कि कुछ कारतूस व पिस्तौलें पोद्दार जी के ठिकाने 'बिरला श्राप एण्ड कम्पनी, की गद्‌दी पर पहुंचाये गये थे। 20 जुलाई को पुलिस ने कम्पनी कार्यालय पर छापा मारा तथा हनुमानप्रसाद पोद्दार, ज्वालाप्रसाद कानोडिया, ओंकारमल सर्राफ और फूलचन्द चौधरी को गिरफ्तार कर लिया। उन पर राजद्रोह का मुकदमा दर्ज कर अनेक वर्षों तक जेल व नजरबंदी में रखा गया। जेल से मुक्त होने के बाद यहाँ सन् 1926 में भक्त जयदयाल गोयन्दका के सहयोग से 'कल्याण' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। गीता प्रेस की गोरखपुर में स्थापना कर जीवन के अंतिम क्षणों तक धार्मिक साहित्य के सम्पादन व प्रकाशन में लगे रहे। उन्होंने सौ से अधिक पुस्तकों की रचना की। 22 मार्च, 1971 को पोद्दार जी ने महासमाधि ली।

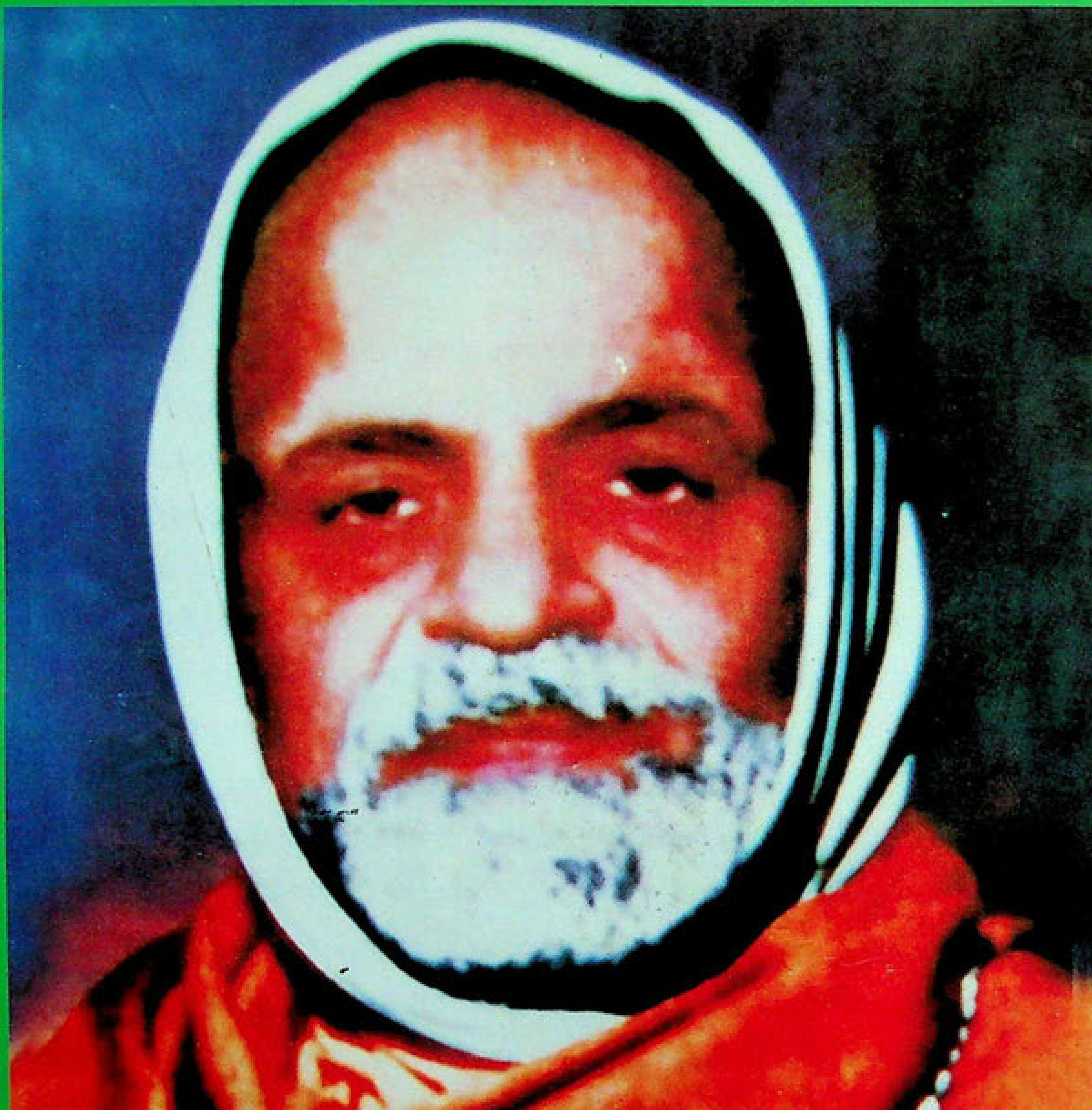

शंकराचार्य स्वामी भारतीकृष्ण तीर्थ

जगन्नाथपुरी के विश्वविख्यात गणितज्ञ शंकराचार्य स्वामी भारतीकृष्ण तीर्थ एक महान स्वाधीनता सेनानी थे जिनपर अंग्रेजों ने जनता को विद्रोह के लिए भड़काने के आरोप में जेल में बन्द कर मुकदमा चलाया था। उन्होंने मातृभूमि को, विदेशियों से मुक्ति दिलाने के कार्य को पूर्ण धर्मसम्मत बताकर अंग्रेजों को खुली चुनौती दी थी।

मार्च 1884 में चेन्नई के तित्रिवेलि नगर में पी. नरसिंह शास्त्री के पुत्र के रूप में जन्में स्वामीजी जन्मजात असाधारण प्रतिभाशाली थे। केवल 15 वर्ष की आयु में उन्हें मद्रास के संस्कृत संस्थान की ओर से 'सरस्वती' की उपाधि से अलंकृत किया गया था। मात्र 20 वर्ष की आयु में छह विषयों में स्नातकोत्तर परीक्षाएं उच्चतम सम्मान सहित उत्तीर्ण कर उन्होंने कीर्तिमान स्थापित किया। शृंगेरी के परम विद्वान शंकराचार्य स्वामी नृसिंह भारती के पास रहकर उन्होंने वेदान्त-दर्शन का अध्ययन व ब्रह्म साधना की।

युवावस्था में लोकमान्य तिलक तथा पं. मदनमोहन मालवीय जी के लेखों को पढ़कर उनके हृदय में स्वदेशी तथा स्वधर्म के लिए चलाये गये स्वाधीनता आन्दोलन के प्रति सहानुभूति के भाव पैदा हुए। सन् 1925 में गोवर्धन मठ (जगन्नाथपुरी) के शंकराचार्य स्वामी मधुसूदनतीर्थ जी ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। श्री शंकराचार्य धर्मप्रचार यात्रा के लिए निकले तथा ज़गह-जगह प्रवचनों में उन्होंने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार करने, अपने देश से विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने को तत्पर होने का आहवान किया। उनके इन प्रवचनों से ब्रिटिश सरकार क्षुब्ध हो उठी। सन् 1921 में राजद्रोह के लिये लोगों को भड़काने के आरोप में उन्हें गिरफ्तार कर मुंगेर (बिहार) की जेल में बंद कर दिया। 'वैदिक गणित' नामक उनके लिखे ग्रंथ ने पूरे विश्व में ख्याति प्राप्त कर ली।

2 फरवरी, 1960 को शंकराचार्य जी ने महासमाधि ली।

स्वामी चक्रधर मिश्र (राधा बाबा)

'राधा बाबा' के नाम से धार्मिक जगत में विख्यात स्वामी चक्रधर मिश्र का व्यक्तित्व बहुआयामी था। अध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश करने से पूर्व उन्होंने देश के स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लिया था।

सन् 1913 में गया (बिहार) के गाँव फखरपुर में एक राजपुरोहित परिवार में उनका जन्म हुआ था। सन् 1928 में 15 वर्ष की आयु में महात्मा गाँधी के आह्वान पर गया के सरकारी विद्यालय में छात्रों का नेतृत्व करते हुए यूनियन जैक उतार कर तिरंगा झण्डा फहराकर उन्होंने सभी को हतप्रभ कर डाला था। ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध भाषण करने के आरोप में गिरफ्तार कर पुलिस ने उन्हें छह मास के लिए जेल में बन्द कर दिया।

गया की जेल का सुपरिन्टेन्डेन्ट एक अंग्रेज था। जब वह जेल का निरीक्षण करता था तब बन्दियों को झुककर 'साहब-सलाम' कहना पड़ता था। चक्रधर मिश्र विद्रोही राष्ट्रभक्त थे। उन्होंने अंग्रेज अफसर के आने पर सलाम नहीं कहा। गोरे अफसर ने क्रुद्ध होकर उनकी नाक पर घूंसा जमा दिया। किन्तु फिर भी यह राष्ट्रभक्त किशोर झुकने को तत्पर नहीं हुआ। वे जेल से छूटते ही पुनः क्रांतिकारी गतिविधियों में लिप्त हो गये। गया की 'राजा साहब की हवेली' में इन क्रान्तिकारी युवकों का गुप्त अड्डा था। पुलिस ने छापा मारकर चक्रधर मिश्र तथा उनके साथियों को पकड़ लिया। उन पर 'गया कान्सप्रेसी केस' चलाया गया। जेल में 'रामायण' व 'महाभारत' की कथा सुनाकर वे बन्दियों के हृदय में राष्ट्रभक्ति की भावना भरने लगे। अतः उन्हें तन्हाई (एकान्त) कोठरी में बन्द कर अनेक बार अमानवीय यातनाएं दी गईं।

जेल से मुक्त होने के बाद उन्होंने रामायण व भागवत की कथा के माध्यम से धन जुटाया। वह धन उन्होंने स्वाधीनता सेनानियों के परिवारों की सहायता के लिये अर्पित कर दिया। 1936 में उन्होंने सन्यास ले लिया। 13 अक्तूबर सन् 1992 को वे ब्रह्मलीन हुए।

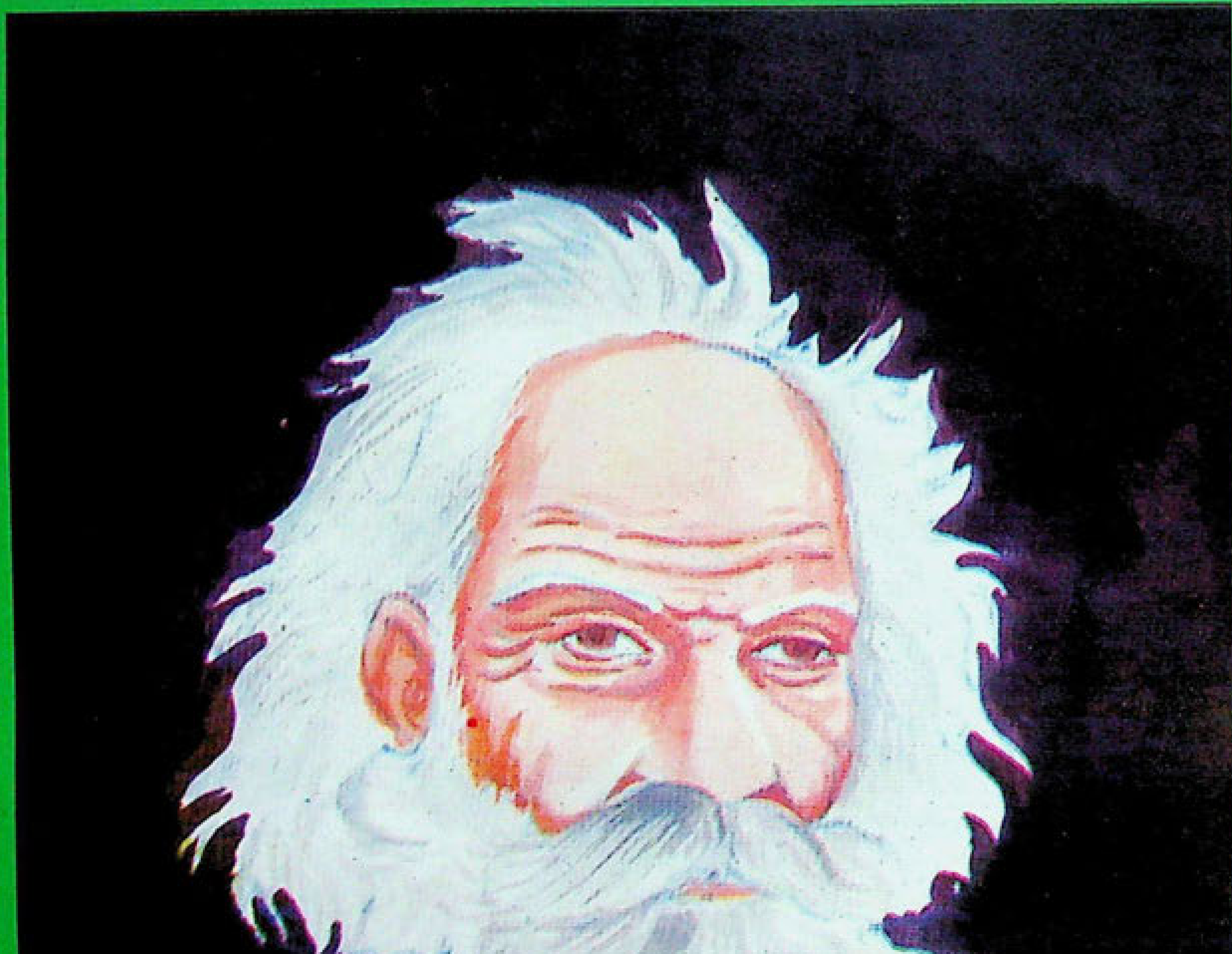

पुरुषोत्तमदास टंडन

पुरुषोत्तमदास टंडन का जन्म एक अगस्त सन् 1882 को इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। यद्यपि वह वकालत पास करके अधिवक्ता बने लेकिन देश की स्वतंत्रता की खातिर कांग्रेस द्वारा चलाये जा रहे स्वतंत्रता आन्दोलनों ने उनकी राह बदल दी। 1921 में प्रथम बार पुरुषोत्तमदास टंडन ने असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर जेल यात्रा की। इसके बाद तो उनका जेल जाना लगा ही रहा। हिन्दी के प्रसार में उनकी विशेष भूमिका रही। नमक सत्याग्रह में भी वे सक्रिय रहे। सविनय अवज्ञा आन्दोलन में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। 1937 में वे उत्तर प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष चुने गये। सन् 1942 के 'अंग्रेजो! भारत छोड़ो' आन्दोलन में वे सातवीं बार जेल गये। उनके चेहरे, पहनावा एवं उनके व्यवहार में भारतीय संस्कृति की स्पष्ट झलक मिलती थी। उनके दाढ़ीयुक्त चेहरे पर ज्ञान की आभा प्राचीन भारतीय ऋषियों का आभास देती थी।

आजादी के बाद हिन्दी को देश की राष्ट्रभाषा बनवाने में उनका बड़ा योगदान रहा है। 15 अप्रैल, 1948 को सरयू नदी के तट पर भारत के महान संत देवरहा बाबा से उनका ऐतिहासिक साक्षात्कार हुआ। यहाँ एक विशाल समारोह में देवरहा बाबा ने उन्हें ''राजर्षि'' के सम्मान से विभूषित किया। राजर्षि टंडन को लोक सेवा संघ का अध्यक्ष बनाया गया। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने उन्हें 'राजर्षि टंडन अभिनन्दन ग्रंथ' समर्पित किया। सन् 1961 में उन्हें 'भारत रत्न' की उपाधि से विभूषित किया गया।

पुरुषोत्तमदास टंडन प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता की जीती जागती प्रतिमूर्ति थे। 1 जुलाई, 1961 को वे पंचतत्व में विलीन हो गये।

अहिंसक क्रांति का उद्‌घोष

प्रथम विश्व युद्ध के समय भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का प्रवेश एक अत्यंन्त महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक घटना थी। महात्मा गांधी ने अहिंसात्मक आन्दोलनों द्वारा भारत को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त कराने की घोषणा की। लेकिन वह अहिंसात्मक आन्दोलन केवल एक तरफा ही रहा। ब्रिटिश सरकार ने अहिंसात्मक आन्दोलनकारियों पर लाठी, गोली और बम बरसा कर हिंसा का खूब तांडव खेला। ब्रिटिश सरकार की क्रूरता के कारण अहिंसात्मक क्रांति की ज्वाला लाला लाजपतराय जैसे उच्च कोटि के नेताओं को लील गई।

1942 में गांधी जी की 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' एवं 'करो या मरो' की घोषणा से समस्त भारत के जन-जन में राष्ट्रीय चेतना का ज्वार हिलोरें लेने लगा। उनके आह्‌वान पर भारतीय स्वतंत्रता की बलि-वेदी पर लाखों नर-नारियों व बच्चों ने अपने प्राणों की आहुतियाँ दे कर अपने लहू से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास लिख डाला।

ब्रह्मबांधव उपाध्याय

लाला लाजपतराय

महात्मा गांधी

कुशल कोवॅर

चिदम्बरम पिल्लै

महावीर सिंह

माता कस्तूरबा

कु. जयवती संघवी

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

यतिन्द्रनाथ दास

पं. जवाहरलाल नेहरू

बहन सत्यवती

स्वामी श्रद्धानन्द

देशबंधु गुप्ता

मातंगिनी हाज़रा

सरदार पटेल

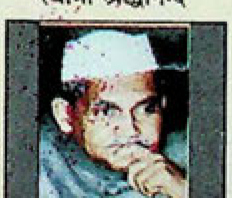
लालबहादुर शास्त्री

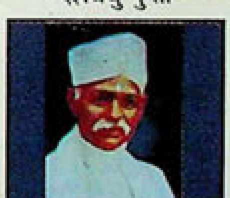
मदनमोहन मालवीय

त्रिलोकसिंह पांगती

सुभद्रा कुमारी चौहान

मैथिलीशरण गुप्त

सागरमल जोपा

माखनलाल चतुर्वेदी

ब्रह्मबांधव उपाध्याय

ब्रह्मबांधव उपाध्याय का जन्म 11 फरवरी, 1861 को कोलकाता में हुआ था। वे हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और फारसी भाषा के उच्च कोटि के विद्वान थे। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता हेतु अपना तन, मन और धन ही नहीं समस्त जीवन दाँव पर लगा दिया। सबसे पहले उन्होंने 'मंथली कोनकर्ड' 'Monthly concord' नामक पत्र निकाला। इनकी विद्वत्ता के कारण 1902 में इन्हें आक्सफोर्ड एवं कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों में 'भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू दर्शन' पर भाषण देने हेतु आमंत्रित किया गया। वहाँ से लौट कर 1904 में इन्होंने 'संध्या' दैनिक समाचार पत्र निकाला जो कि बाद में उग्र राष्ट्रीय चेतना का पोषक बना। बंगाल विभाजन के समय इस पत्र ने ब्रिटिश सत्ता को खुली चुनौती दे दी। ब्रह्मबांधव उपाध्याय ने 10 मार्च, 1907 को एक और पत्र 'स्वराज' निकाला। 'संध्या' पत्र में उन्होंने लिखा, ''हम पूर्ण स्वाधीनता चाहते हैं.... फिरंगी हमारे ऊपर मेहरबानी करके हमें कोई अधिकार देंगे तो हम उन पर थूकेंगे।'' ब्रिटिश सरकार ने इस पत्र को जब्त कर उपाध्याय जी को 3 सितम्बर, 1907 को गिरफ्तार कर लिया। उन्होंने अदालत में अपने बयान में कहा, ''मैने जो कुछ लिखा है, ठीक लिखा है।'' इस बयान के बाद उन्हें शारीरिक कष्ट के बहाने अस्पताल में दाखिल कर दिया गया। एक आपरेशन के बाद अस्पताल में ही 27 अक्तूबर, 1907 को उनका निधन हो गया।

चिदम्बरम पिल्लै

चिदम्बरम पिल्लै का जन्म 1872 में तिरुनलवैली (तमिलनाडु) में हुआ था। दक्षिण भारत के तूतीकोरिन नगर के चिदम्बरम पिल्लै प्रसिद्ध वकील थे। अंग्रेजों द्वारा जहाजों में भारतीयों को जानवरों की तरह ठूँस-ठूँस कर भरकर ले जाना और अपार धन राशि कमाना उन्हें बहुत बुरा लगा। अत: उन्होंने ब्रिटिश इंडिया नेवीगेशन कम्पनी के मुकाबले में 'स्वदेशी स्टीम नेवीगेशन कम्पनी' स्थापित कर दी। इससे अंग्रेजों के व्यापार को चोट पहुँची। अंग्रेज मजिस्ट्रेट मिस्टर वालर ने उन्हें धमकी दी। चिदम्बरम पिल्लै ने तूतीकोरिन में एक कारखाने के मजदूरों की हड़ताल करा दी। इससे अंग्रेज उनके दुश्मन बन गये। लेकिन चिदम्बरम पिल्लै ने हार न मानी। अब वह अंग्रेजी शासन पर सीधी चोट करने लगे। अपने भाषणों में वह जनता को अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष हेतु ललकारने लगे। इस कार्य में सुब्रमण्यम शिव एवं पद्मनाभ आयंगर ने भी उनका साथ दिया। अंग्रेजों की व्यापार नगरी तूतिकोरिन में जनता अंग्रेजों के विरुद्ध होने लगी। अंग्रेजी शासन की नीव डावाँ-डोल होने लगी। अत: बिना किसी कारण के मजिस्ट्रेट महोदय ने उनकी गिरफ्तारी का आदेश दे दिया। चिदम्बरम पिल्लै को जुलाई, 1908 में चालीस वर्ष के कठोर कारावास की सजा देकर जेल में डाल दिया गया। सुब्रमण्यम को दस वर्ष के कालापानी की सजा दी गई।

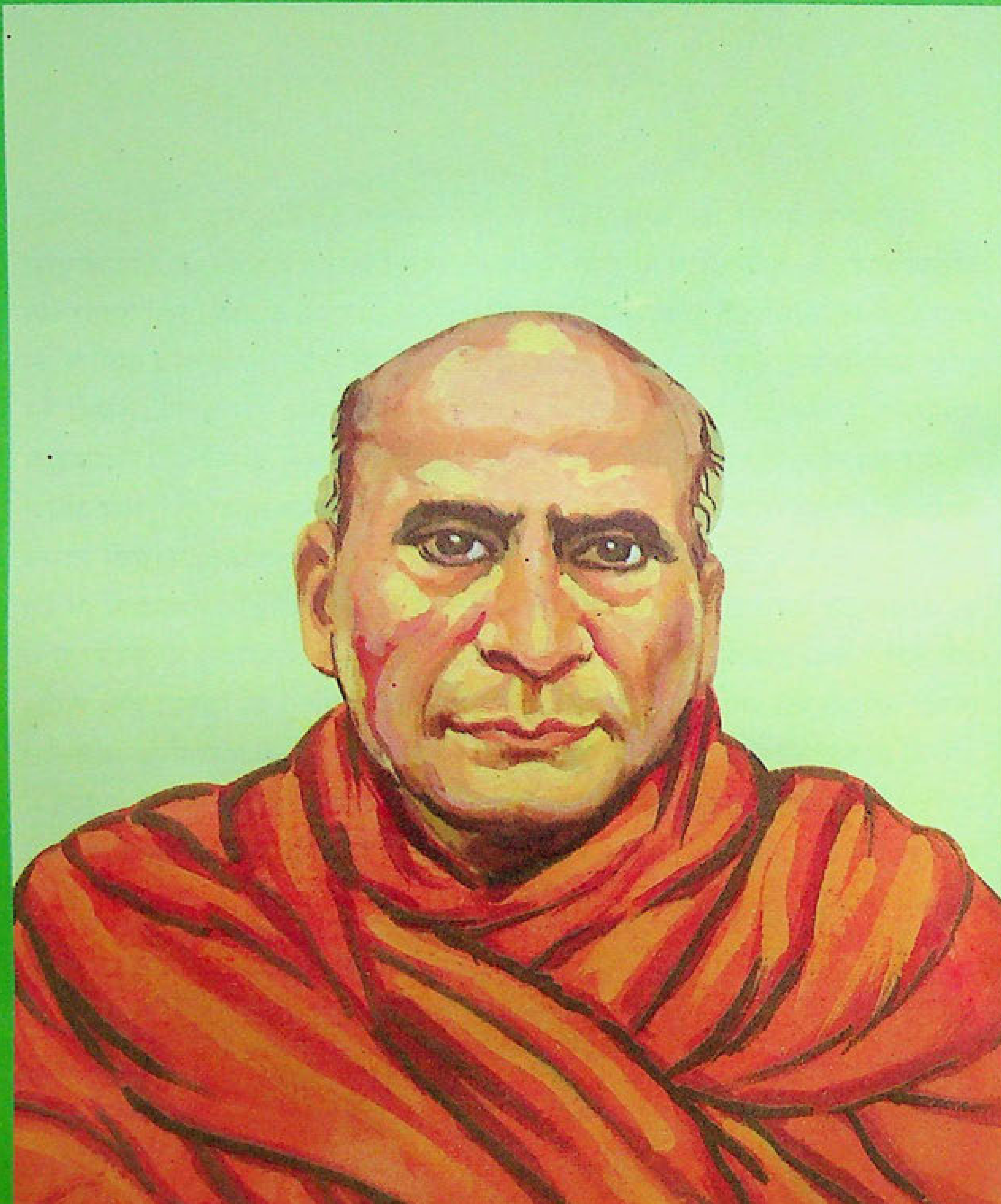

स्वामी श्रद्धानन्द

स्वामी श्रद्धानन्द का जन्म 1854 में जालंधर के तलवन गांव (पंजाब) में लाला नानकचन्द के पुत्र के रूप में हुआ था। उनका पूर्व नाम मुंशीराम था। महर्षि स्वामी दयानन्द एवं उनके ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' के सम्पर्क ने उन्हें आर्य समाज के सिद्धान्तों का कट्टर समर्थक बना दिया। कन्या महाविद्यालय जालंधर मुंशीराम की ही देन है। सन् 1900 के बाद आर्य समाज पर ब्रिटिश सरकार ने अनेक अभियोग लगाये क्योंकि आर्य समाज देश और राष्ट्र पर प्राण न्यौछावर करने की शिक्षा देता था। 1902 में मुंशीराम ने गुरुकुल काँगड़ी की नींव डाली। गुरुकुल काँगड़ी पर भी ब्रिटिश सरकार की कुदृष्टि बनी रहती थी। 1917 में मुंशीराम ने संन्यासाश्रम में प्रवेश किया। अब वह मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानन्द बन गये। 1919 में रोलेट एक्ट का विरोध करने हेतु स्वामी श्रद्धानन्द खुल कर ब्रिटिश सरकार के विरोध में खड़े हो गये। 30 मार्च, 1919 को दिल्ली में रोलेट एक्ट का विरोध करते हुए जुलूस पर पुलिस ने बन्दूकें तान दीं। तब वह सीना तान कर बन्दूकों के आगे खड़े हो गये और बोले, 'यदि छेदना ही है तो पहले मेरा सीना छेदिये।' तुरंत बंदूकें झुक गईं। इसी भारतीय संत ने दिल्ली की जामा मस्जिद से वेद मंत्रों का उच्चारण करते हुए ब्रिटिश सरकार को ललकारा था। सूरत, मुम्बई व अहमदाबाद आदि शहरों में उनके ब्रिटिश सरकार विरोधी व्याख्यानों ने धूम मचा दी। 1922 में अमृतसर के अकाल तख्त से भाषण के समय उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। एक वर्ष 4 माह की जेल भी काटी। स्त्री शिक्षा, अछूतोद्धार व राष्ट्रीय एकता के प्रयासों ने उन्हें राष्ट्रीय संत बना दिया। एक मजहबी उन्मादी की गोली का शिकार होकर 23 दिसम्बर, 1926 को उन्होंने भारतीय संस्कृति की वेदी पर अपने जीवन की आहुति दे दी।

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय

लाला लाजपतराय का जन्म 28 जनवरी, 1865 को गांव ढुंढिके (फरीदकोट) में लाला राधाकृष्ण अग्रवाल के पुत्र के रूप में हुआ था। सन् 1905 के काँग्रेस अधिवेशन में लाला लाजपतराय ने सिंह गर्जना कर दी, "आजादी हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, अंग्रेजों से भीख माँगने की वस्तु नहीं।" इन्होंने बंग-भंग विरोध आन्दोलन का पंजाब राज्य में नेतृत्व किया। इनके भाषणों की उग्र भाषा व तीखे तेवरों से अंग्रेज सरकार चिढ़ गई। अतः 9 मई, 1907 को इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन जनता के विरोध के कारण इन्हें शीघ्र ही रिहा करना पड़ा। सन् 1910 में लाला जी ने 'हिन्दू महासभा' का गठन किया। 1913 में इन्हें अमेरिका जाना पड़ा तो वहाँ भी अपने ओजस्वी भाषणों से भारत में अंग्रेजों के अत्याचारों का कोरा चिट्ठा खोला। अंग्रेज सरकार ने इनके भारत प्रवेश पर पाँच वर्ष के लिए पाबंदी लगा दी। अमेरिका में ही इन्होंने 'इंडिया होम रूल लीग' की स्थापना कर डाली। इनके द्वारा लिखी गई "तरुण भारत" ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर ली गई।

इन्होंने लाहौर में 'नेशनल कालिज' तथा 'तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' खोला। लाहौर में सरकार द्वारा महारानी विक्टोरिया की मूर्ति स्थापना का विरोध किया। सन् 1921 में **'Servants of the people society'** (लोक सेवा मंडल) की स्थापना की।

इन्होंने **'The people of Young India'** तथा **'Young India'** अंग्रेजी के एवं 'वन्देमातरम्' उर्दू के पत्रों का प्रकाशन आरंभ कर दिया। यह पत्र जनता में जागृति लाने के सशक्त माध्यम बने। 1928 में लाहौर में साइमन कमीशन के विरोध जलूस का नेतृत्व करते हुए इन पर हुए लाठी चार्ज के फलस्वरूप दिनांक 17 नवम्बर को इनका निधन हो गया।

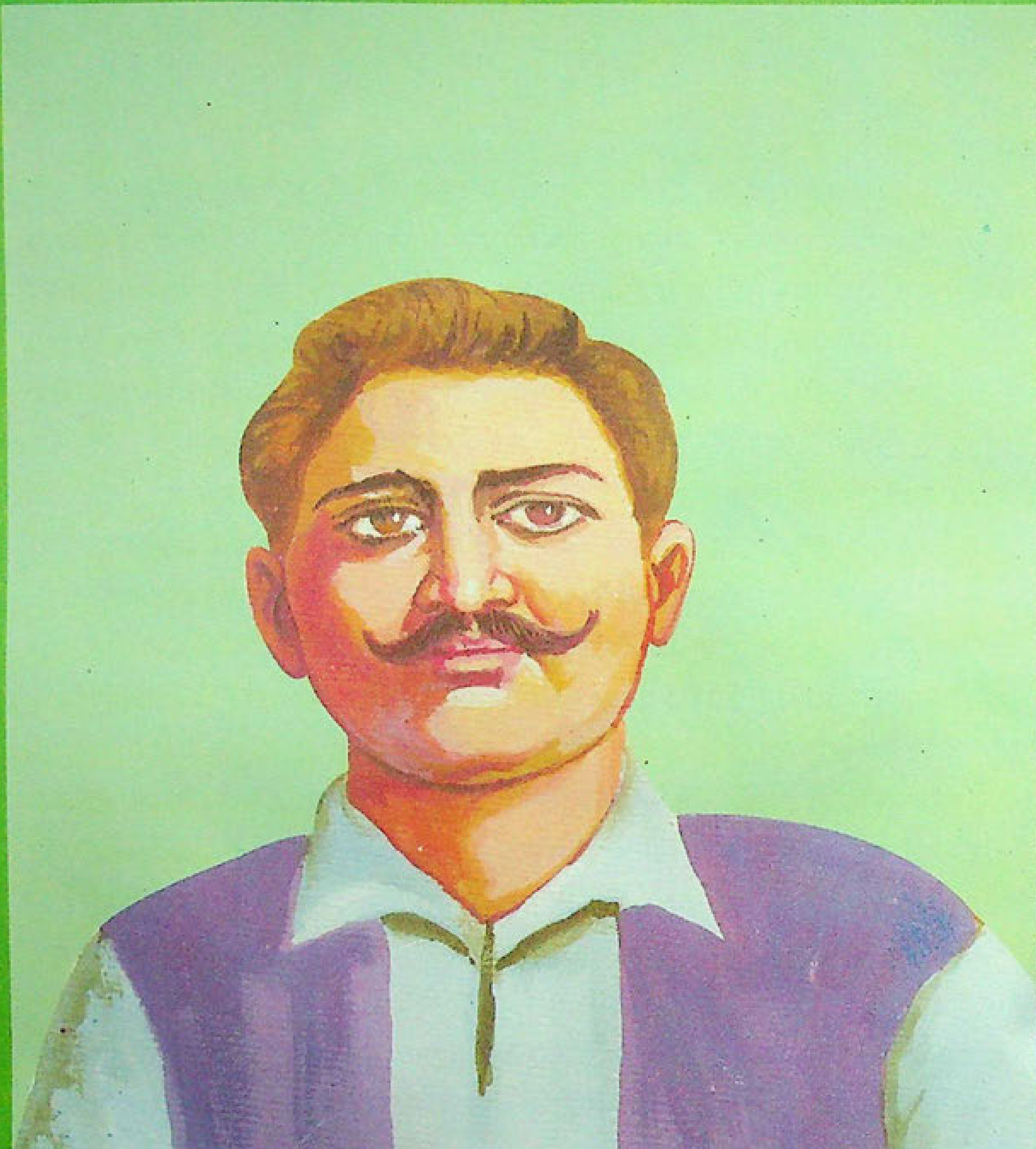

महावीरसिंह

महावीरसिंह का जन्म 16 सितम्बर, 1904 को शाहपुर टहला (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। बचपन में ही इन्होंने देश की आजादी की खातिर अपना जीवन बलिदान करने का संकल्प ले लिया था। वह कानपुर के डी.ए.वी. कालेज में अध्ययन-रत थे। तभी इन्हें अपने विवाह के बारे में सूचना मिली। उन्होंने अपने पिता को पत्र लिखा- ''मैंने मातृभूमि को अंग्रेजों से मुक्त कराने हेतु अपना जीवन समर्पित कर दिया है। अत: विवाह जैसे भौतिक सुखों का अब जीवन में कोई भी महत्त्व नहीं है।'' इस पत्र के जवाब में पिता ने उन्हें इस संकल्प पर दृढ़ रहने के लिए आशीर्वाद दिया। साण्डर्स की हत्या के अभियोग में इन्हें भी कठोर कारावास की सजा देकर अंडमान भेज दिया गया। अंडमान की जेल में कैदियों के साथ बर्बरतापूर्ण क्रूर व्यवहार एवं अमानवीय यातनाओं के विरुद्ध इन्होंने आमरण अनशन आरंभ कर दिया। क्रांतिकारी शिववर्मा के शब्दों में:- ''अनशन के छठे दिन से ही अधिकारियों ने बलपूर्वक दूध पिलाने का कार्यक्रम आरंभ कर दिया। आधे घंटे की कुश्ती के बाद दस-बारह व्यक्तियों ने महावीरसिंह को जमीन पर पटक दिया और डाक्टर ने एक घुटना उस के सीने पर रख कर नली नाक के अंदर चढ़ा दी। नली पेट में न जाकर फेफड़ों में चली गई। डाक्टर ने पूरा एक सेर दूध इन के फेफड़ों में भर दिया और मछली की तरह इन्हें तड़पता छोड़ कर चला गया।'' पास की कोठरियों से उस के साथियों ने शोर मचाया। लेकिन तब तक महावीरसिंह दम तोड़ चुके थे।

यतीन्द्रनाथ दास

यतीन्द्रनाथ दास का जन्म 27 अक्तूबर, 1904 को कोलकाता में हुआ था। वह केवल सोलह वर्ष की आयु में 1921 के असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। चार दिन जेल में रह कर घर लौटे तो पिता की फटकार सुन कर घर से निकल गये। आन्दोलन में पुनः जेल काटी। बीमार अवस्था में जेल से छूटने पर पिता इन्हें घर लौटा लाये। इसके बाद वह क्रांतिकारी दल में शामिल हो गये। शचीन्द्र नाथ सान्याल ने उन्हें बम बनाना सिखाया। 1928 में उन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया गया। अबकी बार जेल में सुपरिटेंडेंट के गलत व्यवहार के कारण इनकी उससे हाथा-पाई हो गई। अतः यतीन्द्र की बेरहमी से पिटाई कराई गई। यतीन्द्र ने जेल में भूख हड़ताल कर दी। सुपरिटेंडेंट के माफी माँगने पर ही 23 दिन बाद भूख हड़ताल खोली। यतीन्द्र को लाहौर षड़यंत्र केस में छठी बार गिरफ्तार किया गया। जेल में कुव्यवस्था एवम् कुपोषण के कारण सरदार भगतसिंह और उनके सभी साथी राजबंदियों ने आमरण भूख हड़ताल कर दी। यतीन्द्र भूख हड़ताल के पक्ष में नहीं थे। उनके साथी इसे यतीन्द्र की कमजोरी समझ उपहास करने लगे। तब यतीन्द्र ने कहा ''मैं अनशन करूँगा। लेकिन मेरा अनशन कुछ शर्तों के साथ होगा। मुझे कोई अनशन तोड़ने के लिए नहीं कहेगा। मेरा अनशन का तात्पर्य होगा।- ''विजय या मौत।''

यतीन्द्र ने 13 जुलाई, 1929 को अनशन आरम्भ किया। 20 दिन बाद हालत बिगड़ने लगी। जबरदस्ती दूध नाक द्वारा चढ़ाया गया। लेकिन जब दूध साँस की नली में चला गया तो अवस्था और बिगड़ गई। 63 दिन बाद 13 सितम्बर, 1929 को इस क्रांतिवीर ने शहादत प्राप्त कर ली। उनका शव कोलकाता ले जाया गया। उनकी शवयात्रा में कोलकाता का जन-सैलाब उमड़ पड़ा। अंत्येष्टि के बाद अगले दिन चिता के अवशेष में से राख को ताबीज में बाँधने के लिये लोगों का ताँता लगा रहा।

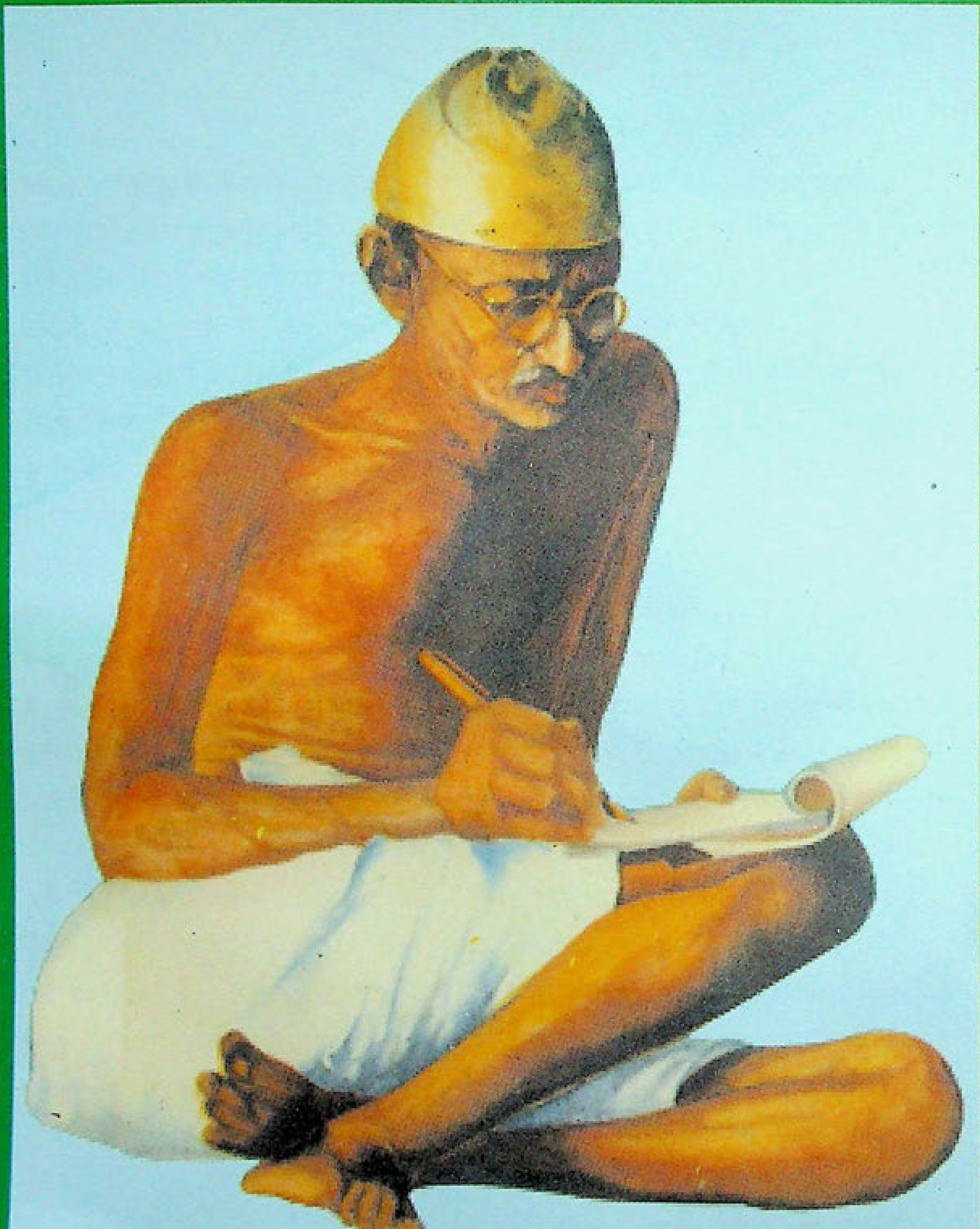

मोहनदास कर्मचन्द गाँधी

महात्मा गाँधी का जन्म 2 अक्तूबर, 1869 को पोरबंदर काठियावाड़ (गुजरात) में हुआ था। इनके राजनैतिक जीवन का आरम्भ दक्षिणी अफ्रीका से हुआ। गाँधीजी ने दक्षिणी अफ्रीका की गोरी सरकार को रंग-भेद की नीति के विरुद्ध अहिंसात्मक आन्दोलन द्वारा झुकने पर बाध्य कर दिया। भारत लौटने पर उन्होंने उसी शस्त्र का ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध प्रयोग किया। अभी तक भारत में स्वतंत्रता हेतु विविध क्षेत्रों से अलग-अलग प्रयास किये जा रहे थे। सारे भारत का कोई सर्वमान्य संगठन नहीं था। लोकमान्य तिलक ने राजनीति से संन्यास लेकर काँग्रेस का दायित्व महात्मा गाँधी को सोंप दिया। इसके बाद उन्होंने 1920 में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अहिंसात्मक आन्दोलन की बागडोर संभाल ली। स्वदेशी अपनाने पर जोर देते हुए उन्होंने असहयोग आन्दोलन के माध्यम से ब्रिटिश सरकार की चूल हिला दी। सारा देश प्रथम बार एक नेतृत्व के तहत ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध खड़ा हो गया। उनके संकेत पर छात्रों ने स्कूल व कालेज छोड़ दिये, वकीलों ने वकालत छोड़ दी। लोगों ने सरकारी नौकरियाँ छोड़ दीं। जो लोग जेलों में जाने से डरते थे वह अब जेल जाना गौरव की बात समझने लगे। 1930 के दशक में गाँधी जी ने जनता को आह्वान किया कि वह सरकार की गलत नीतियों पर आधारित कानूनों को मानने से इनकार कर दे। उन्होंने प्रतीकात्मक रूप से नमक कानून तोड़ कर 6 मार्च, 1930 को 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' का श्री गणेश कर दिया। देश भर में सरकारी कानूनों को तोड़ने का क्रम चल पड़ा। सरकारी दमन चक्र भी तेजी से चलता रहा। लेकिन जनता ने लाठी व गोली की मार सह कर भी आन्दोलन की मशाल को धीमा नहीं पड़ने दिया। महात्मा गाँधी मात्र एक लंगोटी धारण कर स्वातंत्र्य-साधना में तिल-तिल जलते रहे लेकिन उन्होंने स्वातंत्र्य-संघर्ष के दीप को कभी बुझने नहीं दिया। उधर विश्व-युद्ध की दुंदुभि बज चुकी थी। यह भारत की स्वतंत्रता हेतु सर्वोत्तम अवसर था। अत: 1942 में महात्मा गाँधी ने भारतीय राष्ट्रीय

काँग्रेस के मंच से अंग्रेजी सम्राज्य को चुनौती दे दी- ''अंग्रेजो-भारत छोड़ो''। इस घोषणा के तुरंत बाद ब्रिटिश सरकार ने सारे देश के नेताओं को रातोंरात उनके घरों से जगा-जगा कर गिरफ्तार कर लिया। लेकिन गाँधी जी जनता के नाम पहले ही संदेश छोड़ चुके थे- 'करो या मरो'। 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन ने अब जनक्रांति का रूप ले लिया। देश की चालीस करोड़ की आबादी में एक भी व्यक्ति इस आन्दोलन से अछूता न रहा। संभवत: यह विश्व की सबसे बड़ी जन-क्रान्ति थी। ब्रिटिश की दमन नीति ने 1944 तक 'भारत छोड़ो आन्दोलन को भी ठंडा कर दिया लेकिन विश्व युद्ध के कारण परिस्थिति बदल चुकी थी। अन्तत: ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा एवं देश ने 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता की सांस ली। लेकिन एक मदांध व्यक्ति नाथूराम गोडसे की गोली का शिकार होकर 30 जनवरी, 1948 को यह महामानव सदैव के लिए अनंत की नींद में सो गया।

महात्मा गाँधी की स्वतंत्र भारत के लिए शिक्षा की अपनी अलग नीति थी। वैज्ञानिक एवं ग्रामीण परिवेश पर आधारित उनका अलग दर्शन था। उनका कहना था कि हमें यह कहने की बजाय कि ''गाँव. में स्कूल है'', यह कहना होगा कि ''स्कूल में गाँव है।'' अर्थात उन्होंने पूरे गाँव को लघु औद्योगिक इकाई के रूप में देखने की परिकल्पना की थी।

गाँधी जी की अहिंसाजन्य क्रांति भाषणबाजी तक ही सीमित नहीं थी। उन्होंने असमानता, गरीबी और अत्याचारों के विरुद्ध व्यावहारिक रूप से वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात किया था। त्याग और बलिदान की भावना ने, सामाजिक न्याय और साम्प्रदायिक मैत्री के लिए उनके अथक संघर्ष ने उन्हें 'शताब्दी पुरुष' बना दिया। एक ऐसा शताब्दी पुरुष, जिसे शांति की दृष्टि से बुद्ध, महावीर और ईसा की परम्परा में गिना जा सकता है।

कस्तूरबा गाँधी

कस्तूरबा गाँधी का जन्म 1869 को पोरबंदर (गुजरात) में हुआ था। इन्होंने महात्मा गाँधी के साथ विवाह सूत्र में बंधकर जीवन भर उनका साथ निभाया।

परमात्मा ने नारी को ईश्वर भक्ति, सेवा, त्याग, सहनशीलता, साहस, धैर्य, उदारता, अतिथि-सत्कार एवं संयम जैसे गुणों से विभूषित किया है। इन सभी गुणों की प्रतिमूर्ति थीं कस्तूरबा। तभी तो गाँधी जी ने उनके बारे में महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की थी- ''चालीस वर्षों से मैं बिना माँ-बाप का हूँ... और सत्याग्रह का पाठ भी मैंने कस्तूरबा से ही सीखा है'' - वास्तव में यदि कस्तूरबा उनका सहयोग न देतीं तो शायद मोहनदास कर्मचन्द गाँधी कभी ''महात्मा गाँधी'' नहीं बन पाते।

कस्तूरबा ने 1920 से 22 तक, 1930 से 32 तक तथा 1942 में अनेक बार ब्रिटिश सरकार के विरोध में जुलूसों व धरनों का नेतृत्व किया। ब्रिटिश सरकार के क्रूरतापूर्वक लाठियों के प्रहार व दमन को सहा। आन्दोलनों में छाया की तरह 'गाँधी जी के साथ रहती थीं। आश्रम लौटने पर सबकी सेवा में जुट जाती थीं। गाँधी जी से मिलने आने वालों का आतिथ्य-सत्कार वह स्वयं करतीं थीं। आश्रम की सारी व्यवस्था का दायित्व भी उन्हीं पर था। अनेक बार उन्हें जेल जाना पड़ा।

9 अगस्त, 1942 को 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन की घोषणा होते ही वह अंतिम बार जेल गईं। गाँधी जी व महादेव देसाई के साथ उन्हें आगा खाँ महल पूना में रखा गया। 22 फरवरी, 1944 को वहीं नजरबंदी की अवस्था में कस्तूरबा ने अंतिम श्वास ली।

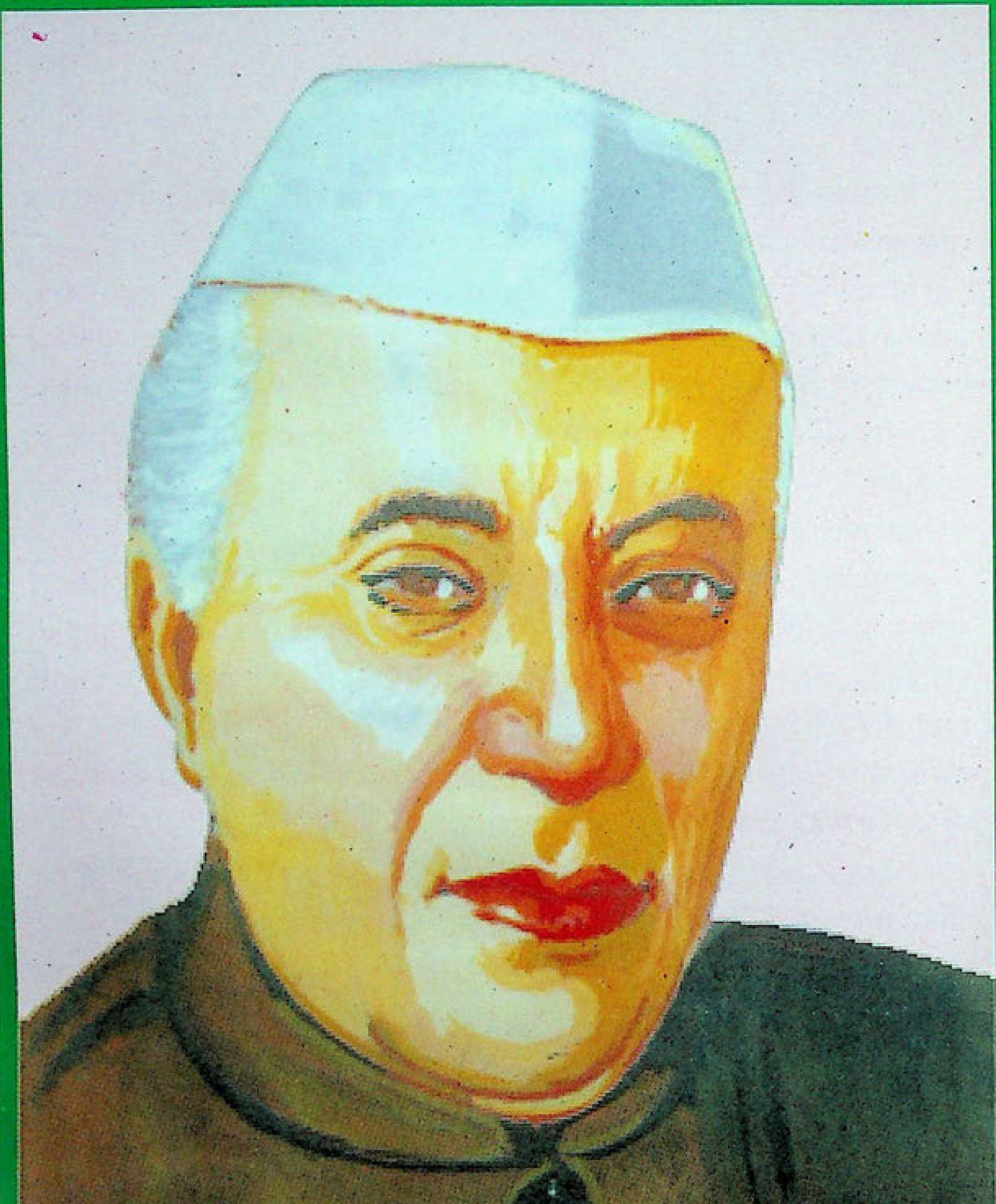

पं० जवाहरलाल नेहरू

पं. जवाहरलाल नेहरू का जन्म 14 नवम्बर, 1889 को पं. मोतीलाल नेहरू के पुत्र के रूप में प्रयाग में हुआ। राजशाही परिवार में जन्म लेकर वैभवपूर्ण बचपन व्यतीत करने के बाद भी स्वतंत्रता संघर्ष की कँटीली पगडंडियों पर चल पड़ना इस बात को सिद्ध करता है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू के अन्दर पूर्व जन्म की कोई महान आत्मा विद्यमान थी। उसी महान आत्मा के प्रभाव में आकर पिता श्री मोतीलाल नेहरू को भी स्वतंत्रता संघर्ष में शामिल होने पर विवश होना पड़ा था। महात्मा गाँधी को यदि भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का पिता कहा जाये तो जवाहर लाल नेहरू को संघर्ष की आत्मा कहा जा सकता है। लगभग 14 वर्ष तक उन्होंने जेल यात्रा की पीड़ा को भोगा। उनकी दूर दृष्टि भारत को केवल स्वतंत्र कराने तक ही सीमित नहीं थी। वह भारत को सुखी, समृद्ध व समाजवाद के मार्ग पर चलता हुआ आदर्श प्रजातंत्र के रूप में देखना चाहते थे। आजादी से पूर्व ही उन्होंने शिक्षा, ग्राम, कृषि व उद्योग आदि के क्षेत्रों में उत्थान की जो परिकल्पना की थी आजादी के बाद उसे साकार करने का गौरव भी उन्हें प्राप्त हुआ। भारत की स्वतंत्रता के बाद विश्व के सबसे बड़े प्रजातंत्र भारत के प्रधान मंत्री पद को सुशोभित करते हुए उन्होंने विश्व मंच पर अपनी गहरी पैठ कायम कर ली। उन्हीं के द्वारा प्रतिपादित गुटनिरपेक्ष नीति ने विश्व के अनेक देशों को अपनी ओर आकर्षित किया। इस नीति ने ही कई बार विश्व युद्ध के संकट को टाला। उन्हें विश्व शांति का अग्रदूत कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी

पंडित जवाहरलाल नेहरू को बच्चों से विशेष प्रेम था। बच्चों के कार्यक्रमों में शामिल होने पर वह बड़ा आनन्द अनुभव करते थे। इसी कारण उन्होंने 14 नवम्बर, 1957 को अपना जन्म दिन प्रति वर्ष 'बाल दिवस' के रूप में मनाने की घोषणा की। बच्चों ने भी नेहरू जी को 'चाचा नेहरू' पुकार कर अपनी आत्मीयता का परिचय दिया। 27 मई, 1964 को उनका अचानक निधन हो गया।

सरदार वल्लभभाई पटेल

सरदार वल्लभभाई पटेल का जन्म 31 अक्तूबर, 1875 को नड़ियाद (गुजरात) में एक किसान परिवार में हुआ था।

कानून की डिग्री प्राप्त करने के बाद उन्होंने बोरसद में वकालत शुरू की। सन् 1918 में वल्लभभाई का खेड़ा सत्याग्रह के समय गाँधी जी से सम्पर्क हुआ। क्षेत्र में पड़े सूखे व अकाल के कारण किसानों का लगान माफ करने के लिए चलाए गए आन्दोलन में श्री पटेल सक्रिय रहे। 1921 में असहयोग आन्दोलन शुरू होते ही उन्होंने अपनी वकालत की प्रैक्टिस छोड़ दी। वे स्वदेशी एवं मद्य निषेध आन्दोलन में सक्रिय हो उठे। सन् 1928 में बारदोली के लगान बन्दी सत्याग्रह का निर्भीकतापूर्वक नेतृत्व करने के कारण वे 'सरदार' कहलाये जाने लगे।

सन् 1930 में नमक सत्याग्रह में उन्होंने गिरफ्तारी दी। वे कांग्रेस के शीर्ष नेता बन गये। उन्होंने मार्च 1931 में हुए कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता की। इसी ऐतिहासिक अधिवेशन में 'गाँधी-इरविन पैक्ट' की गरमागरम बहस के बाद पुष्टि की गई।

राउंड टेबिल कान्फ्रेंस की असफलता के बाद कांग्रेस नेताओं की धरपकड़ की गई। सरदार पटेल को भी गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। डेढ़ वर्ष तक वे यरवदा और नरिमन जेलों में रहे। 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में भी उन्होंने भाग लिया। काफी समय तक जेल में रहे।

वे स्वाधीन भारत के प्रथम गृहमंत्री बनाये गये। देश की 600 रियासतों के भारत में विलय में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। हैदराबाद में पाकिस्तान समर्थक तत्वों के षड्यन्त्र को असफल बनाने में उन्होंने अत्यन्त दृढ़ता से काम लिया। 15 दिसम्बर, 1950 को उनका निधन हो गया।

लाला देशबंधु गुप्ता

श्री देशबंधु गुप्ता का जन्म 14 जून, 1901 को पानीपत (हरियाणा) में लाला शादीराम अग्रवाल के पुत्र के रूप में हुआ था। युवावस्था में उन्होंने दिल्ली को अपनी कार्यस्थली बनाया। लोकमान्य तिलक के लेखों से प्रभावित होकर उन्होंने अपना जीवन स्वतंत्रता आन्दोलन के लिये समर्पित कर दिया। लाला लाजपतराय ने उन्हें अपने पत्र 'वन्देमातरम्' का सम्पादक बनाया। स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ गाँवों में घूम-घूम कर राष्ट्रीय जागरण में योगदान करते रहे। ब्रिटिश सरकार उनके ओजस्वी भाषणों से काँप उठी। 5 जनवरी, 1922 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। एक वर्ष के लिये स्वामी श्रद्धानन्द के साथ पंजाब की मियांवाली जेल में रहे।

लाला लाजपतराय जी के बलिदान के बाद 21 नवम्बर, 1928 को साइमन कमीशन दिल्ली आया तो उसके विरोध प्रदर्शन में वह अग्रणी थे। नमक कानून भंग करते हुए उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। 6 माह की जेल काटी। उनकी धर्म पत्नी श्रीमती सोना देवी भी गिरफ्तार कर ली गई एवं पुत्र विश्वबंधु के वारन्ट जारी थे। 24 अप्रैल, 1932 को लाला देशबंधु जी ने पिकेटिंग करते हुए गिरफ्तार होकर एक वर्ष तक जेल की यातनाएँ सहन कीं।

सन् 1937 में लाला जी पंजाब विधान सभा के सदस्य चुने गये। लाला जी ने जनता के हित में अनेक कानून लागू करवाये। उन्होंने दलितों के उद्धार के लिये अनेक रचनात्मक अभियान चलाये। वे अनेक वर्षों तक आर्य समाज दीवान हाल के प्रधान रहे। उन्होंने दिल्ली से प्रकाशित दैनिक 'तेज' का सम्पादन किया। 1942 के आन्दोलन में भूमिगत रहकर गतिविधियाँ चलाते हुए उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

लाला देशबंधु जी संविधान समिति के सदस्य मनोनीत किये गये। उनकी गणना अग्रणी पत्रकारों में होने लगी थी। 21 नवम्बर, 1951 को वे अखिल भारतीय पत्रकार सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में भाग लेने कोलकाता जा रहे थे तभी विमान दुर्घटना में उनका निधन हो गया।

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद का जन्म 3 दिसम्बर, 1884 को सारन जिले के एक गाँव में हुआ था। बचपन से ही वे विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। सरलता, सौजन्यता एवं नम्रता उनके जीवन के आभूषण थे। अपनी प्रारम्भिक परीक्षाओं से लेकर अन्त तक उन्होंने प्रत्येक परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1911 में उन्होंने कोलकाता में वकालत प्रारम्भ कर दी। गाँधीजी से 1915 में पहली भेंट में ही राजेन्द्रप्रसाद कांग्रेस से जुड़ते चले गये। 1921 के असहयोग आन्दोलन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। 1932 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। 1934 में जब बिहार में भूकम्प आया तो उन्हें मुक्त किया गया। यद्यपि उस समय उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था लेकिन बीमारी की अवस्था में भी भूकम्प पीड़ितों की सेवा में जुट गये। उनकी सेवाओं के फलस्वरूप मुम्बई अधिवेशन का उन्हें अध्यक्ष बनाया गया।

1939 में सुभाष चन्द्र बोस के साथ कांग्रेस के टकराव के समय राजेन्द्र बाबू को ही बीच में डालकर समझौते का प्रयास किया गया। आजादी के बाद संविधान तैयार करने वाली संविधान सभा का उन्हें अध्यक्ष बनाया गया। नया संविधान बनने के बाद 1950 में जब नया संविधान लागू हुआ तो उन्होंने भारत के प्रथम राष्ट्रपति बनकर भारत का गौरव बढ़ाया। डॉ. राजेन्द्रप्रसाद अपनी सादगी के लिये प्रसिद्ध थे। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का राष्ट्राध्यक्ष होने के बाद भी वह अपने को भारत का सामान्य नागरिक ही समझते थे। अपने पद की गरिमा को कायम रखते हुए वह किसी भी व्यक्ति के साथ अपने सद्व्यवहार एवं शिष्टाचार में कमी नहीं आने देते थे। 10 वर्ष तक भारत के राष्ट्रपति रहने के बाद 28 फरवरी, 1963 को यह महान आत्मा पंचतत्व में विलीन हो गई।

पण्डित मदनमोहन मालवीय

पण्डित मदनमोहन मालवीय का जन्म 25 दिसम्बर, 1861 को इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) के अहिय्यापुरा में हुआ था। अब यह मोहल्ला मालवीय नगर के नाम से प्रसिद्ध हो गया है। मालवीय जी को बचपन में कविता का बड़ा शौक था। उन्होंने 15, 16 वर्ष की आयु में ही कवि 'मकरन्द' नाम से ख्याति प्राप्त कर ली थी।

कांग्रेस के 1886 में कलकत्ता अधिवेशन में मालवीय जी प्रथम बार राजनैतिक मंच पर पधारे थे। इसके बाद जीवन पर्यन्त कांग्रेस से जुड़े रहे। 13 अप्रैल, 1919 को 'जलियाँवाला बाग नरसंहार' पर उन्होंने केन्द्रीय धारा सभा में लगातार छः घंटे तक ओजस्वी वाणी में ब्रिटिश क्रूरता के विरुद्ध आवाज उठाई। कांग्रेस द्वारा संचालित आन्दोलनों में उन्होंने जेल यात्रा की। कई बार उन्होंने कांग्रेस के निर्णयों का खुलकर विरोध किया, लेकिन फिर भी कांग्रेस में वह सम्मानित एवं एक प्रतिष्ठित स्थान रखते थे। हिन्दुत्ववादी होने के कारण हिन्दु महा सभा में भी उनका बड़ा सम्मान था। पं. मदनमोहन मालवीय जी के जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि 'बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय' है। उन्होंने इसकी स्थापना 4 फरवरी सन् 1916 को की थी। 1919 से 1946 तक जीवन पर्यन्त वे इसके कुलपति रहे।

मालवीय जी की पत्रकारिता जगत में गहरी पैठ थी। उन्होंने 1907 में 'अभ्युदय' साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ किया। जिसे बाद में दैनिक कर दिया गया। 1910 में 'मर्यादा' मासिक पत्रिका भी आरम्भ की। किसानों की समस्याओं के समाधान हेतु 1921 में 'किसान' पत्र निकाला। अंग्रेजी दैनिक 'लीडर' की स्थापना भी मालवीय जी ने ही की थी। वह 1924 से लेकर जीवन पर्यन्त 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के निदेशक मंडल के प्रतिष्ठित सदस्य रहे। नौवाखाली में हिन्दुओं का भयंकर रक्त-पात हुआ। इस रक्त-पात से उन्हें बड़ा मानसिक आघात लगा। इस आघात को वह सह न सके। 1946 में उन्होंने अंतिम श्वाँस ली।

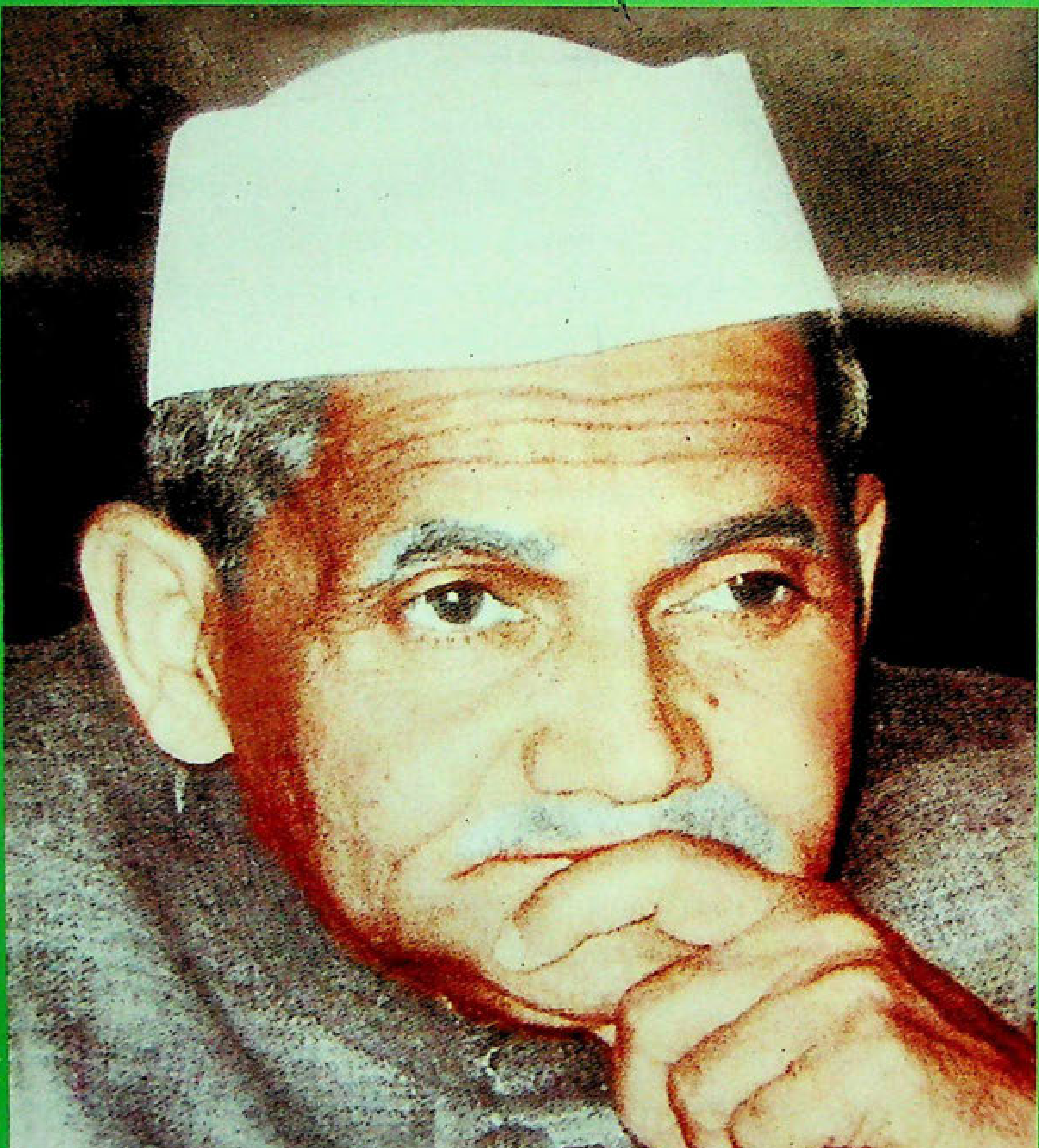

लालबहादुर शास्त्री

लालबहादुर शास्त्री का जन्म 2 अक्तूबर, 1904 को काशी के निकट मुगलसराय में शारदा प्रसाद श्रीवास्तव के पुत्र के रूप में हुआ। उनके पिता शिक्षक थे। उन्होंने काशी (वाराणसी) के हरिश्चन्द्र स्कूल में अध्ययन आरम्भ किया। स्वतंत्रता संग्राम से प्रभावित होकर उन्होंने स्कूल छोड़ दिया तथा स्वाधीनता के लिए जन जागरण में सक्रिय हो गये। बाद में 1926 में काशी विद्यापीठ से उच्चशिक्षा पूरी की।

सन् 1926 में लालबहादुर जी भारत सेवक संघ के माध्यम से स्वदेशी व रचनात्मक कार्यों में सक्रिय हो गये। मुजफ्फरनगर व मेरठ क्षेत्र में उन्होंने स्वाधीनता सेनानी मास्टर सुन्दरलाल आदि के साथ अस्पृश्यता निवारण तथा सामाजिक समरसता की भावना पुष्ट करने में योगदान किया। बाद में उन्होंने प्रयाग (इलाहाबाद) को अपनी कर्मस्थली बनाया। प्रदेश कांग्रेस के मंत्री बनाये गये। शास्त्री जी 1930 के आंदोलन में भाग लेकर जेल गये। 1940 तथा 1942 के आंदोलनों में भी उन्हें गिरफ्तार कर जेल भेजा गया। शास्त्रीजी की पत्नी श्रीमती ललिता शास्त्री भी स्वदेशी के प्रचार प्रसार में सक्रिय रहीं। वे आदर्श भारतीय नारी थीं। वे गाँधीजी, नेहरूजी, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन तथा गोविन्द वल्लभ पंत के निकट सहयोगी रहे। 1937 में उत्तर प्रदेश विधानसभा के सदस्य बनाये गये। प्रदेश विधानसभा में कांग्रेस दल के संसदीय सचिव बने।

देश के स्वाधीन होने के बाद वे प्रथम सरकार में 1951 से 1956 तक रेलवे मंत्री रहे। सन् 1964 में नेहरूजी के देहावसान के बाद शास्त्री जी को प्रधानमंत्री मनोनीत किया गया। उनके प्रधानमंत्रित्व काल में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण का दुस्साहस किया। उन्होंने 'जय जवान-जय किसान' का ऐतिहासिक नारा दिया। उनके सुदृढ़ नेतृत्व में भारत ने, पाकिस्तान को युद्ध में करारी पराजय दी। वे सोवियत संघ के आग्रह पर पाकिस्तान से बातचीत करने ताशकंद गये। 11 जनवरी, 1966 को वहीं उनका निधन हो गया।

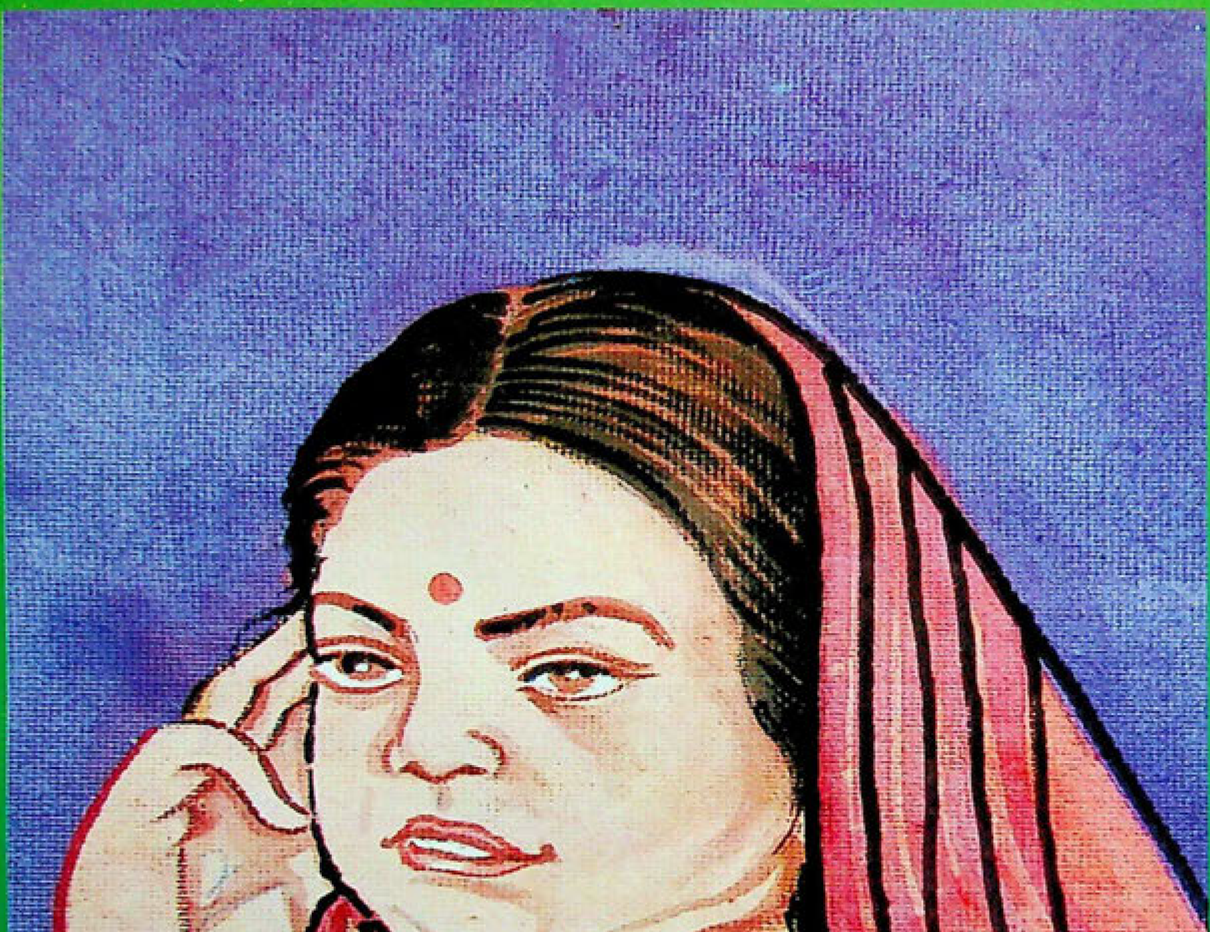

सुभद्रा कुमारी चौहान

सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म सन् 1904 में नागपंचमी के दिन इलाहाबाद के निकट नीनालपुर ग्राम (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। केवल 15 वर्ष की अल्पायु में ही विवाह हो जाने के कारण उनका अध्ययन अधिक नहीं चल सका। सुभद्राकुमारी चौहान के पति श्री लक्ष्मण सिंह चौहान जबलपुर में 1921 में असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे। अत: वह भी आन्दोलन में कूद पड़ीं। इसी बीच इनके अन्दर छिपी काव्य प्रतिभा भी विकसित होती रही। वास्तविकता यह है कि सुभद्रा कुमारी चौहान जन्मजात कवयित्री थीं। उनके काव्य में 'मुकुल' और कहानी संग्रह 'विखरे मोती' को हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'सेक्सरिया पुरस्कार' से सम्मानित किया।

सुभद्रा कुमारी चौहान को अपने को क्षत्राणी होने पर गर्व था। वह बड़े गर्व से कहती थीं ''मैं क्षत्राणी हूँ, अत: ब्रिटिश सरकार से टक्कर लेना मेरा धर्म है।'' इसी भावना के वशीभूत होकर महाकौशल क्षेत्र में 1942 की अगस्त क्रांति में उन्होंने अपने को पूरी तरह स्वतंत्रता संघर्ष में झौंक दिया। कई बार जेल यात्राएँ कीं। उनकी प्रसिद्ध कविता झाँसी की रानी में उत्कृष्ट देशभक्ति एवं क्रांतिकारी विचारधारा का आभास मिलता है।

''गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी
खूब लड़ी मरदानी, वह तो झाँसी वाली रानी थी।
बुंदेलों हर बोलों के मुँह, हमने सुनी कहानी थी।।''

इस कविता ने युवकों में ऐसा जोश भरा कि उनकी बाहें भी स्वतंत्रता की हवा में श्वाँस लेने को फड़क उठीं। वर्तमान में भी यह कविता युवकों में प्रेरणा का स्त्रोत बनी हुई है। यह वैचारिक क्रांति की पुरोधा कवियित्री 15 फरवरी, 1948 को एक कार दुर्घटना में अमरत्व को प्राप्त हुईं।

मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म सन् 1886 में चिरगाँव, झाँसी (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। उन्होंने अधिकतर घर पर रह कर ही शिक्षा प्राप्त की एवं हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला एवं संस्कृत भाषाओं में निपुणता प्राप्त कर ली। अपने 50 वर्ष के साहित्यिक जीवन में गुप्त जी ने लगभग 40 काव्य ग्रंथों की रचना की। उन्हें भगवान् राम के पावन चरित्र ने बहुत प्रभावित किया। उन्होंने राम-कथा, कृष्ण-कथा पर आधारित साकेत, पंचवटी, जयद्रथ-वध आदि काव्य ग्रंथ लिखे। 'यशोधरा' उनकी सर्वोत्कृष्ठ कृति बताई जाती है।

सन् 1912 में प्रकाशित अपनी रचना 'भारत-भारती' में गुप्त जी ने भारत के अतीत का गौरव गान करके भारतीयों की सुषुप्त राष्ट्रीय चेतना को जागृत कर दिया। उससे प्रेरित होकर सैंकड़ों क्रांतिवीरों ने हंसते-हंसते मातृवेदी पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। गुप्त जी ने भारत की प्राचीन समृद्धि, स्वातंत्र्य और गौरव की पृष्ठभूमि में तत्कालीन पराधीनता, दुर्दशा और दैन्य का चित्रण करके भारतीयों के स्वाभिमान को ललकारा है। यथा–

वरमंत्र जिसका मुक्ति था, परतंत्र पीड़ित है वही,
फिर वही परम पुरुषार्थ इसमें, शीघ्र ही प्रकटाइये।
यह पाप पूर्ण परावलम्बन, चूर्ण होकर दूर हो,
फिर स्वावलम्बन का हमें प्रिय पुण्य पाठ पढ़ाइये।

ब्रिटिश सरकार ने इस रचना पर प्रतिबंध लगा दिया था। प्रतिबंध भी इस रचना के स्वरों की झंकार को रोक न सका। सन् 1938 में गांधी जी ने उनकी राष्ट्र प्रेम से ओत-प्रोत कविताएँ सुनकर पहली बार 'राष्ट्रकवि' क़ह कर उनका उत्साहवर्धन किया। 1940 व 1942 के आन्दोलनों में सत्याग्रह करते हुए उन्होंने जेल जा कर यातनाएँ भोगीं। आजादी के बाद उन्हें 'राष्ट्रकवि' के रूप में देश ने गौरवान्वित किया। 1952 से 1964 तक वह राज्य सभा के मनोनीत सदस्य रहे। 1964 में उन्हें 'पदम् विभूषण' राष्ट्रीय सम्मान से विभूषित किया गया। दिसम्बर 1964 में चिरगांव में उनका निधन हो गया।

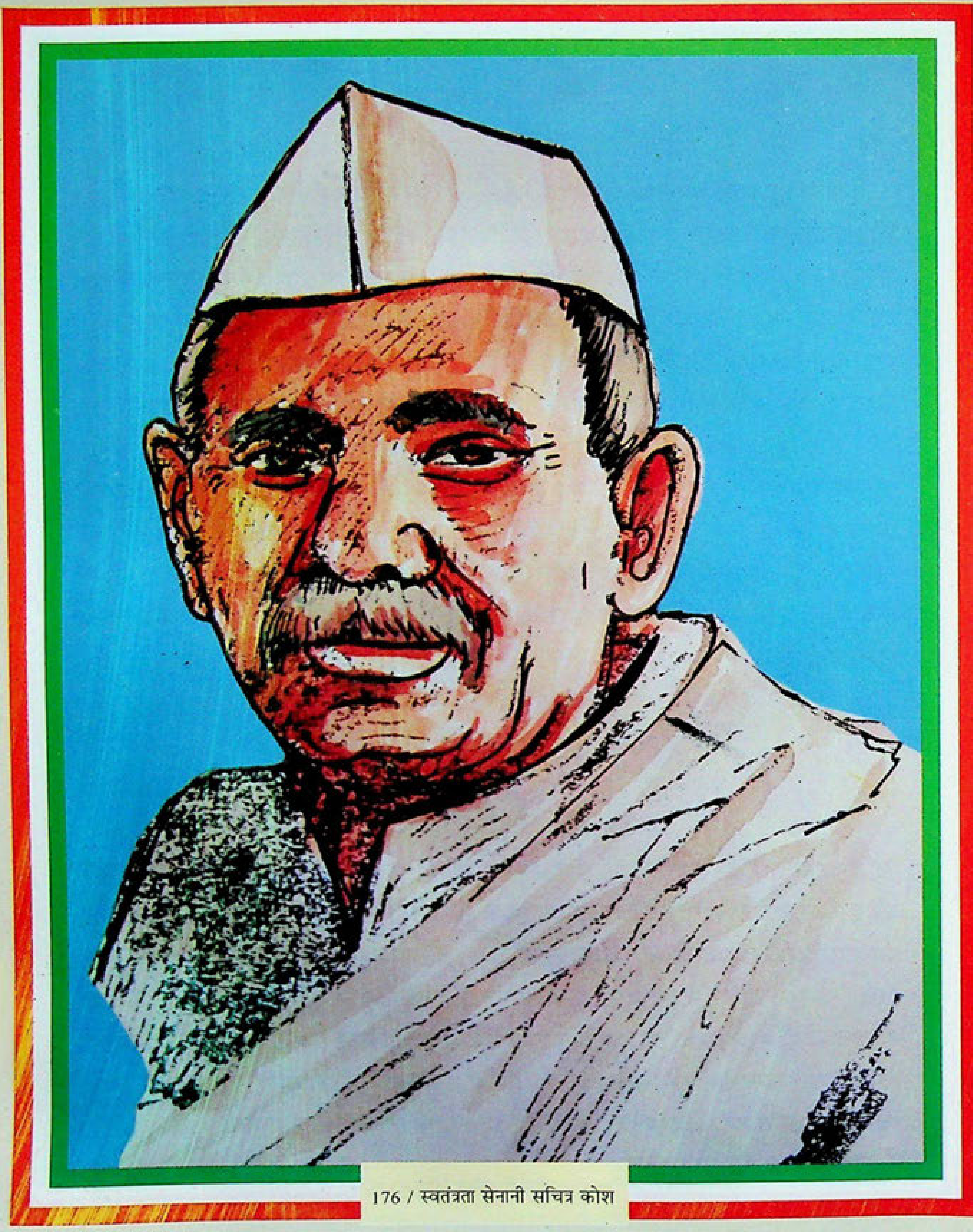

माखनलाल चतुर्वेदी

माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म 4 अप्रैल, 1889 को मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जनपद के बावई नामक ग्राम में हुआ था। इनके द्वारा सम्पादित 'कर्मवीर' तथा 'प्रताप' साप्ताहिकों में राष्ट्र भावना से भरे लेखों एवं ओजस्वी वाणी के कारण इन्हें राजद्रोह के अपराध में गिरफ्तार कर लिया गया। माखनलाल चतुर्वेदी ने अपनी कलम से काव्य में देश पर बलिदान की भावना का जो स्वर निनादित किया था वही स्वर आज भी नवयुवकों की प्रेरणा का स्त्रोत बना हुआ है। उनकी प्रसिद्ध रचना 'पुष्प की अभिलाषा' ने देश पर बलिदान होने की परम्परा को उत्सर्ग-पर्व बना दिया। स्वतंत्रता आन्दोलन में उन्हें अनेक बार जेल जाना पड़ा। माखनलाल चतुर्वेदी ने लगभग 6 वर्ष से भी अधिक सश्रम कठोर कारावास भोगा। जेल की पीड़ा उनकी 'कैदी और कोकिल' कविता की निम्न पंक्तियों में स्पष्ट अनुभव की जा सकती है–

काली तू रजनी भी काली
शासन की करनी भी काली
काली लहर कल्पना काली
मेरी काल कोठरी काली
टोपी काली, कम्बल काली
मेरी लोह, शृंखला काली

'विद्रोही' शीर्षक कविता में उन्होंने अभिव्यक्त किया कि देश भक्तों के बलिदान से ही स्वतंत्रता रूपी आराध्य देवी की अर्चना की जा सकती है। माखनलाल चतुर्वेदी ने सिद्ध कर दिया कि यदि एक क्रांतिवीर अपने बलिदान से युवा पीढ़ी में क्रांतिचेतना उत्पन्न कर सकता है तो एक कवि या लेखक भी अपनी कलम से हजारों कायरों के हृदयों में साहस फूँक सकता है। 30 जनवरी, 1968 को यह सितारा भारतीय गगन से सदा के लिए लुप्त हो गया।

मातंगिनी हाज़रा

मातंगिनी हाज़रा का जन्म मिदनापुर, होगला (पं. बंगाल) में 1870 में हुआ। वह ऐसी वीरांगना थी जिन्होंने 73 वर्ष की आयु में गोलियों से छलनी हो कर भी झंडे को झुकने नहीं दिया। इनका कार्यक्षेत्र मिदनापुर और तामलुक जिले थे। 1929 में विदेशी बहिष्कार, 1930 में टैक्स संघर्ष व नमक कानून तोड़ते हुए डांडी कूच आदि अवसरों पर इन्होंने महिलाओं को इतना जाग्रत कर दिया था कि 1930-31 के आन्दोलन में 17000 महिलाएँ जेलों में थीं।

1932 में तामलुक में बंगाल गवर्नर के खुले दरबार में भाषण के समय 'गवर्नर वापस जाओ' नारा बुलन्द करके मातंगिनी हाज़रा ने सन्नाटा पैदा कर दिया और छः माह की जेल काटी। 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हुआ। मिदनापुर 'खतरनाक क्षेत्र' घोषित कर दिया गया। 29 सितम्बर, 1942 का दिन था। हाज़रा 5000 स्त्री-पुरुषों का जुलूस लेकर 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' व 'वन्देमातरम्' नारों के साथ बढ़ती हुई तामलुक दीवानी तक पहुँच गई। ब्रिटिश अधिकारियों ने लाठियाँ बरसानी आरम्भ कर दीं। लेकिन यह साहसी महिला जुलूस के लोगों को प्रेरित करती हुई निरंतर आगे ही बढ़ती रही। आखिर पुलिस जुलूस को एक स्थान पर रोकने में कायमाब रही। यहाँ पर इनके जोशीले भाषण से पुलिस आतंकित हो उठी और तैश में आकर गोलियों की बौछार कर दी। दोनों हाथों से झंडा छाती से चिपकाये हाज़रा आगे बढ़ती रही। तभी एक गोली उनके मस्तक पर लगी और वहीं बलिदान हो गईं। लेकिन गिरने से पूर्व झंडा किसी अन्य के हाथ में थमा दिया, उसे गिरने नहीं दिया।

त्रिलोकसिंह पांगती

त्रिलोकसिंह पांगती का जन्म एक नवम्बर उन्नीस सौ बीस में दरकोट मल्ला जौहर, पिथौरागढ़ (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। सन् 1942 में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान सारे देश में क्रांति की लहर दौड़ रही थी। त्रिलोकसिंह पांगती चनौदा (अल्मोड़ा, उ.प्र.) गाँधी आश्रम पर कार्यकर्त्ता के रूप में तैनात थे। इसी आन्दोलन से प्रेरित होकर पांगती ने अपने कार्यकर्ताओं एवं ग्रामीणों को एकत्र कर गाँधी आश्रम पर एक समारोह आयोजित किया। आश्रम पर तिरंगा झंडा फहरा दिया गया। 'भारत माता की जय' व 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' के नारों से आकाश गूँज उठा। नारों की आवाज सुनकर फौजियों का एक दस्ता वहाँ आ पहुँचा। तब तक ग्रामीण लोग वापस जा चुके थे। पांगती के कुछ साथी मौजूद थे। कमाण्डर ने तिरंगा झंडा उतारने का आदेश दिया। पांगती ने उतारने से साफ इन्कार कर दिया। कमाण्डर के आदेश से कुछ फौजी झंडा उतारने स्वयं जाने लगे। लेकिन पांगती ने झण्डा नहीं उतारने दिया। कमाण्डर के आदेश पर सैनिकों ने पांगती को घसीट कर पीटना आरंभ कर दिया। उसे इतना मारा कि वह वहीं बेहोश हो गया। सैनिक उसे जीप में डाल कर ले गये और अल्मोड़ा जेल में बंद कर दिया। पांगती को गहरी चोटें लगी थीं। थाने की पुलिस ने देखा कि वह बच नहीं सकता। अतः 10 अक्तूबर, 1942 को उसे जेल से रिहा कर दिया। गाँव वालों ने अपने लाडले को अस्पताल में दाखिल कराया। लेकिन उसने कुछ ही दिनों बाद 26 दिसम्बर को अस्पताल में दम तोड़ दिया। उस ने कहा था - ''मेरा जीवन राष्ट्रीय झण्डे से ज्यादा मूल्यवान थोड़े ही है। मेरा जीवन सफल हो गया।''

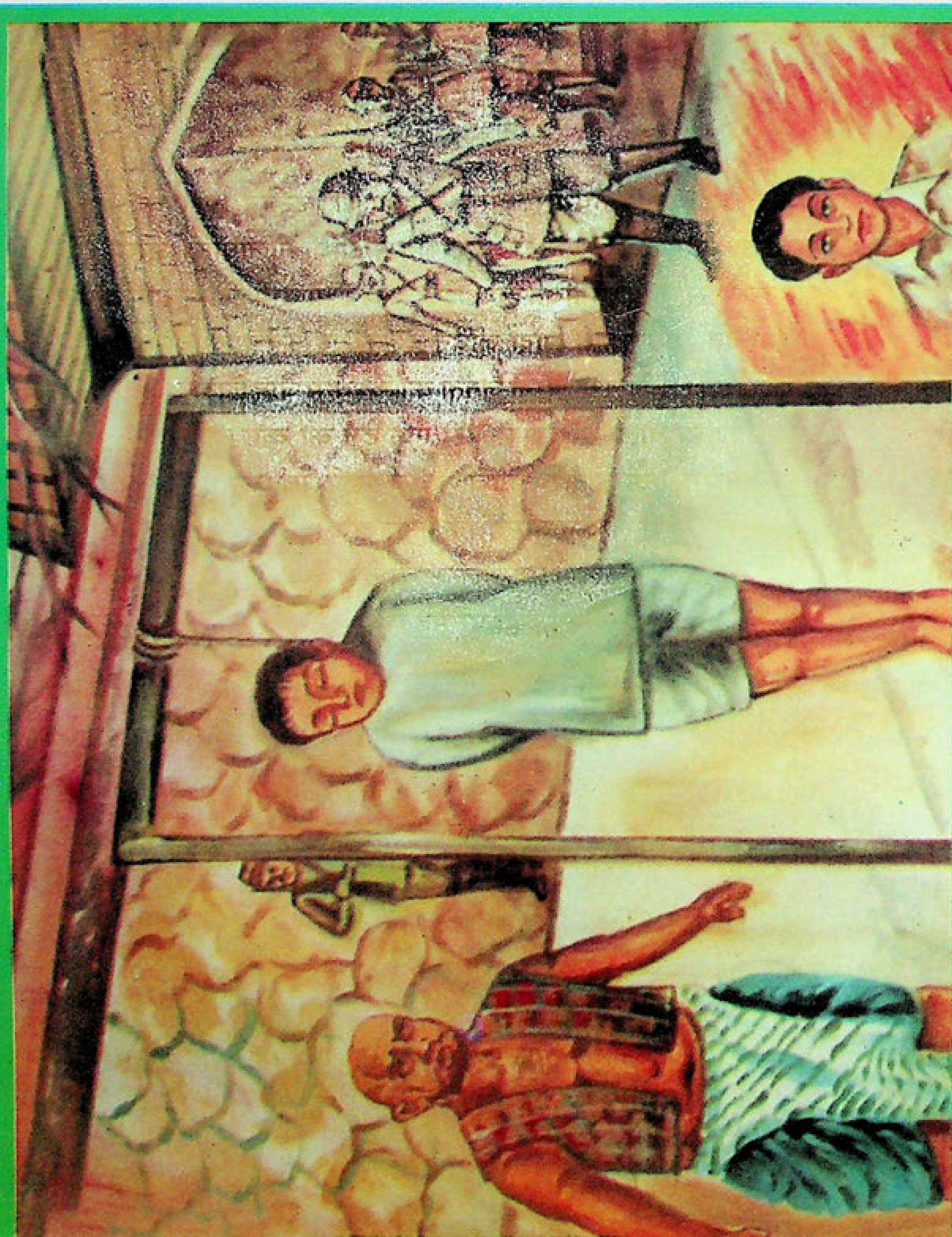

कुशल कोवँर

कुशल कोवँर का जन्म सरुपथार, असम में हुआ था। उन्होंने 1930 के असहयोग आंदोलन में सक्रिय भाग लिया। 1934 में जब महात्मा गाँधी गोलाघाट (असम) पधारे तो वे उनकी दिनचर्या से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने स्वयं भी वैसी ही दिनचर्या बना ली। देश के लिए समर्पित भावना एवं सादा जीवन के कारण उन्हें सरूपथार काँग्रेस का अध्यक्ष बना दिया गया। कुशल कोवँर ने जनता का विश्वास जीत लिया था।

इसी समय फौज व गोला बारूद से भरी एक ट्रेन को कुछ क्रांतिवीरों ने पलट दिया। उस में लगभग एक हजार अंग्रेजी फौज मारी गई। सरकार ने अंधाधुंध गिरफ्तारियाँ आरम्भ कर दीं लेकिन वास्तविक क्रांतिवीर नहीं पकड़े जा सके। सरकार बेगुनाह लोगों को जेल में ठूँसने लगी। कुशल कोवँर ने इसका विरोध किया तो सरकार ने रेलगाड़ी को पलटने का सारा दोष इन्हीं पर मढ़ दिया। नकली गवाह पेश करके इन्हें ही असली अपराधी घोषित कर कुशल कोवँर को फाँसी का हुक्म सुना दिया। अन्य पकड़े हुए सभी अभियुक्त छोड़ दिये गये। दिनांक 14 जून, 1943 को उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया। उनकी फाँसी के बाद जिन क्रांतिवीरों ने रेल गाड़ी पलटी थी, वे भी पकड़े गये जिन्हें स्वतंत्रता के बाद ही मुक्त किया गया।

कु० जयवती संघवी

कु० जयवती संघवी का जन्म सन् 1924 में अहमदाबाद (गुजरात) में हुआ था। जयवती ने छात्र जीवन से ही भारत की स्वतंत्रता हेतु विविध आन्दोलनों में भाग लेना आरम्भ कर दिया। अगस्त, 1942 में 'अंग्रेजो! भारत छोड़ो' आन्दोलन की घोषणा होते ही सारे नेता गिरफ्तार कर लिये गये। इस समय स्कूल और कालेजों के छात्रों ने इस आन्दोलन को और अधिक तीव्रता प्रदान की। जयवती संघवी ने स्कूल व कालेजों के बन्द होने के बाद भी छात्रों को एक जुट किये रखा। उन्होंने जगह-जगह धरने-प्रदर्शन के आयोजनों से छात्रों में चेतना जाग्रत की।

6 अप्रैल, 1943 को विभिन्न स्कूल एवं कालेजों के छात्रों की एक विशाल सभा का आयोजन किया गया। उस जुलूस में संघवी ने छात्रों को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आजादी मिलने तक निरंतर संघर्ष जारी रखने हेतु ललकारा। जलसे के बाद तिरंगा ध्वज हाथ में थामे एक जुलूस का नेतृत्व करती हुई वे निकल पड़ीं। जुलूस को रास्ते में जनता का पूरा समर्थन मिला। अन्य लोग भी इसमें आ मिले। पुलिस ने मार्ग में जुलूस को रोकना चाहा। लेकिन पुलिस बल उनके कदम नहीं रोक सका। पुलिस ने अश्रुगैस के गोले छोड़े। जयवती संघवी गैस के धुएँ में फँस गई और दम घुटने से उनका वहीं निधन हो गया।

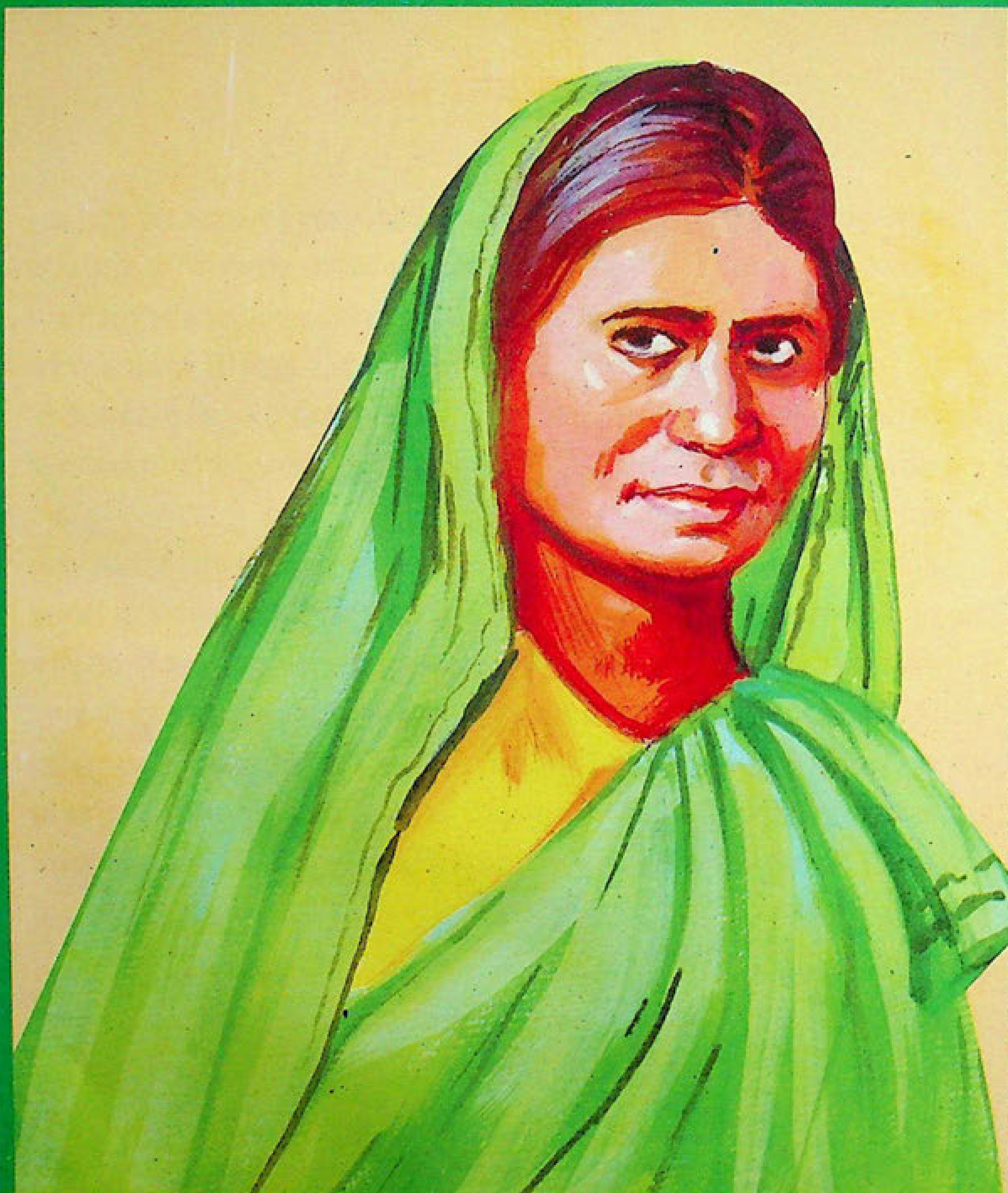

ज्योतिर्मयी गांगुली

ज्योतिर्मयी गांगुली का जन्म जनवरी 1889 में कोलकाता में श्री द्वारकानाथ की पुत्री के रूप में हुआ था। वह प्रखर देशभक्त एवं राष्ट्र के लिए समर्पित महिला थीं। उन्होंने सन 1921 के असहयोग आन्दोलन, नमक सत्याग्रह, 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लिया। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा 1942 की जन-क्रांति में अनेकों बार जेल की सजा काटी। पुलिस को कई बार उनसे फटकार व झिड़कियाँ सुननी पड़ीं। ज्योतिर्मयी ने देश की आजादी के संघर्ष में अपनी सरकारी नौकरी छोड़ दी। विवाह नहीं किया। सीमा पर आजाद हिन्द फौज के छब्बीस हजार सैनिकों के बलिदान ने ज्योतिर्मयी को बहुत आहत किया लेकिन वे चुप नहीं बैठीं। आजाद हिन्द फौज के गिरफ्तार सैनिकों पर लाल किले में मुकदमा चलाया गया। उस मुकदमे का विरोध करते हुए उन्होंने कोलकाता में छात्रों का नेतृत्व किया। एस्प्लेनेड रोड पर छात्रों के जुलूस को रोक लिया गया। गोली चलने से रामेश्वर बनर्जी का निधन हो गया। छात्रों का जमघट रामेश्वर बनर्जी की शवयात्रा निकालने हेतु जिद पकड़ गया। रात्रि के दो बज चुके थे। छात्रों को समझाने हेतु श्यामा प्रसाद मुखर्जी आये। गवर्नर को स्वयं आना पड़ा। लेकिन छात्र अपनी बात पर अड़े रहे। पुनः गोली चली। एक-एक कर 36 छात्रों ने शहादत प्राप्त की। अन्त में सभी की शव यात्रा एक साथ निकालने की पुलिस को आज्ञा देनी पड़ी। इसी शवयात्रा में जाते हुए पुलिस दल ने ज्योतिर्मयी गांगुली को अपने रास्ते से हटाने की सोची। एक मिलिट्री ट्रक ने ज्योतिर्मयी गांगुली को अपनी चपेट में ले लिया। ज्योतिर्मयी गांगुली का शरीर बुरी तरह से कुचला गया। इस वीरांगना ने वहीं प्राण त्याग दिये।

''सरजमीं इंग्लैण्ड की हिल जायेगी दो रोज में
गर दिखायेगी कभी तासीर वन्देमातरम्।
सन्तरी भी मुज्तरिब थे जबकि 'विस्मिल' झूम कर
बोलती थी जेल में जंजीर - वन्देमातरम्!'

रामप्रसाद 'बिस्मिल'

बहन सत्यवती

बहन सत्यवती का जन्म 26 जनवरी, 1906 को पंजाब में जालंधर जिले के तलवन गांव में हुआ था। वे स्वामी श्रृद्धानन्द की धेवती (वेदवती की पुत्री) थीं। उनका कार्य क्षेत्र दिल्ली रहा। सत्यवती ने 1936-37 में श्रमिक आन्दोलन को नई दिशा दी। उनके जोशीले भाषणों से ब्रिटिश सरकार घबरा उठी। अत: उनका जहाँ भी भाषण होता उनके वहाँ पहुँचने पर प्रतिबंध लगा दिया जाता। लेकिन फिर भी वे पुलिस को चकमा देकर वहाँ पहुँच जाती थीं। नमक सत्याग्रह के समय दिल्ली के कश्मीरी गेट रजिस्ट्रार कार्यालय पर उन्होंने महिलाओं के जुलूस का नेतृत्व किया। सत्यवती को गिरफ्तार कर लिया गया। सरकार ने उन्हें रिहा करने के लिए उनसे अच्छे आचरण का आश्वासन एवं 5000 रुपये का मुचलका माँगा। सत्यवती ने ऐसा करने से मना कर दिया और छ: महीने के कारावास की सजा काटी। दिल्ली के छात्रों में इनकी यशधारा सर्वोच्च शिखर पर थी। इनको तपेदिक की बीमारी ने आ घेरा। लगातार जेल यात्राओं के कारण उनकी 10 वर्षीय पुत्री स्नेह-दुलार से वंचित रह कर संसार से चल बसी। सरकार ने पुत्री के अंतिम संस्कार में शामिल होने के लिए भी उन्हें जेल से रिहा नहीं किया। 1942 की अगस्त क्रांति में उन्होंने बीमारी की अवस्था में भी चाँदनी चौक के मोहल्लों में घूम-घूम कर महिलाओं को घर से बाहर निकाला और उन्हें आजादी के संघर्ष में कूदने के लिए ललकारा। अम्बाला जेल में उनकी बीमारी असाध्य हो गई। अत: उन्हें टी.वी. अस्पताल में दाखिल कर दिया गया। उनकी अंतिम इच्छा थी कि देश के शहीद बच्चों की याद में उनके जीवन चरित्र की एक पुस्तक तैयार हो। इस इच्छा को सन् 2000 में इस पुस्तक के लेखक ने 'आजादी के अंकुर' लिख कर पूरा किया। आखिर दिल्ली की वह दिव्य ज्योति 21 अक्तूबर, 1945 को अखंड ज्योति में विलीन हो गई। नज़रबंदी अवस्था में दिल्ली के एक टी.बी. अस्पताल में उनका निधन हो गया।

सागरमल गोपा

राजस्थान के महान् सपूत सागर मल गोपा का जन्म 1890 में जैसलमेर में हुआ था। वे अहिंसक क्रांति के अग्निपुंज क्रांतिकारी थे। 1921 में असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर उन्होंने अपना समस्त जीवन देश की आजादी की खातिर समर्पित कर दिया। जैसलमेर राज्य में राज्य की निरंकुश सरकार के विरुद्ध किसानों में जागृति लाने का बीड़ा उठाया। इससे जैसलमेर के राजा का कुपित होना स्वाभाविक था। महाराष्ट्र पहुँच कर नागपुर में क्रांति चेतना को अधिक उद्दीप्त किया। आर्य समाज द्वारा संचालित हैदराबाद आन्दोलन में शामिल होने के लिए जन-जागृति हेतु कार्य किया। जैसलमेर में निरंकुश शासन के विरुद्ध सागर मल गोपा ने खुली चुनौती दे दी। अत: राज्य पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उनके विरुद्ध कोई वारंट नहीं था। अत: उन्होंने गिरफ्तारी का विरोध किया। लेकिन पुलिस उन्हें जबरदस्ती सड़क पर घसीटती हुई पुलिस स्टेशन ले गई। मुकदमे में एकतरफा फैसला कर उन्हें आठ वर्ष का कारावास दिया गया। जेल में उन्हें कठोर यातनाएँ दी गईं। उन्हीं के कारण 3 अप्रैल, 1946 को जेल में ही उन्होंने अंतिम साँस ली। उनके बलिदान ने स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में एक नया पृष्ठ जोड़ दिया।

सागरमल गोपा ने अपनी जेल डायरी में अपने ऊपर अमानुषिक अत्याचारों का रोमांचकारी वर्णन इस प्रकार किया है– 'सन् 1941 के 24 जून को जोधपुर के श्री अचलेश्वर को पत्र लिखने के अपराध में मेरी गुदा में मिर्च डाली गई। माफीनामा लिखने से इनकार करने पर मेरी नाक में मिर्च ठूँसी गई और बीरबल नामक जेल कर्मचारी द्वारा मुझे बीसों बार पीटा गया।' 10 जून, 1942 को श्री गोपा ने जेल से एक पत्र लिखा 'आज मुझे 8 वर्ष की सजा सुना दी गई और वह 10 जून, 1949 को समाप्त होगी। सजा पूरी होने तक मैं जीवित नहीं रहूँगा। क्योंकि पुलिस अभी तक मुझे भारी यातनाएँ दे रही है। कब मेरा रामनाम सत्य हो जाय, मैं कह नहीं सकता।'

क्रांति की मशालें

क्रांतिवीरों का मत था कि अहिंसात्मक तरीके से ब्रिटिश सरकार का हृदय-परिवर्तन संभव नहीं है। उनका विचार था कि केवल शक्ति के बल पर ही स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है। उनकी सोच थी कि आजादी बलिदान माँगती है। कृष्ण की गीता का 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' वाक्य ही इन क्रांतिवीरों का आदर्श था। 'आततायी शासन व्यवस्था को बदलने हेतु यदि शक्ति का भी प्रयोग करना पड़े तो किया जाय, चाहे उसके लिये कितना भी बलिदान क्यों न देना पड़े।' यह सोच कर उन्होंने क्रांति की मशाल हाथ में थाम ली और ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती दे दी। ये क्रांतिवीर ऐसे विप्लवी थे जिनमें से अनेक तो ब्रिटिश सेना व पुलिस से आमने-सामने टक्कर लेते हुए वीरगति को प्राप्त हुए और अनेकों ने फाँसी का फंदा चूम कर शहादत प्राप्त की। बहुत ऐसे भी थे जो जेलों में ही मर-खप गये। उनकी जमीन-जायदाद ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर ली। उनका परिवार दर-दर की ठोकरें खाता रहा।

शंभुनाथ फुंगलो

बाघा जतिन

राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी

सरदार किशनसिंह

बिरसा मुंडा

केसरीसिंह बारहट

भगवतीचरण वोहरा

विशम्भर दयाल

टिकेन्द्रजीत सिंह

प्रतापसिंह बारहट

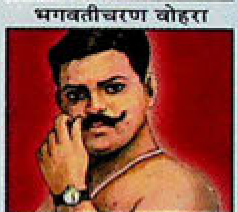
चन्द्रशेखर आजाद

मास्टर दा सूर्य सेन

मास्टर अमीरचन्द

गेंदालाल दीक्षित

सुखदेव

प्रीतिलता वद्देदार

क्षेमचन्द्र सुमन

रामप्रसाद बिस्मिल

राजगुरु

बैकुंठलाल शुक्ल

अवधबिहारी

ठाकुर रोशनसिंह

भगतसिंह

शचीन्द्रनाथ सान्याल

भाई बालमुकुन्द

अशफाकउल्ला खाँ

[redacted]

ऊधमसिंह

शंभुधन फुंगलो

शंभुधन फुंगलो का जन्म 1850 में लंकर माइवांग (असम) में देपेन्द्राओ फुंगलो के पुत्र के रूप में हुआ था। असम नागा हिल्स के क्षेत्र में अंग्रेजों ने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति से डिमासा और कछारी राज्यों को छिन्न-भिन्न कर दिया। अंग्रेजों की इस नीति ने शंभुधन फुंगलो को अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष छेड़ने को बाध्य कर दिया। वह लम्बे कान तथा काली आँखों वाला लम्बे कद का पाठा जवान था। शिव भक्त भी था। उसने अनेक क्षेत्रों का भ्रमण करके 20 - 20 युवाओं को संगठनों में विभक्त कर दिया। माई बांग में रणचण्डी मंदिर के निकट क्रांतिकारी गतिविधियों का प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित कर दिया। 1942 के 'अंग्रेजो! भारत छोड़ो' आन्दोलन से 60 वर्ष पूर्व ही 1882 में शंभुधन ने घोषणा कर दी- ''अरे ओ सफेद चमड़ी वाले बुलबुलो... हमारे देश की पवित्र मिट्टी का अविलम्ब परित्याग कर दो:. . . . '' अंग्रेजों को गुप्तचरों से शंभुधन की गतिविधियों का पता चल गया। उसे गिरफ्तार करने हेतु छः सिपाही भेजे गये। लेकिन उसके नाम से ही शत्रुओं में इतनी घबराहट थी कि सिपाही उसे गिरफ्तार किये बिना मार्ग से ही वापस लौट गये। इसका परिणाम यह हुआ कि शंभुधन ने अपनी किलेबंदी और अधिक मजबूत कर ली। मेजर बोयाड ने उसके शिविरों पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में मेजर बोयाड मारा गया। अंग्रेज सेना ने भाग कर जान बचाई। शंभुधन ने बराक नदी के किनारे सिद्धेश्वर मंदिर, हारंगाजाओ की शिव बाडी, काराकारी की शिव बाड़ी, हाइला कांदी का देवी मंदिर आदि मंदिरों में अपने युद्ध शिविर स्थापित किये हुए थे। एक बार ब्रिटिश सैनिकों ने इग्रालिंग में विश्राम करते हुए उसे घेर लिया। पारम्परिक स्रोतों से उपलब्ध जानकारी के अनुसार 13 जनवरी, 1883 को वीर शंभुधन फुंगलो ब्रिटिश सैनिकों से जूझते हुए वीरगति को प्राप्त हुए।

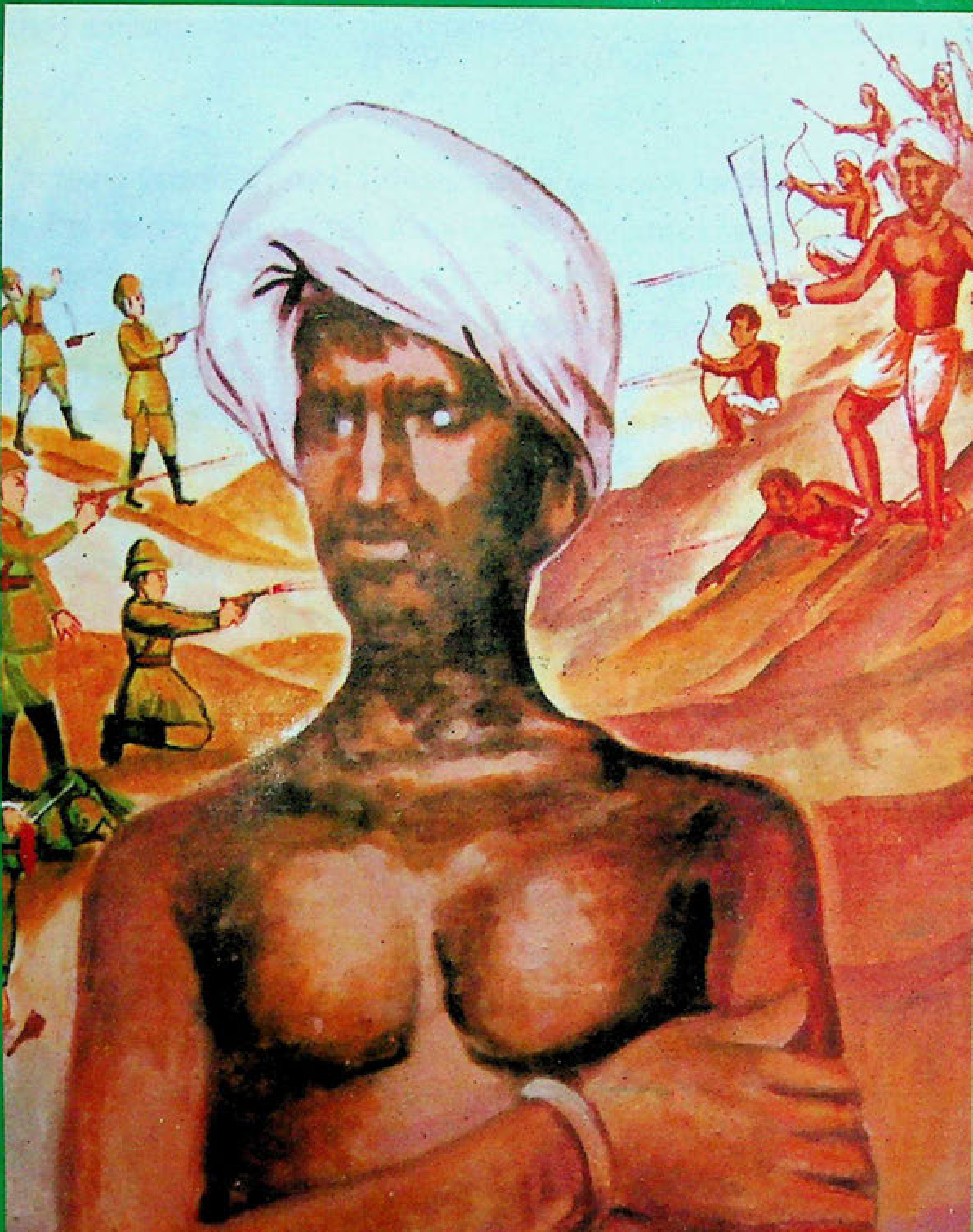

बिरसा मुण्डा

बिरसा मुण्डा का जन्म 15 नवम्बर, 1875 को राँची के उपनगर बम्बा में हुआ था। बिरसा मुंडा झारखंड के छोटा नागपुर आदिवासी क्षेत्र में तमाड़ परगने का गेरेडा (गड़ेरिया) अलीहातु गाँव का निवासी था। बिरसा ने आदिवासियों की जमीनें छीनने, लोगों को ईसाई बनाने, भोली-भाली युवतियों को महाजनों के दलालों द्वारा उठा कर ले जाने जैसे कुकृत्यों को अपनी आँखों से देखा था। इस अनाचार से उसकी आत्मा चीत्कार कर उठी। उसने उस आततायी ब्रिटिश शासन से मुक्ति पाने हेतु संघर्ष की ठान ली। उसने उस क्षेत्र के विविध क्षेत्रों के समर्पित कार्यकर्त्ताओं से सम्पर्क किया। उन्हें अपने पूर्वजों की बहादुरी और बलिदान की याद दिलाते हुए अंग्रेजों के विरुद्ध शस्त्र उठाने के लिए तैयार कर लिया। बिरसा मुण्डा ने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध 1900 में घोषणा कर दी- ''हम ब्रिटिश शासन तंत्र के विरुद्ध घोषणा करते हैं कि भविष्य में हम उनके किसी भी कानून को नहीं मानेंगे। ओ गोरी चमड़ी वाले विलायती बंदरो! तुम्हारा हमारे देश में क्या काम? छोटा नागपुर सदियों से हमारा है। तुम इसे आजाद छोड़ कर अपने देश लौट जाओ।''

यह घोषणा पत्र जब उपायुक्त के पास पहुँचा तो उन्होंने भारी मात्रा में गोला बारूद एवं शस्त्रास्त्र से सुसज्जित सेना बिरसा को कुचलने हेतु रवाना कर दी। बिरसा की सेना ने अपने तीर कमान, भाला-बल्लम आदि से डट कर मुकाबला किया। इस रक्तिम संघर्ष में 400 मुंडाओं ने वीरगति प्राप्त की, 300 को गिरफ्तार कर लिया गया। उस समय तो बिरसा बच निकला लेकिन बाद में गिरफ्तार कर लिया गया। जेल में अधिकारियों ने अमानवीय यातनाएँ देकर 9 जून, 1900 को उसकी हत्या कर दी। सरकारी दस्तावेज़ों में दर्शाया गया कि उसे हैजा हो गया था और खून की उल्टी हुई थी।

युवराज टिकेन्द्रजीत सिंह

जनरल थंगल एवं युवराज टिकेन्द्रजीत सिंह

युवराज टिकेन्द्रजीत सिंह का जन्म 25 दिसम्बर, 1858 को हुआ था। उन्होंने अनेक युद्धों में भाग लिया था एवं अपने शौर्य से अपूर्व सफलता प्राप्त की थी। उनकी यशधारा एवं कीर्ति का अंग्रेज भी लोहा मानते थे। इसी कारण मणिपुर के शासक कुलचन्द्र ने टिकेन्द्रजीत सिंह को मणिपुर का युवराज एवं सेनानायक घोषित किया। जनरल थंगल एक वृध्द एवं मणिपुर के पूर्व सम्मानित सेनानायक थे। अब भी वह मणिपुर शासन में टिकेन्द्रजीत सिंह के सहयोगी एवं प्रेरक की भूमिका निभा रहे थे।

जनरल थंगल की प्रेरणा से टिकेन्द्रजीत सिंह ने आदिवासी क्षेत्रों में अंग्रेजों के मनमाने अत्याचारों का विरोध किया। उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांति का उद्घोष कर दिया। अंग्रेजों ने टिकेन्द्रजीत सिंह को चालाकी से संधि के बहाने गिरफ्तार करने का प्रयत्न किया। लेकिन सफलता हाथ न लगी। उलटा अंग्रेजों को अपने पाँच उच्च अधिकारियों की जान गँवानी पड़ी। इस घटना से अंग्रेज अधिकारी तिलमिला उठे। उन्होंने युवराज एवं जनरल थंगल को पकड़वाने हेतु भारी इनाम की घोषणा करा दी। इनाम के लालच में कुछ गद्दारों ने इन क्रांतिवीरों की युद्ध नीति एवं गुप्त ठिकानों की महत्वपूर्ण सूचनाएँ अंग्रेजों के पास पहुँचा दीं। इन्हीं का लाभ उठाकर अंग्रेज साम्राज्य की विशाल सेना ने इनके ठिकानों पर आक्रमण कर दिया। दोनों ओर से भारी युद्ध हुआ। इसे इतिहास में 'एंग्लो मणिपुर वार 1881' नाम से जाना जाता है। अंत में वीर टिकेन्द्रजीत सिंह एवं जनरल थंगल को गिरफ्तार कर 13 अगस्त, 1891 को फाँसी पर लटका दिया गया। टिकेन्द्रजीत सिंह की विधवा रानी 1930 के बाद तक वृंदावन में अपनी नेत्रों की ज्योति खोकर आर्थिक विपन्नता एवं असहाय अवस्था में जीवन काटती रहीं। वहीं उन्होंने अंतिम श्वास ली।

मास्टर अमीरचन्द

मास्टर अमीरचन्द का जन्म 1869 में दिल्ली में लाला हुकमचन्द अग्रवाल के पुत्र के रूप में हुआ था। वे दिल्ली के सेंट स्टीफन कॉलेज में अध्यापक थे। उनके हृदय में देश को स्वतंत्र कराने की प्रबल इच्छा थी। अत: उन्होंने नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया। मास्टर जी ने 'आकाश' नाम का पत्र निकाला। इस पत्र का हर शब्द अंग्रेजी शासन के विरुद्ध चिंगारी उगलता था। वह इतने साहसी थे कि अपने उग्र लेखों की प्रतियाँ स्वयं पुलिस स्टेशनों पर भिजवा देते थे। 23 दिसंबर, 1912 को चाँदनी चौक दिल्ली में वायसराय लार्ड हार्डिंगस की शोभा यात्रा पर इनके दल ने बम विस्फोट कर दिया। बम विस्फोट के बाद मास्टर अमीरचन्द ने 'लिबर्टी' नाम का इश्तहार निकाला। उसमें उन्होंने लिखा ''हम भारतीय बहुत बड़ी संख्या में हैं। इनके (अंग्रेजों के) आगे गिड़गिड़ाने की बजाय हम इनकी बंदूकें और तोपखाने सब छीन सकते हैं।...... केवल क्रांन्ति ही एकमात्र उपाय है भारत को आजाद कराने का।....''

19 फरवरी, 1914 को मास्टर जी को उनके घर से गिरफ्तार कर लिया गया। अदालत में जब उन्हें फाँसी की सजा सुनाई गई तो वह बहुत देर तक खिलखिला कर हँसते रहे। लोगों के पूछने पर वह बोले, ''हम खुश हैं कि हम को वतन की खिदमत के लिए सबसे बड़ा पुरस्कार मिला है।''

8 मई, 1915 को मास्टर अमीरचन्द ने दिल्ली गेट के पास जेल में (जहाँ आज मौलाना आजाद मैडिकल कॉलेज है) फाँसी का फंदा चूम कर शहादत प्राप्त की।

चाँदनी चौक दिल्ली में विख्यात 'नई सड़क' का नाम 'मास्टर अमीरचन्द मार्ग' रख कर दिल्ली की जनता ने उनके प्रति अपना श्रद्धा-भाव प्रकट किया है।

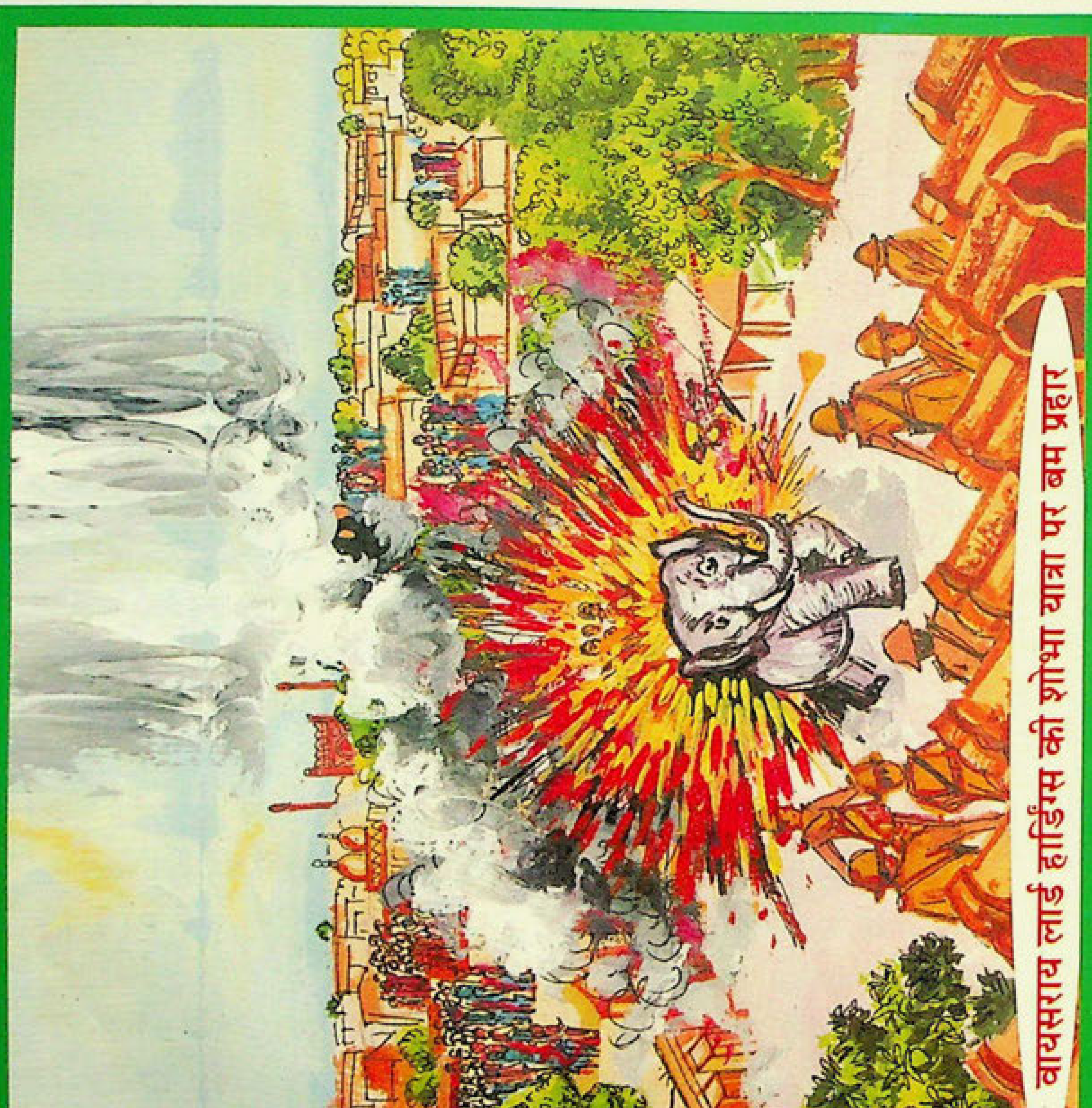
वायसराय लार्ड हार्डिंग्स की शोभा यात्रा पर बम प्रहार

बसन्तकुमार विश्वास

बसंतकुमार विश्वास का जन्म 1882 परगच्छा, नदिया (प. बंगाल) में हुआ था। 'दिल्ली बम काण्ड' के सूत्रधार रासबिहारी बोस देहरादून के फोरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट में प्रधान लिपिक थे। उस समय बसन्तकुमार विश्वास उनका निजी सेवक थे। रास बिहारी बोस ने उन्हें बाद में लाहौर भेज दिया। बंगाल क्रांतिकारी गतिविधियों का केन्द्र बना हुआ था। ब्रिटिश अधिकारियों की सुरक्षा खतरे में पड़ गई थी। अंग्रेज दिल्ली को अपने लिए अधिक सुरक्षित समझते थे। अतः भारत की राजधानी कोलकाता से बदल कर दिल्ली में स्थापित करने की घोषणा कर दी।

भारत के क्रांतिवीर अंग्रेजों को यह बताना चाहते थे कि कोलकाता ही नहीं भारत के किसी भी हिस्से में अंग्रेज सुरक्षित नहीं हैं। क्रांतिवीरों ने 23 दिसम्बर, 1912 को दिल्ली के चाँदनी चौक में हिन्दुस्तान के वायसराय लार्ड हार्डिंगस की प्रथम शोभा यात्रा पर बम प्रहार की योजना बना ली। अवधबिहारी, बालमुकुन्द, बसन्तकुमार विश्वास व मास्टर अमीरचन्द चारों को बम प्रहार का दायित्व सौंपा गया।

दिल्ली में वायसराय की शोभा यात्रा की सुरक्षा हेतु भारत वर्ष से चुने हुए पुलिस के कई हजार जवानों की गारद सहित ग्यारहवीं लान्सर्स की पूरी कम्पनी तैनात थी। इस अभेद्य सुरक्षा किले को भेदते हुए प्रथम तीन क्रांतिवीर बुर्का पहन कर चाँदनी चौक दिल्ली की पंजाब नैशनल बैंक की इमारत पर जा चढ़े। दूर से मास्टर अमीरचन्द ने संकेत दिया। बसन्त कुमार विश्वास ने बुर्के में से अपना हाथ निकाला एवं वायसराय पर फूलों में लपेटा हुआ बम फेंक दिया। इस बम प्रहार से वायसराय लार्ड हार्डिंग्स की गर्दन के पास चार इंच गहरा घाव हो गया। वह बच तो गया लेकिन उसकी श्रवण शक्ति क्षीण हो गई। उस की पत्नी की सदमे के कारण कुछ दिनों बाद ही मृत्यु हो गई। 11 मई, 1915 को बसंतकुमार विश्वास अम्बाला जेल में फाँसी का फंदा चूम कर शहीद हुए।

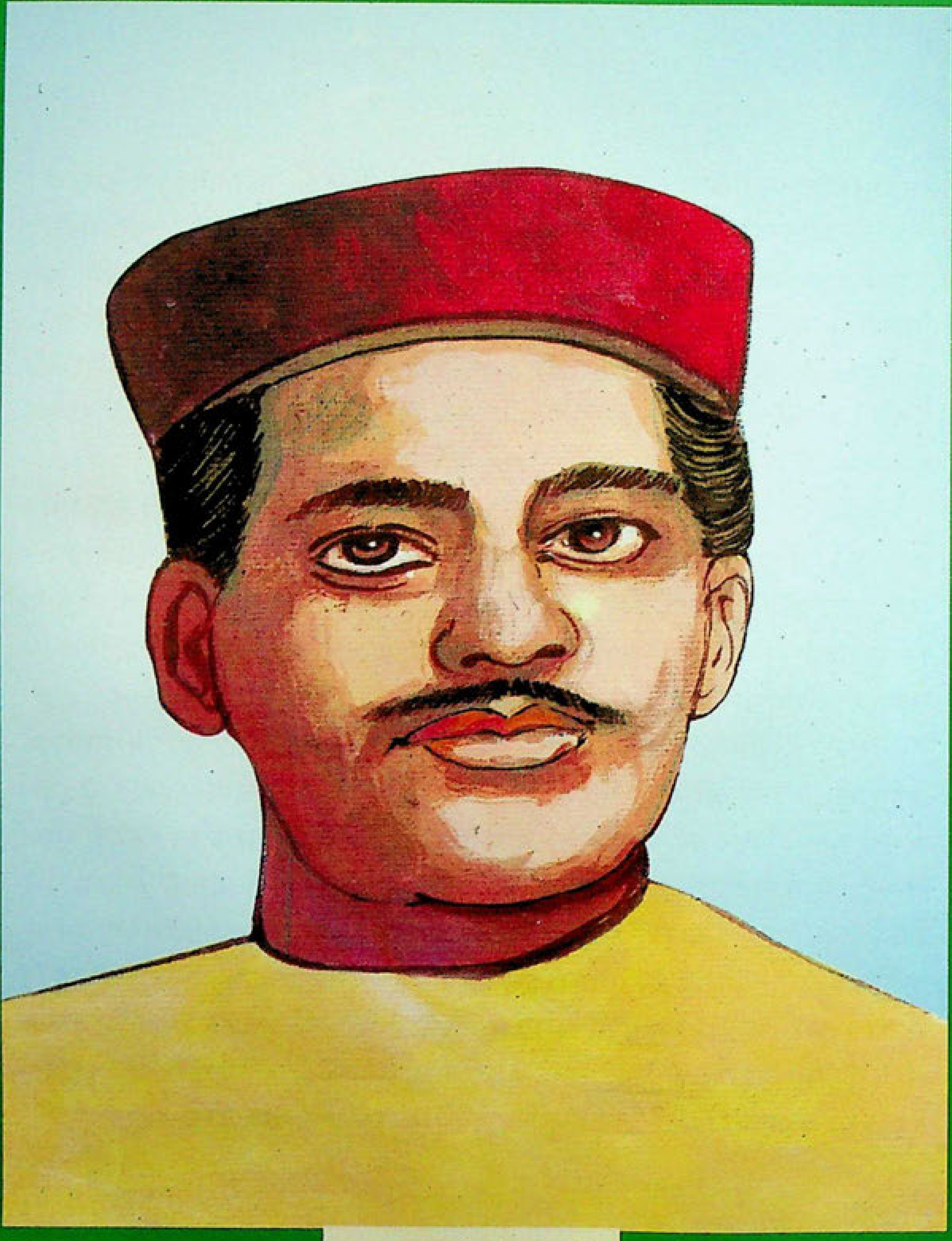

अवधबिहारी

अवधबिहारी का जन्म 14 नवम्बर, 1889 में दिल्ली में हुआ था। उनके पिता श्री गोविंदलाल एक सामान्य शिक्षक थे। दिल्ली के प्रसिद्ध क्रांतिकारी मास्टर अमीरचन्द इनके गुरु थे। मास्टर अमीरचन्द ने भारत माता को दासता के चंगुल से मुक्त कराने की भावना उनकी रग-रग में प्रवाहित कर दी। अवधबिहारी ने लाहौर के टीचर्स ट्रेनिंग कालेज से बी.टी. की परीक्षा में सर्वाधिक अंक लेकर ''स्वर्ण-पदक'' सम्मान प्राप्त किया। 23 दिसम्बर, 1912 को चाँदनी चौक दिल्ली में हिन्दुस्तान के वायसराय की शोभा-यात्रा पर बम फेंकने वालों के दल में वह भी शामिल थे। अबधबिहारी, बसंतकुमार विश्वास व बालमुकुन्द तीनों क्रांतिवीरों ने बुर्के में मुस्लिम महिला का वेश धारण किया। चाँदनी चौक के पंजाब नेशनल बैंक की छत पर अन्य मुस्लिम महिलाओं में मिल कर बैठ गये। तीनों के हाथों में फूल मालाएँ थीं। बसंतकुमार के हाथ में फूल माला के नीचे बम छिपा था। रासबिहारी बोस व मास्टर अमीरचन्द आदि क्रांतिवीर भी उचित निर्देश एवं निगरानी हेतु पूर्व निश्चित स्थानों पर छिपे थे। बम धमाका करते ही उससे उठने वाले धुएँ के बवंडर व कोलाहल का लाभ उठाते हुए सभी क्रांतिवीर बच निकले। दिल्ली बम काण्ड के बाद अवधबिहारी पुनः लाहौर आ गये। बंगाल से लाहौर स्थानान्तरित अंग्रेज अधिकारी मिस्टर गोर्डन बहुत क्रूर और अत्याचारी था। अवधबिहारी ने 17 मई, 1913 को उसकी हत्या का असफल प्रयास किया। 19 फरवरी, 1914 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। दिनांक 8 मई, 1915 को अवधबिहारी ने दिल्ली के कारागार (जहाँ आज मौलाना आजाद मेडिकल कॉलेज है) में भाई बालमुकन्द एवं अपने गुरु मास्टर अमीरचन्द के साथ फाँसी पर झूल कर देश पर बलिदान होने का गौरव प्राप्त किया।

भाई बालमुकुन्द

भाई बालमुकुन्द का जन्म सन् 1885 में अमर बलिदानी भाई मतिदास के वंश में पंजाब के चकवाल गाँव में हुआ था। देश और धर्म पर बलिदान होने की भावना भाई बालमुकुन्द को अपने पूर्वजों भाई दयालदास, भाई सतीदास एवं भाई मतीदास से विरासत में मिली थी। भाई बाल मुकुन्द ने लाहौर से शिक्षा-स्नातक की परीक्षा में उच्च स्थान प्राप्त किया। वह लाहौर से अवधबिहारी के साथ ही कालेज में शिक्षक नियुक्त हो गये। इनके बड़े भाई, भाई परमानन्द ने लाहौर में पहले ही युवकों में भारतीय स्वतंत्रता का मंत्र फूँकने का अभियान छेड़ा हुआ था। दिनांक 23 दिसंबर, 1912 को दिल्ली में जिस इमारत (धुलिया कटरा, चाँदनी चौक के पंजाब नेशनल बैंक) से बसंतकुमार विश्वास ने वायसराय लार्डहार्डिंग पर बम फेंका था वहाँ जो अन्य दो व्यक्ति बुर्का पहने स्त्री वेष में बसंतकुमार के साथ थे वे भाई बालमुकुन्द एवं अवधबिहारी ही थे। फरवरी, 1914 में इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। दिनांक 8 मई, 1915 को मास्टर अमीर चन्द, अवधबिहारी के साथ भाई बालमुकुन्द को भी दिल्ली की तत्कालीन जेल (वर्तमान, मौलाना आजाद मेडिकल कालेज) में फाँसी पर लटका दिया गया।

भाई बालमुकुन्द की फाँसी के बाद उनकी धर्म पत्नी रामरक्खी ने एकान्त वास लेकर खाना-पीना छोड़ दिया एवं ध्यान में लीन होकर होठों से केवल 'वन्देमातरम्' का जाप करते हुए अटठ्ाईस दिन बाद प्राण त्याग दिये।

भाई बालमुकुन्द महान् स्वाधीनता सेनानी, इतिहासकार व आर्यसमाजी मनीषी भाई परमानन्दजी के चचेरे भाई थे।

जतिन्द्रनाथ मुखर्जी (बाघा जतिन)

जतिन्द्रनाथ मुखर्जी का जन्म 8 दिसम्बर, 1879 को बंगाल के कुश्तिया नगर में हुआ था। जतिन का शरीर सुदृढ़ व सुडौल था, जैसे इस्पात में ढाला गया हो। बचपन में ही उन्होंने मल्ल युद्ध में बाघ को मार डाला था। तभी से वे बाघा जतिन कहलाने लगे। महान क्रांतिकारी अरविंद घोष और यतीन्द्र नाथ बनर्जी से प्रेरणा पा उन्होंने 'बान्धव समिति' का गठन किया। 1910 में इनके इस दल ने डी.एस. पी. शमसुल आलम का वध कर दिया। बाघा जतिन ने कोलकाता की हथियारों का व्यापार करने वाली रोडा कम्पनी के हथियारों की खेप चालाकी से गायब कर दी। अनेक बार महिलाओं के साथ अश्लील हरकतें करने पर अकेले जतिन ने पाँच-पाँच अंग्रेजों को पछाड़ा। रास बिहारी बोस ने 21 फरवरी, 1915 को सारे देश में एक साथ सैनिक क्रांति एवं जन-विप्लव की योजना बनाई थी। उसकी सफलता हेतु शस्त्रों के प्रबंध में जतिन ने पूरा सहयोग दिया। अलीपुर बम केस में जब सारे क्रांतिकारी पकड़े गये तब जतिन्द्र नाथ ने ही क्रांति की मशाल को जलाये रखा एवं उन्हें बचाने हेतु सक्रिय भूमिका अदा की। उस समय जर्मनी और इंग्लैंड में शत्रुता थी। अत: जर्मनी से भारत की स्वतंत्रता हेतु क्रांतिवीरों के लिए धन एवं शस्त्र भारी मात्रा में भारत पहुँचे। कोलकाता में क्रांतिवीरों ने एक फर्म 'हैरी एंड संस, 41 क्लाईव स्ट्रीट कोलकाता' बना ली। उसी के माध्यम से धन व शस्त्रादि जर्मनी से भारत आने लगे। पुलिस जतिन की खोज में जुट गई। हथियारों से लदे दो जहाज 'मैवरिक' एवं हैनरी एस' भारत आ रहे थे। जतिन और उनके साथियों ने उनसे शस्त्रों की खेप प्राप्त करनी थी। बालासोर के जंगल में जतिन और उनके साथियों को पुलिस ने घेर लिया। दोनों ओर से खूब गोली चली। अंग्रेजों की ओर से क्लिवी, टेगार्ट और वर्ड आदि प्रमुख अधिकारी इस अभियान में जुटे थे। जतिन घायल अवस्था में पकड़े गये। 10 सितम्बर, 1915 को उन्होंने अस्पताल में शहादत प्राप्त की।

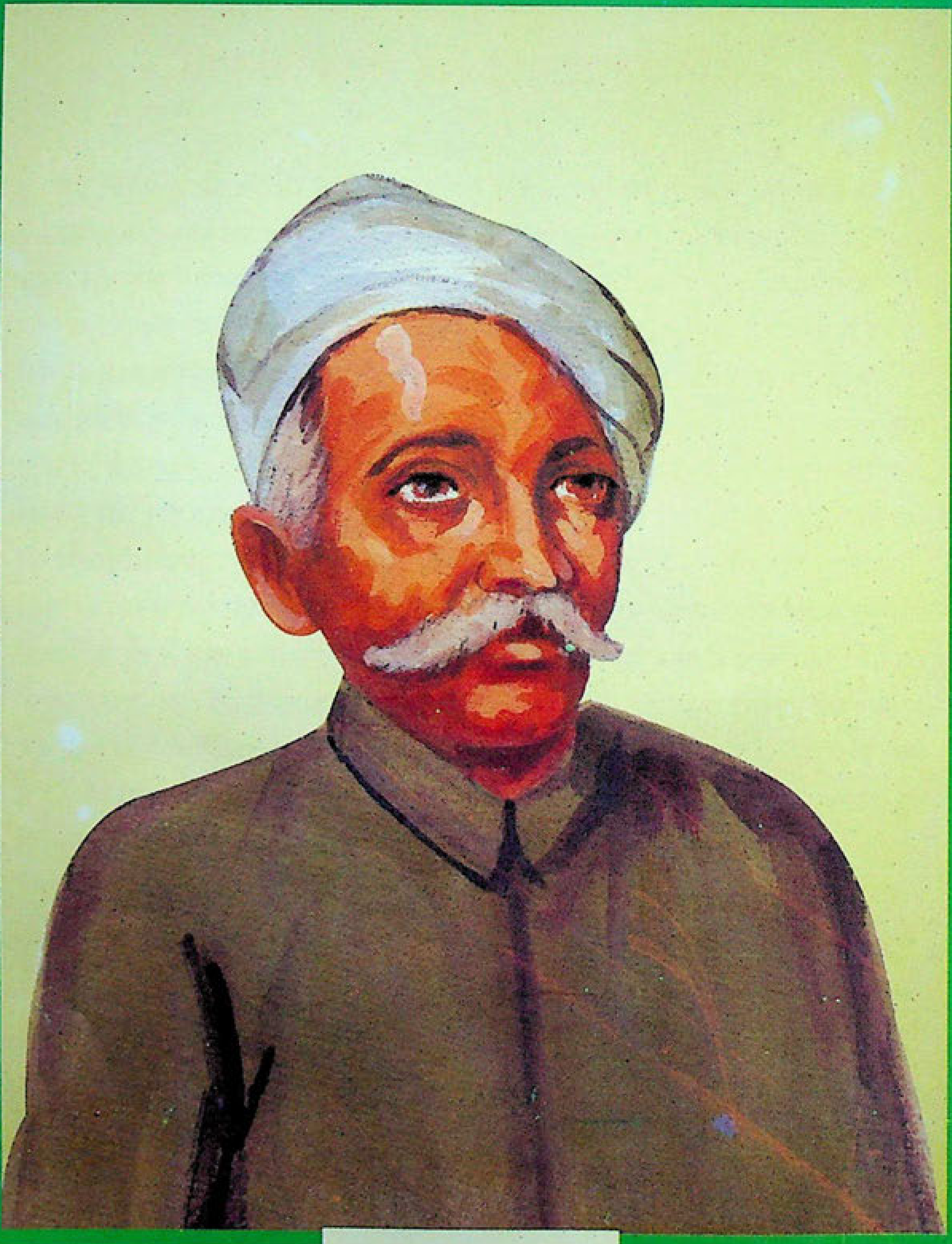

केसरीसिंह बारहट

ठाकुर केसरीसिंह बारहट शाहपुर रियासत (राज.) के जागीरदार थे। इनकी विलक्षण बुद्धि और संगठन क्षमता के कारण यह उदयपुर राज्य में महाराणा फतेहसिंह के दरबार में उच्च पद पर रहे। बाद में कोटा के दरबार में उन्हें जागीरदार बनाया गया। ठाकुर केसरीसिंह बारहट ने राजपूतों को संगठित कर उन्हें अपने पूर्ववर्ती शौर्य को प्राप्त करने का अभियान छेड़ा हुआ था। 1911 में दिल्ली दरबार में हाजिरी देने के लिए जब महाराणा प्रताप के वंशज महाराणा फतेहसिंह स्पेशल ट्रेन से दिल्ली के लिए चल पड़े तो केसरीसिंह को यह बहुत बुरा लगा। अत: उन्होंने 'चेतावणी रा चूंगटिया' नाम के तेरह सोरठे लिखकर विशेष संवाहक द्वारा महाराणा के पास भेजे। जिन्हें पढ़ कर महाराणा इतने प्रभावित हुए कि उनकी ट्रेन यद्यपि दिल्ली पहुँच चुकी थी लेकिन वह दिल्ली नहीं उतरे उलटे वापस उदयपुर के लिए चल पड़े। अंग्रेजों के रेजीडेंट ने इसकी सूचना अंग्रेजों को दे दी। परिणामस्वरूप केसरीसिंह को झूठे केसों में फँसा कर आजीवन कारावास का दंड दे दिया गया। उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। सम्पत्ति जब्त के आदेश सुन कर उन्होंने अदालत में जज से कहा - ''आपने जो सम्पत्ति जब्त की वह मेरी थी ही नहीं, मेरे हृदय में भरी हुई देश प्रेम की भावनाओं और संकल्पों की सम्पत्ति को जब्त करें तो जानूँ।'' 1919 में केसरीसिंह बारहट लम्बे कारावास के बाद जब जेल से मुक्त हुए तो उनकी जवानी ढल चुकी थी। उनका छोटा पुत्र प्रतापसिंह बरेली जेल में अपने जीवन पुष्प मातृभूमि की भेंट चढ़ा चुका था। उनका छोटा भाई जोरावरसिंह बारहट के विरुद्ध गिरफ्तारी के वारन्ट जारी थे। वह भूमिगत रह कर ब्रिटिश शासन की नाक में नकेल डाल रहा था। इस प्रकार मातृ-भूमि की आजादी की खातिर इस परिवार के बलिदान पर राष्ट्र नत मस्तक है।

प्रतापसिंह बारहट

प्रतापसिंह बारहट का जन्म 25 मई, 1893 में शाहपुर जि. भीलवाड़ा (राज.) में हुआ था। इनके पिता केसरीसिंह बारहट को झूठे मुकदमे में फँसा कर गिरफ्तार कर लिया गया था। उस समय प्रतापसिंह कुल छः वर्ष के थे। पिता की गिरफ्तारी के बाद उनका मकान व सम्पत्ति सरकार द्वारा जब्त कर ली गई। अतः उनकी माँ को दर-दर की ठोकरें खा कर इनका पालन पोषण करना पड़ा। 1912 में लार्ड हार्डिंगस पर बम फेंकने के षड़यंत्र में प्रतापसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। उसके बाद उनके चाचा जोरावर सिंह भी क्रांति की राह पर चल पड़े। लेकिन जोरावरसिंह भूमिगत रह कर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जन चेतना जाग्रत करते रहे। भूखे - प्यासे रह कर जोरावरसिंह ने निमोनिया की बीमारी में प्राण त्याग दिये।

प्रतापसिंह बारहट को आजन्म कालेपानी की सजा घोषित हुई। बाद में यह सजा बढ़ा कर फाँसी में बदल दी गई। सरकार फाँसी से पूर्व प्रताप सिंह से अन्य क्रांतिवीरों के नाम उगलवाना चाहती थी। इसके लिए उन्हें बरेली जेल में अमानवीय यातनाएँ दी गईं। बर्फ की सिल्ली पर लिटाना, कोड़ों से पीटना, खाल को जला कर ज़ख्मों में नीबू का रस व नमक भरना, आँखों में तथा जख्मों पर लाल मिर्च की धूनी देना जैसी क्रूरतम यातनाओं के कारण उनके शरीर ने 24 वर्ष की आयु में ही जवाब दे दिया और उन्होंने फाँसी से पूर्व ही 7 मई , 1917 को जेल में दम तोड़ दिया। प्रतापसिंह के चाचा जोरावर सिंह की पत्नी अनूप को भी जो कि वैधव्य धारण कर चुकीं थी, ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों का कोपभाजन होना पड़ा। इस प्रकार समस्त बारहट परिवार की बलिदान गाथा से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास गौरवान्वित है।

गेंदालाल दीक्षित

पंडित गेंदालाल दीक्षित का जन्म आगरा जिले के मई गाँव में 30 नवम्बर, 1890 को हुआ था। पंडित गेंदालाल दीक्षित ने देश की आजादी के लिए निश्चय किया कि ब्रिटिश सरकार से सशस्त्र संघर्ष करना होगा। अतः इन्होंने पहले 'शिवाजी समिति' और बाद में 'मातृवेदी' संस्थाओं का गठन किया। गेंदालाल दीक्षित ने एक बार एक सज्जन के माध्यम से चम्बल के डाकुओं से सम्पर्क किया। उन्हें डकैती की धारा से मोड़ कर देश की आजादी की खातिर शस्त्र उठाने के लिए तैयार किया। उन्हीं के सम्पर्क से वह ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कोई जबरदस्त टक्कर की योजना बना रहे थे। तभी किसी मुखबिर ने पुलिस को सूचना देदी। पुलिस से भारी टक्कर में इनके 35 क्रांतिवीर वीरगति को प्राप्त हुए। 45 गिरफ्तार कर लिये गये। रामप्रसाद विस्मिल ने इन्हें जेल से छुड़ाने की योजना बनाई। लेकिन इस योजना का भी पुलिस को पता चल गया। पुलिस को गेंदालाल के पीछे किसी बड़े गिरोह की जानकारी थी। अतः उन्हें ग्वालियर से मैनपुरी जेल भेज दिया गया। यहाँ कुपोषण और गंदे वातावरण के कारण उन्हें तपेदिक की बीमारी लग गई। एक दिन दीवार फाँद कर वह जेल से भाग निकले। भाग कर कोटा आ गये। यहाँ इनके मित्र रामनारायण ने इन्हें धोखा दिया। रात को धर्मशाला के एक कमरे में रामनारायण इनका सारा सामान लेकर चम्पत हो गया। कमरे के बाहर ताला डाल गया। तीन दिन बाद कमरे से बाहर आ सके। बीमारी की अवस्था में घर पहुँचे तो इनके पिता व घर वालों ने पुलिस के डर से उन्हें घर में रखने से मना कर दिया। आखिर बीमार शरीर से पुलिस को चकमा देते हुए दिल्ली आकर एक प्याऊ पर पानी पिलाने का काम करने लगे। लेकिन इनकी दशा बिगड़ गई। अंतिम समय इनकी पत्नी व दोस्त दिल्ली आ गये। 20 दिसम्बर, 1920 को दिल्ली के सिविल हास्पीटल में यह क्रांतिवीर पंचतत्व में विलीन हो गया।

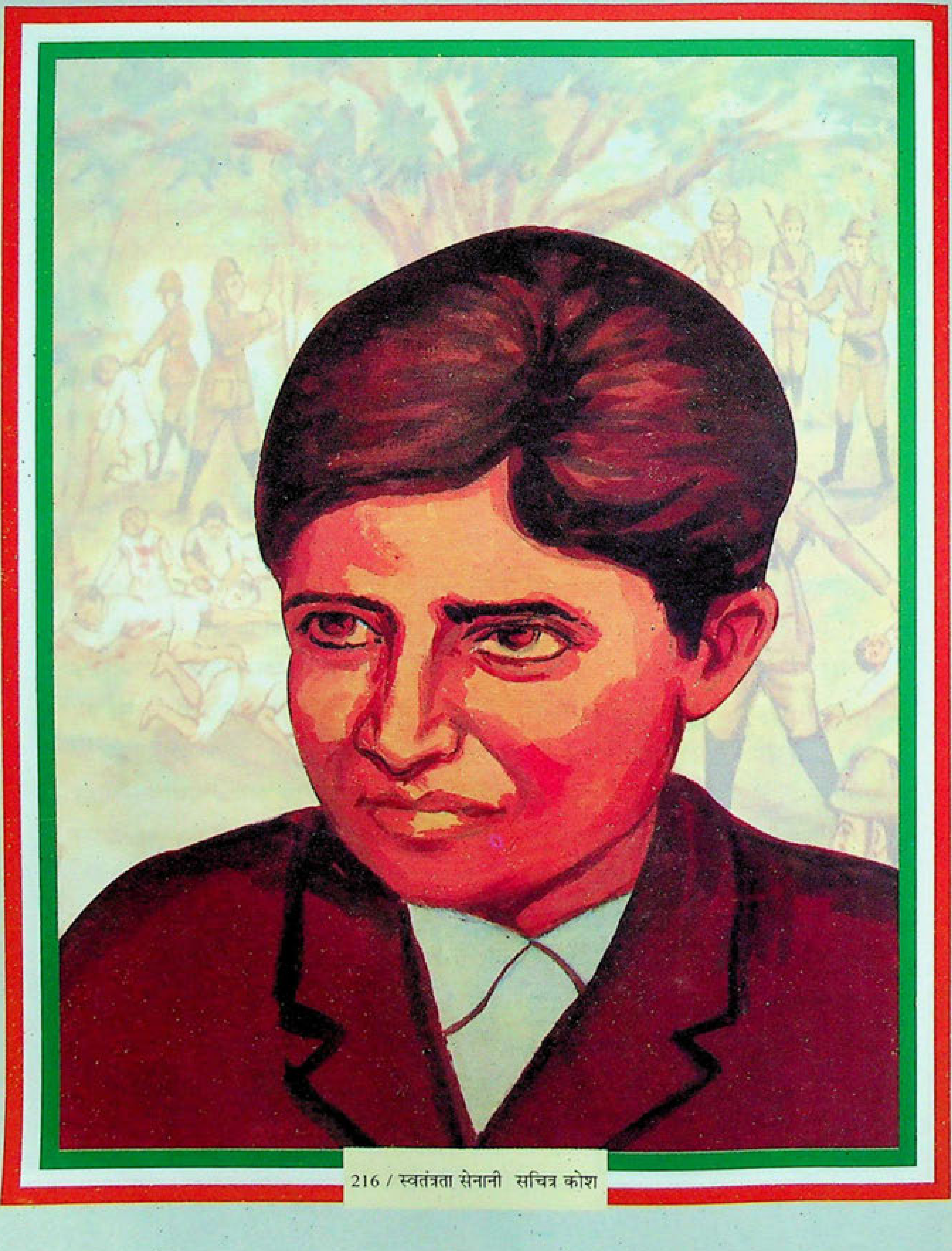

अल्लुरि सीताराम राजू

अल्लुरि सीताराम राजू का जन्म 4 जुलाई, 1897 को आंध्र के मोगल्लू गाँव में हुआ था। जलियाँवाला बाग नर-संहार के कारण अल्लुरि सीताराम राजू ने क्षुब्ध होकर स्कूल का त्याग कर दिया। आगे चल कर असहयोग आन्दोलन में भाग लिया लेकिन 1922 में अपनी चरम सीमा पर पहुँचे आन्दोलन को महात्मा गाँधी ने अचानक स्थगित कर दिया। इससे अल्लुरि ने क्रांति की राह पकड़ ली। गोदावरी के निकट वनवासी क्षेत्र में दो सगे भाई राम मल्लूडोरा एवं गौतमडोरा भी अंग्रेजों की 'जंगल आरक्षण नीति' का विरोध कर रहे थे। अंग्रेजों के हैवानियत पूर्ण अत्याचारों ने इन तीनों को एक मंच पर ला दिया। तीनों ने मिल कर अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र क्रांति की योजना बना ली। जंगल के युवाओं को एकत्र कर 'रम्पा क्रांति दल' की स्थापना कर ली। हथियारों को जुटाने के लिए उन्होंने चिंतापल्ली और कृष्णादेवी पुलिस स्टेशनों को लूटा। वहाँ से भारी मात्रा में शस्त्रादि हाथ लगे। बहुत समय बाद सरकार चेती। सरकार द्वारा ले० स्काट और ले० आयर की कमान में फौजी कार्यवाही की गई। दोनों ओर से आमने-सामने टक्कर हुई। इस संघर्ष में अंग्रेजों की सेना परास्त होकर भाग खड़ी हुई। राजू ने ले० स्काट एवं ले० आयर को पकड़वाने वाले को दस हजार रुपये के इनाम की घोषणा करा दी। आंध्र प्रदेश की जेल में बंद बाबा पृथ्वी सिंह आजाद को जेल से मुक्त कराने का राजू ने असफल प्रयास किया। ब्रिटिश सरकार ने समस्त रम्पा क्षेत्र असम राइफल्स को सौंप दिया। जब राजू सरकार के हाथ न आया तो सरकार ने अबोध बच्चों, असहाय महिलाओं व लाचार बूढ़ों को थाने में ला-ला कर राजू का पता बताने के लिए पीटना व उन्हें बेइज्जत करना आरम्भ कर दिया। अत: लाचारी वश राजू ने सामने आकर इसका विरोध किया और वह गिरफ्तार कर लिया गया। 7 मई, 1924 को राजू को अंग्रेज सेना ने वृक्ष से बाँध कर गोलियों से छलनी कर दिया।

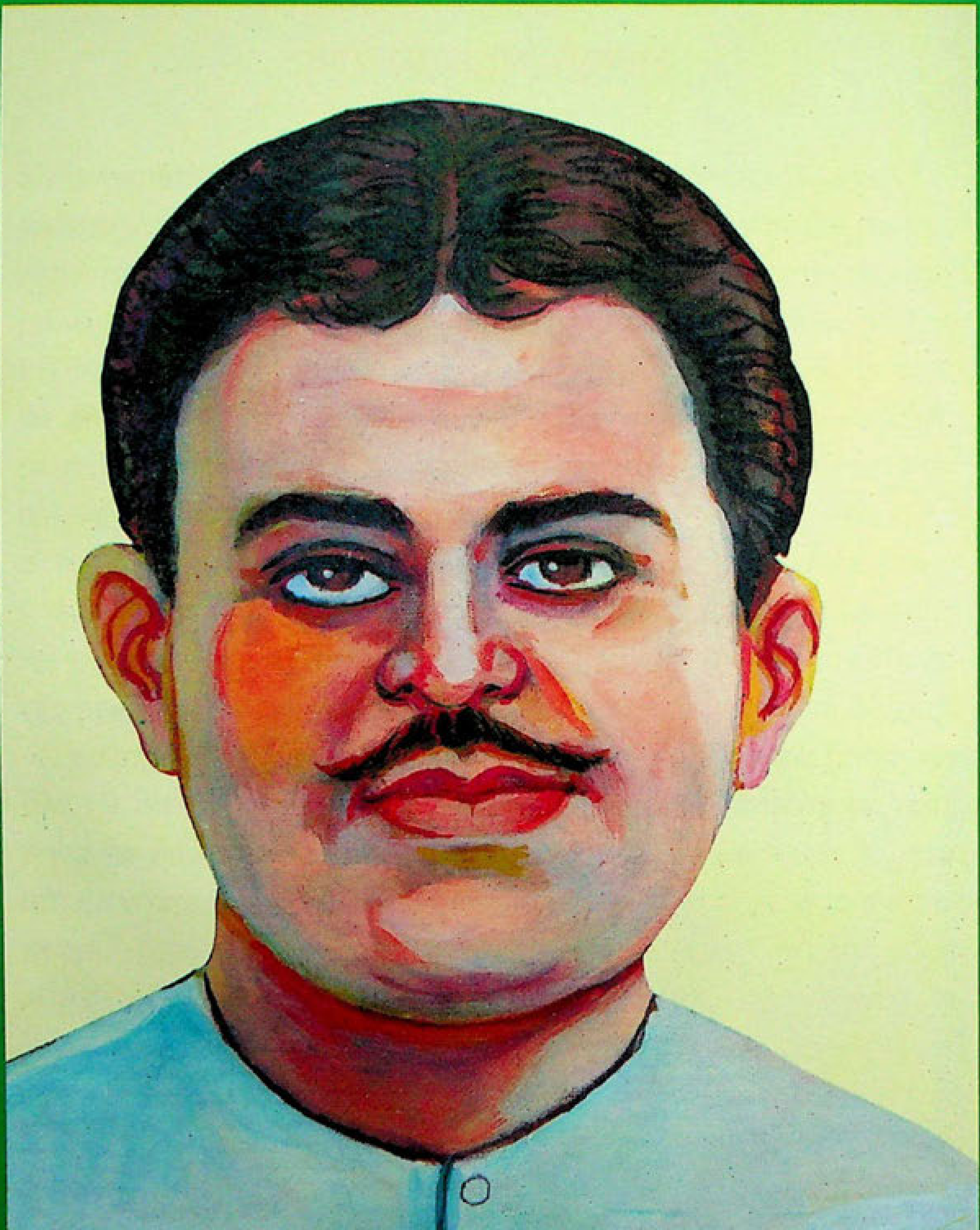

रामप्रसाद 'बिस्मिल'

रामप्रसाद 'बिस्मिल' का जन्म 11 जून, 1897 को मैनपुरी जिले में शाहजहाँपुर के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। उनका बचपन कुटेबों से भरा था। लेकिन आर्यसमाज के सम्पर्क में आकर वह कुन्दन बन गया। महान क्रान्तिकारी व इतिहासकार भाई परमानन्द को फाँसी की सजा सुना दी गई। इसी से कुपित होकर उन्होंने भारत माँ को गुलामी से मुक्ति दिलाने का बीड़ा उठाया। 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' संस्था के माध्यम से क्रांतिकारी गतिविधियाँ आरम्भ कीं। बिस्मिल अच्छे लेखक थे। उन्होंने 'अमेरिका को स्वतंत्रता कैसे मिली?, मैनपुरी षड्यंत्र केस के नेता पं. गेंदालाल दीक्षित', 'सूफी अम्बाप्रसाद', 'देशमान्य बाबू मोतीलाल घोष', 'मन की लहर', 'स्वदेशी रंग', 'क्रांतिकारी जीवन' तथा 'आत्म चरित्र' पुस्तकें लिखीं। इनमें से अधिकतर ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर ली गई।

क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए धन चाहिए था। अत: बिस्मिल और उनके साथियों ने 9 अगस्त, 1925 को काकोरी स्टेशन के निकट सहारनपुर-लखनऊ पैसेन्जर गाड़ी से सरकारी खजाना लूट लिया। धीरे-धीरे सभी क्रांतिवीर पकड़े गये। केवल चन्द्रशेखर आजाद भूमिगत रह कर क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन करते रहे। इस 'काकोरी षड्यंत्र केस' में चार को फाँसी की सजा घोषित हुई। राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी को 17 दिसम्बर एवं रामप्रसाद 'बिस्मिल', ठाकुर रोशनसिंह एवं अशफाकउल्ला खाँ को 19 दिसम्बर, 1927 को फाँसी पर लटकाया गया। रामप्रसाद 'बिस्मिल' बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे शायर भी थे। उनके "सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है" गीत ने क्रांतिवीरों में एक नया उत्साह एवं देश के लिए मर मिटने का संकल्प पैदा कर दिया।

ठाकुर रोशनसिंह

रोशनसिंह का जन्म सन् 1891 में शाहजहाँपुर जिले के नवादा गाँव में एक राजपूत परिवार में हुआ था। क्रान्तिकारी विचारधारा के कारण ब्रिटिश सरकार ने बरेली के गोली कांड में इन्हें झूठा फँसा दिया और इन्हें दो वर्ष के कठोर कारावास की सजा दे डाली। सच पूछो तो इस दो वर्ष के कारावास ने ही वीर रोशनसिंह के अंदर छिपे क्रांतिकारी को रोशन कर दिया। मार्च 1923 में मुक्त होते ही यह रामप्रसाद बिस्मिल, शचीन्द्र सान्याल एवं अशफाकउल्ला खाँ आदि क्रांतिकारी वीरों के दल में शामिल हो गए। 9 अगस्त, 1925 को काकोरी स्टेशन के निकट सरकारी खजाना लूटने में यह भी शामिल थे। इस ट्रेन डकैती में शामिल सभी क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया। केवल चन्द्रशेखर आजाद सरकार के हाथ नहीं आ सके। इनमें रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्लाखाँ, राजेन्द्र लाहिड़ी व रोशन सिंह को फाँसी की सजा सुना दी गई। शचीन्द्र सान्याल व शचीन्द्र नाथ बख्शी को आजीवन कारावास की सजा हुई। इसी केस में अन्य 14 देशभक्तों ने भी सजाएँ भोगीं। बनवारी लाल सरकारी गवाह बना। 19 दिसम्बर, 1927 के दिन 'वन्दे मातरम्' उद्घोष के साथ इन्होंने फाँसी का फन्दा चूम लिया। वीर रोशनसिंह शायर थे। फाँसी से 6 दिन पूर्व 13 सितम्बर, 1927 को रोशन सिंह ने अपने मित्र को एक पत्र लिखा– ''शास्त्र में लिखा है कि जो आदमी धर्म युद्ध में प्राण देता है उसकी वही गति होती है जो जंगल में रह कर तपस्या करने वालों की।'' इस पत्र के अंत में लिखा था, ''ज़िन्दगी ज़िन्दादिली को जान ए रोशन,

वरना कितने मरे और पैदा होते जाते हैं।''

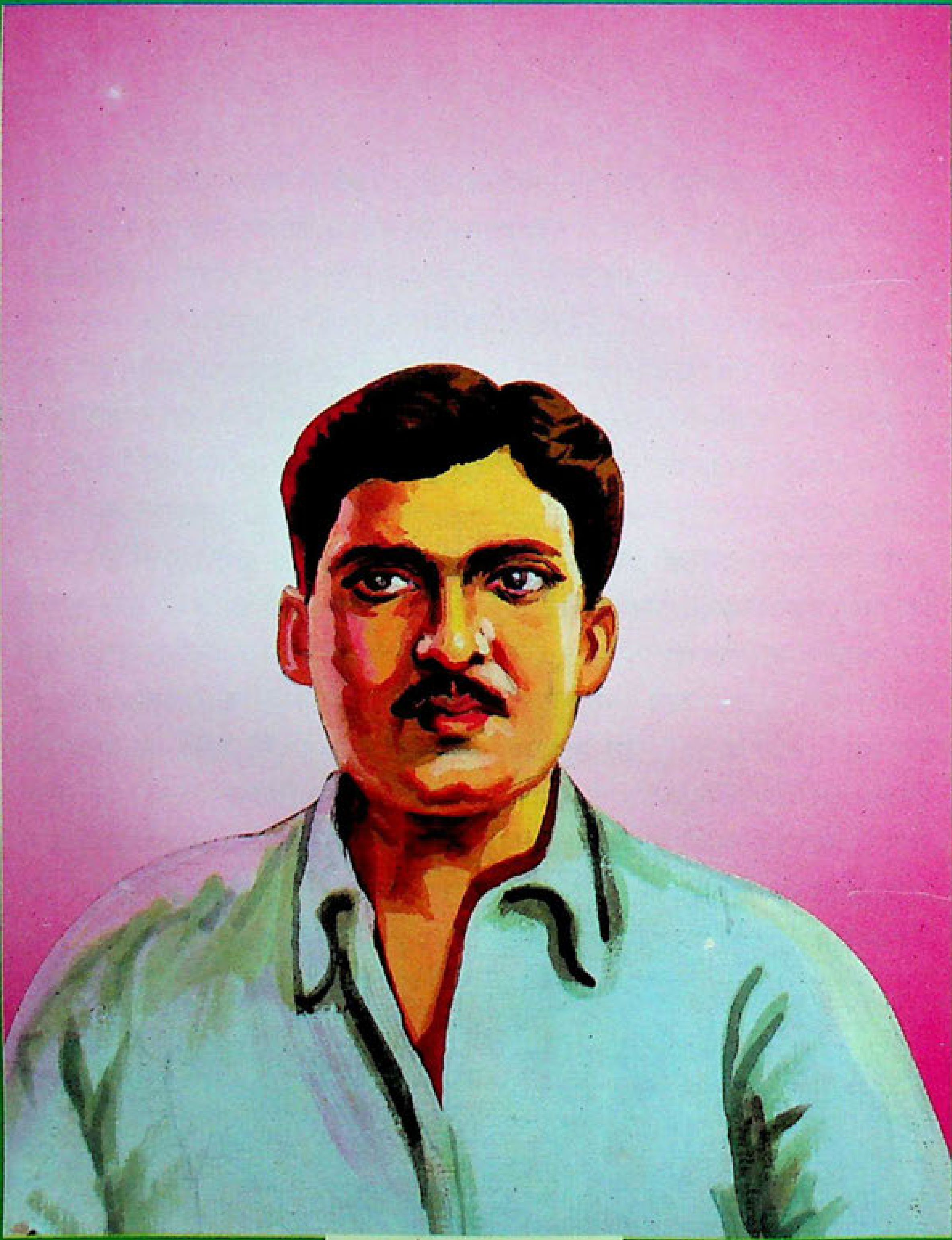

अशफाकउल्ला खाँ

अशफाकउल्ला का जन्म 22 अक्तूबर सन् 1900 में शाहजहाँपुर में हुआ था। अशफाकउल्ला खाँ शाहजहाँपुर के एक रईस पिता के पुत्र थे। वह रामप्रसाद बिस्मिल की देश के लिए मर मिटने की भावना से बहुत प्रभावित थे। अत: उनका रामप्रसाद बिस्मिल से गहरा दोस्ताना हो गया। अशफाक मुसलमान होते हुए भी साम्प्रदायिक भावना से कोसों दूर थे। तभी तो एक बार आर्य समाज की मुसलमानों के आक्रमण से रक्षा करते हुए उन्होंने कहा था- 'मंदिर और मस्जिद दोनों मालिक की इबादत करने के पवित्र स्थान हैं। फिर उनमें आपस में बैर कैसा?'' 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन ऐसोसिएशन' क्रांतिकारी दल ने निश्चय किया कि क्रांतिकारी गतिविधियों के संचालन हेतु धन भी सरकार से ही प्राप्त किया जाये। अत: दिनांक 9 अगस्त, 1925 को काकोरी स्टेशन के निकट रेल से सरकारी खजाना लूट लिया गया। खजाना लूटते समय साथियों से संदूक नहीं टूटा। तब अशफाक ने कुछ क्षणों में ही संदूक तोड़ डाला। अशफाकउल्ला खाँ सरकार व पुलिस से बचकर बिहार चले गये। उसके बाद वह दिल्ली आ गये। यहाँ उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें फैजाबाद जेल में रखा गया। इन्हें मुकदमे में फाँसी की सजा घोषित हो गई। फाँसी की सजा सुनने के बाद भी उनकी मस्ती देखने लायक थी। फाँसी से पूर्व इनके दोस्त जेल में उनसे मिलने आये। यह सज-सँवर कर दोस्तों के सामने पहुँचे और बोले, ''कल मेरी शादी है।'' 19 दिसम्बर, 1927 को अशफाक उल्ला खाँ ने फैजाबाद जेल में फाँसी का फंदा चूमा। अशफाक एक शायर थे। उनका उपनाम 'हसरत' था। उनकी हसरत भी क्या थी? उन्हीं की शायरी में-

''कुछ आरजू नहीं है, है आरजू तो यह है।
रख दे कोई ज़रा सी, ख़ाके वतन कफ़न में।।''

राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी

राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी का जन्म सन् 1901 में बंगाल के पबना जिले के ग्राम भड़का में हुआ था। राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र थे। उन्होंने शचीन्द्र नाथ सान्याल व योगेश चटर्जी आदि क्रांतिवीरों के सम्पर्क से 'यूनाइटेड आल इंडिया रेवोल्यूशनरी पार्टी' का गठन किया। यह पार्टी बाद में 'बंगाल अनुशीलन समिति' के साथ विलय होकर 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' कहलाई। दल के कार्य संचालन हेतु इन्हें धन की अत्यन्त आवश्यकता थी। अत: दल के निर्णय के अनुसार 9 अगस्त, 1925 को काकोरी स्टेशन के निकट ट्रेन से सरकारी खजाना लूटा गया। लूटे हुए धन से पिस्तोलों का प्रबंध कर लिया गया। राजेन्द्रनाथ बम बनाने के कारखाने में काम करने लगे। बम कारखाने पर पुलिस का छापा पड़ा। 10 नवम्बर, 1925 को लाहिड़ी को गिरफ्तार कर लिया गया। काकोरी काण्ड के सभी क्रांतिवीर पकड़े गये। केवल चन्द्रशेखर आजाद भूमिगत रह कर क्रांति की मशाल को प्रज्वलित करते रहे। लाहिड़ी ने मुकदमे में अपने बयानों में सिद्ध कर दिया कि यह डकैती नहीं थी। यह तो सरकार के ही पैसे से सरकार के अत्याचारों का सरकार को जवाब था। मुकदमे में चार को फाँसी तथा अन्य 16 क्रांतिवीरों को लम्बी सजाएँ हुईं।

सबसे पहले 17 दिसम्बर, 1927 को राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी ने गोंडा जेल में फाँसी का फंदा चूमा। अशफाकउल्ला खाँ, रामप्रसाद बिस्मिल एवं रोशनसिंह को 19 दिसम्बर को फाँसी पर लटकाया गया। फाँसी से पूर्व गोण्डा जेल से लिखे उनके पत्र की कुछ पंक्तियाँ।

''मालूम होता है कि देश की बलिवेदी को हमारे रक्त की आवश्यकता है।......यदि यह सच है कि इतिहास पलटा खाता है तो मैं समझता हूँ कि हमारी मृत्यु व्यर्थ नहीं जायेगी।''

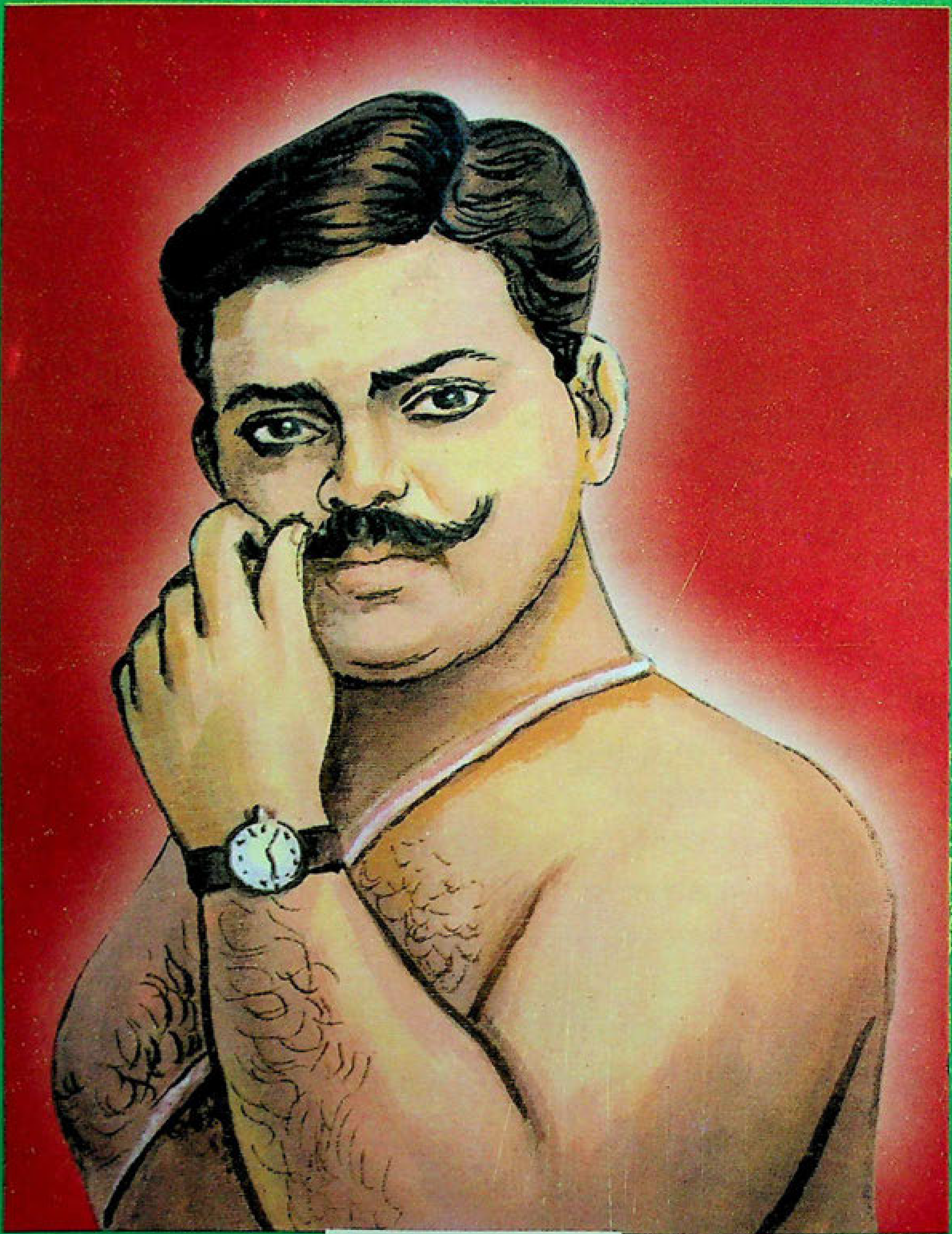

चन्द्रशेखर आजाद

चन्द्रशेखर आजाद का जन्म 23 जुलाई, 1906 को भांवरा गाँव में पं. सीताराम तिवारी एवं जगरानी देवी के पुत्र के रूप में हुआ था। चन्द्रशेखर आजाद! एक ऐसी शहादत का नाम है जो 1921 के असहयोग आंदोलन में केवल 14 वर्ष की आयु में ही गिरफ्तार हो गये। 15 बेंतों की सजा पा सदैव के लिए 'आजाद' नाम से विख्यात हो गये। आजाद 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट' रिपब्लिकन एसोसियेशन, के कमांडर-इन-चीफ बन गये। इनके दल ने क्रांति वीरों की मदद हेतु 9 अगस्त, 1925 को काकोरी के पास रेल से सरकारी खजाना लूटा। आजाद भूमिगत हो ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध गतिविधियों का संचालन करने लगे। ब्रिटिश सरकार ने इन्हें पकड़वाने के लिए तीस हजार रुपये के इनाम का एलान कर दिया अत: उन्होंने जीवित सरकार के हाथ न आने की घोषणा कर दी। लाला लाजपत राय के लाठी चार्ज का बदला लेने हेतु लाहौर में सांडर्स की हत्या में वह भी शामिल थे। आजाद 8 अप्रैल, 1929 के ऐसेम्बली बमकांड के षडयंत्र में भी शामिल थे। किसी मुखबिर के संकेत पर 27 फरवरी सन् 1931 को इलाहाबाद के एलफ्रेड पार्क में वह पुलिस द्वारा चारों ओर से घेर लिए गये। चारों ओर से इन पर गोलियाँ बरसाई जा रही थीं। बचने का कोई रास्ता न रहने पर उन्होंने अंतिम गोली अपने मस्तक में मार कर आत्म-बलिदान कर लिया। आजाद की पिस्तौल से एस.पी.नाटबाबर की कलाई की हड्डी टूट गई थी। फिर भी आजाद की बहादुरी से नाटबाबर बहुत प्रभावित था। आजादी के बाद लन्दन लौटने से पूर्व आजाद की पिस्तौल लौटाने हेतु उसने एक शर्त रखी–''मैं अपने अंतिम दिनों तक उस बहादुर की एक निशानी अपने पास रखना चाहता हूँ। पिस्तौल लेनी है तो उनकी एक फोटो ही मुझे दे दी जाये''। आजाद की फोटो लेकर पिस्तौल उसने लौटा दी। गाँधी जी की बकरी के गले की रस्सी तो संग्रहालय में बड़े शान के साथ दिखाई जाती है लेकिन आजाद की पिस्तौल को किसी प्रख्यात संग्रहालय में स्थान नहीं मिला।

शहीद सुखदेव

शहीद सुखदेव का जन्म 15 मई, 1907 को नौघरां लुधियाना (पंजाब) में श्री रामलाल जी के पुत्र के रूप में हुआ था। इनका कार्यक्षेत्र लाहौर था। सुखदेव सातवीं कक्षा में थे। उन्होंने स्कूल में आयोजित 'यूनियन जैक' के अभिवादन समारोह में भाग लेने से मना कर दिया। जब यह 16 वर्ष के थे तब इन की माँ द्वारा विवाह की बात कहने पर सुखदेव ने कह दिया—माँ मैं घोड़ी पर नहीं फाँसी पर चढ़ूँगा। भविष्य में यह बात सच निकली। इन्होंने भगतसिंह के साथ मिल कर विप्लव पार्टी का गठन किया और युवकों को क्रांति का संदेश पहुँचाया। इन्होंने अपने साथियों के साथ मिल कर 'कृष्णविजय' नाटक का मंचन किया। इसमें अंग्रेजों को कौरव तथा काँग्रेस को पाण्डव दर्शाया गया था। लाजपतराय के नेतृत्व में साइमन कमीशन के विरोध जलूस की व्यवस्था इन्होंने ही की थी। लालाजी की शहादत के बाद इन्होंने शपथ ली। 'कसम भारत माँ की, खून का बदला खून' और साण्डर्स की हत्या कर अपने साथियों के साथ फरार हो गए। यद्यपि सरकार उनकी तलाश में थी। फिर भी गुप्त रूप से लाहौर में बम फैक्टरी में बमों का निर्माण आरंभ कर दिया। सुराग मिलने पर सरकार ने बम फैक्टरी पर छापा मारा। सुखदेव गिरफ्तार कर लिये गये। भगतसिंह और राजगुरु पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे। इन्होंने गवर्नर को पत्र लिखा, 'हम युद्ध बंदी हैं हमारे साथ युद्ध बंदियों जैसा ही व्यवहार किया जाये। हमें फाँसी की बजाय गोली से उड़ा दिया जाये'। लेकिन क्रूर शासकों ने तीनों को फाँसी का हुक्म सुना दिया। 23 मार्च सन् 1931 की संध्या को इन्हें फाँसी दे दी गई। सरकार ने तीनों के शवों को उसी रात सतलुज नदी के तट पर फूँक डाला। बाद में तीनों के शवों के अधजले टुकड़ों को एकत्र कर तीन अर्थियाँ सजा कर शव यात्रा निकाली गई। रावी नदी के तट पर दिनांक 24 मार्च, 1931 को अन्त्येष्टि संस्कार कर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

अमर शहीद राजगुरु

राजगुरु का जन्म सन् 1908 में खेड़, पुणे (महाराष्ट्र) में हुआ था। वे बचपन से ही साहसी थे। देश पर मर मिटने के लिये हर समय तैयार रहते थे। राजगुरु, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि सभी क्रांतिवीर 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' के सदस्य थे।

लाला लाजपत राय के नेतृत्व में साइमन कमीशन के विरोध जुलूस में राजगुरु भी शामिल थे। लाला जी का लाठी प्रहार से निधन हो जाने पर राजगुरु ने शपथ ली 'लालाजी के हत्यारे को पहली गोली मैं मारूँगा,' साण्डर्स पर पहली गोली राजगुरु ने ही चलाई। साण्डर्स की हत्या के बाद भगत सिंह ने यूरोपियन वेष धारण किया। महिला क्रांतिकारी दुर्गा भाभी भगतसिंह की पत्नी बनी एवं राजगुरु नौकर बने। यह यूरोपियन पति-पत्नि के जोड़े के साथ रेल से कोलकाता पहुँच गए। एक बार अंगीठी में संडासी को गरम लाल कर सीने पर तीन निशान बना डाले, 'यह देखने के लिए कि पुलिस द्वारा टार्चर किये जाने पर घबराऊँगा तो नहीं।' पुलिस इनकी तलाश में थी। आखिर पूना से गिरफ्तार कर इन्हें लाहौर लाया गया। इन पर मुकदमा चला। सुखदेव, भगतसिंह व राजगुरु तीनों को नियम विरुद्ध 23 मार्च, 1931 को सायंकाल फाँसी दे दी गई। जेल के द्वार पर 20 हजार लोगों का जमघट था पुलिस को भय था कि जनता इनके शवों को अपने कब्जे में न ले ले, अतः पुलिस ने इन तीनों के शवों के टुकड़े-टुकड़े कर उन्हें जेल के पीछे नाली से बाहर धकेला। टुकड़ों को बोरे में भर कर गाड़ी में डाला। रात्रि के अंधकार में सतलुज नदी पर ले जाकर मिट्टी का तेल छिड़क कर फूँक डाला।

ऐ शहीदाने वतन, तुम पर वतन को नाज़ तो है लेकिन-
खुद-परस्ती की खरोंचों ने, लहू से लिखी इबारत ही मिटा दी।।

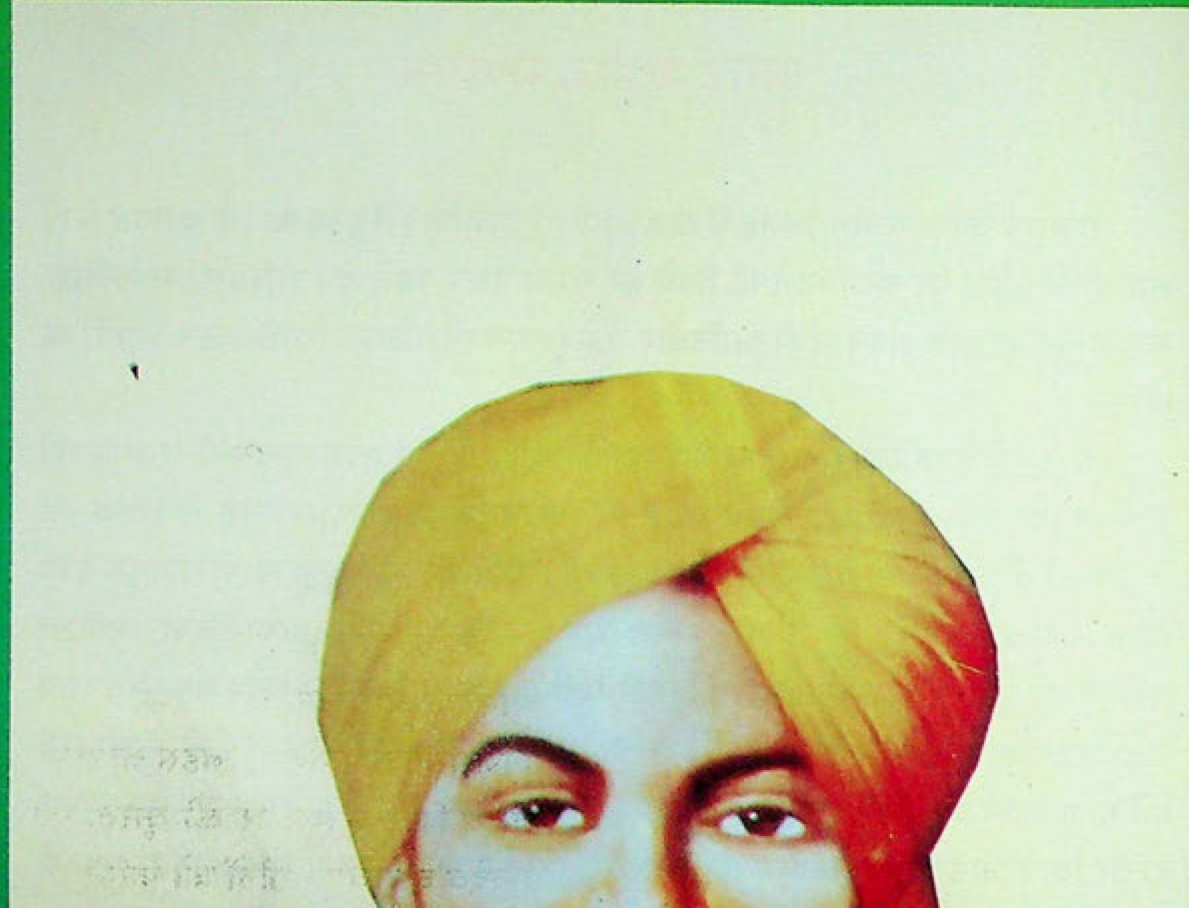

सरदार भगत सिंह

सरदार भगत सिंह का जन्म 27 सितम्बर, 1907 को लायलपुर (पंजाब) के पास बंगा गांव में हुआ था। प्राथमिक शिक्षा के बाद उन्होंने डी.ए.वी. कालेज लाहौर में प्रवेश ले लिया। यहीं से उन्होंने क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेना आरम्भ कर दिया। साइमन कमीशन के विरोध जुलूस पर लाठी चार्ज से लाला लाजपत राय का निधन हो गया। भगतसिंह ने अपने कुछ साथियों के साथ लाठी चार्ज के जिम्मेदार जे. पी. साण्डर्स ए.एस.पी. की हत्या कर दी। हत्या के बाद वह छद्म वेश में लाहौर से बाहर निकल गये और पुलिस देखती ही रह गई। वे 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' के सक्रिय सदस्य थे। इन्होंने 8 अप्रैल, 1929 को बटुकेश्वर दत्त के साथ दिल्ली की एसेम्बली में बम फेंक कर ब्रिटिश सत्ता को हिला दिया और स्वयं को गिरफ्तार करा दिया। उन्होंने स्वयं को गिरफ्तार इसलिए कराया जिससे कि मुकदमे में बहस के समय वह कचहरी के मंच से क्रांतिकारियों के आदर्शों व ब्रिटिश सरकार की क्रूरता को जग-जाहिर कर सकें। मुकदमे में भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरु तीनों को फाँसी का दंड सुना दिया गया।

23 मार्च, 1931 को इन तीनों वीरों को सायं सात बजे लाहौर की जेल में फाँसी दे दी गई। जेल के बाहर लगभग 20 हजार लोगों की भीड़ मँडरा रही थी। अत: जेल अधिकारियों ने तीनों के शवों के टुकड़े-टुकड़े कर जेल के पीछे नाली से बाहर धकेला और चोरी-छिपे ले जाकर रात्रि में ही सतलुज नदी के तट पर हुसैनी वाला पुल के निकट फूँक डाला। इनके सम्मान में 23 मार्च का दिन शहीदी दिवस घोषित किया जा चुका है।

फाँसी के बाद भगत सिंह की यशधारा समस्त भारत में चरम सीमा पर थी। वह युवकों के हृदय-सम्राट बन गये।

सरदार किशनसिंह
(भगतसिंह के पिता)

वह पिता भाग्यशाली होता है जिसका पुत्र ही उसकी पहचान बन जाए। ऐसे ही सरदार किशन सिंह को शहीदे आज़म भगत सिंह के पिता होने का गौरव प्राप्त हुआ। सरदार किशन सिंह बड़े राष्ट्रभक्त थे एवं आर्य समाज के कट्टर समर्थक थे। अंग्रेजों की नीति के विरुद्ध जेल भी जा चुके थे। सरदार किशन सिंह के राष्ट्र-प्रेम का इसी बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्होंने भगतसिंह के यज्ञोपवीत के समय ही ऐलान कर दिया था कि -''भगतसिंह को खिदमते वतन के लिए वक्फ़ कर दिया गया है।'' भगतसिंह को मृत्यु दण्ड घोषित होने पर उन्होंने भगत सिंह के बचाव हेतु ट्रिब्यूनल के सम्मुख एक याचिका पेश कर दी। अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए किशन सिंह जीवन भर पुत्र-प्रेम एवं राष्ट्र-प्रेम के अन्तर्द्वंद्वके बीच झूलते रहे। कभी विचलित भी हुए तो उनके लाडले पुत्र भगतसिंह ने उन्हें विचलित नहीं होने दिया। भगत सिंह अपने क्रांतिकारी कदम को सही ठहराते हुए बलिदान दे कर राष्ट्र के युवाओं में एक नई चेतना पैदा करना चाहते थे। उन्होंने पिता जी द्वारा बचाव की याचिका को अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध ठहराते हुए पिता को एक कड़ा पत्र लिखा-

''मेरी जिंदगी इतनी कीमती नहीं जितना आप समझते हैं। कम से कम मेरे लिए जीवन का इतना मूल्य नहीं, कि सिद्धान्तों की बलि देकर उसे बचाया जाय।''

भगत सिंह ने इन कठोर शब्दों में कुछ न कहना चाहते हुए भी बहुत कुछ कह दिया। उस दिन एक पिता अपने ही पुत्र की अदालत में निरपराध होते हुए भी अपने को अपराधी अनुभव कर रहा था और एक पुत्र अपने शत्रु की अदालत में अपराधी होते हुए भी गर्व से निरपराध होने का दावा कर रहा था।

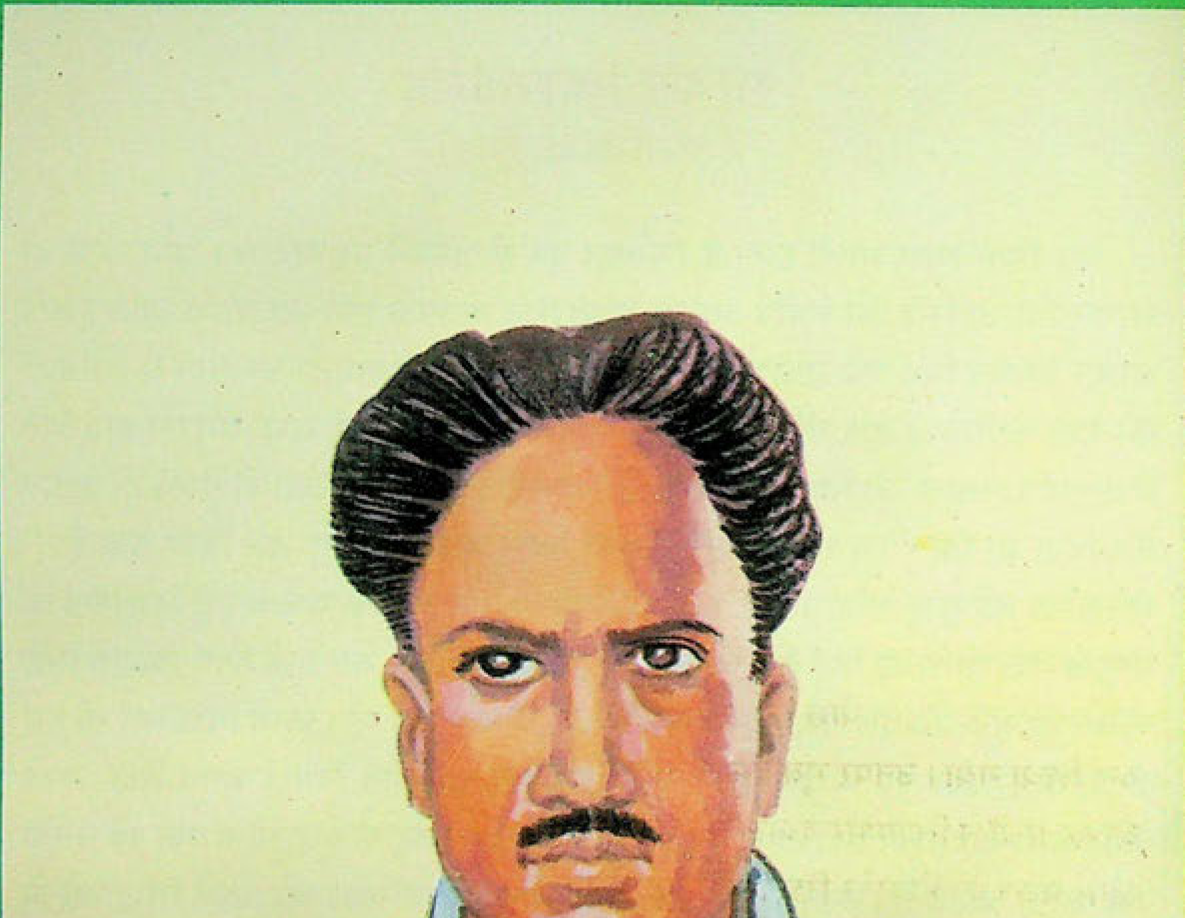

विशम्भर दयाल

विशम्भरदयाल बहरोर, अलवर (राजस्थान) के निवासी थे एवं चन्द्रशेखर आजाद के विश्वस्त साथी थे। वह गड़ोदिया स्टोर, चाँदनी चौक दिल्ली में नौकर थे। चन्द्रशेखर आजाद के दल को धन की अत्यन्त आवश्यकता थी। विशम्भर दयाल के संकेत पर ही आजाद ने 3 जून, 1930 को गड़ोदिया स्टोर पर छापा मार कर स्टोर की जमा राशि लूट ली। आजाद ने विशम्भर दयाल एवं छैलबिहारी को हथियार खरीदने हेतु धन देकर राजस्थान भेजा। इसी बीच 27 फरवरी, 1931 को चन्द्रशेखर आजाद ने पुलिस से संघर्ष करते हुए आत्म बलिदान कर लिया। इस समाचार से विशम्भर दयाल को बड़ा आघात लगा। वह उज्जैन में पंडित सूर्य नारायण व्यास के घर में रुके हुए थे। वहीं से पुलिस उनके पीछे लग गई। 16 मार्च, 1931 को विशम्भर दयाल को गिरफ्तार कर लिया गया। उनपर मुकदमा चलाने हेतु पुलिस उन्हें दिल्ली ले आई। गड़ोदिया बैंक के खजांची ने विशम्भर दयाल को बचाने हेतु बयान दे दिया कि धन लूटा ही नहीं गया। अतः मुकदमे में उनके खिलाफ कोई सबूत नहीं था। लेकिन पुलिस उन्हें छोड़ना नहीं चाहती थी। अतः पुलिस ने उन्हें दिल्ली के एक अस्पताल में अपेंडिक्स के आपरेशन के बहाने मरवा डाला। 22 अप्रैल, 1931 को विशम्भर दयाल ने शहादत प्राप्त की।

मास्टर दा सूर्यसेन

मास्टर सूर्यसेन का जन्म 18 अक्तूबर, 1893 को चटगाँव जिले के नवपाड़ा में हुआ था। सूर्यसेन ने देश की आज़ादी की खातिर अपनी अध्यापक की नौकरी छोड़ दी। भूमिगत रह कर उन्होंने असम, सिलचर, करीम गंज, गुवाहाटी एवं शिवसागर आदि क्षेत्रों में क्रांतिकारी संगठन स्थापित किये। 1924 में गिरफ्तार होकर 4 वर्ष का कारावास भोगा। रिहा होते ही उन्होंने 'इंडियन रिपब्लिकन आर्मी' का गठन किया। इस आर्मी में 13-14 वर्ष से 20-22 वर्ष तक के युवा सैनिक थे। दिनांक 18 अप्रैल, 1930 को इन्होंने चटगाँव के फौजी एवं पुलिस दोनों शस्त्रागारों को लूट कर ब्रिटिश शासन की सत्ता ही समाप्त कर दी। 4 दिन तक चटगाँव पर 'रिपब्लिकन आर्मी' का ध्वज लहराता रहा। दिनांक 23 अप्रैल को ब्रिटिश फौज के साथ जलालाबाद की पहाड़ी पर इनके सैनिकों की पुन: टक्कर हुई। इनके पचास सैनिकों ने शत्रु के 2000 सैनिकों से लोहा लिया। इनकी सेना ने अपने 10 सैनिक खोकर शत्रु के 160 सैनिकों को मार गिराया। सूर्यसेन को गिरफ्तार करने के लिए दस हजार के इनाम की घोषणा हो गई। ढलघाट में ब्रिटिश फौज ने सूर्यसेन को चारों ओर से आ घेरा। दोनों ओर से गोली वर्षा हुई। इस मुठभेड़ में कैप्टन कैमरान मारा गया। सूर्य सेन प्रीति लता के साथ बच निकले। 16 फरवरी, 1933 को गोयेराला के पास सूर्यसेन को गिरफ्तार कर लिया गया। 11 जनवरी, 1934 को इन्हें फाँसी पर लटका दिया गया। फाँसी के तख्ते की ओर ले जाते हुए सूर्य सेन ने वन्देमातरम् का नारा बुलन्द कर दिया। बन्द न करने पर इन्हें खूब पीटा गया। लेकिन वन्देमातरम् उद्घोष और तेज होता गया। अत: इन्हें इतना मारा गया कि रास्ते में ही उनके प्राण निकल गये। उनके शव को फाँसी पर लटका कर फाँसी की रस्म पूरी की गई।

प्रीतिलता वद्देदार

प्रीतिलता वद्देदार का जन्म मई सन् 1911 में गोलपाड़ा, चटगाँव (बंगलादेश) में हुआ था। इनके हृदय में देशभक्ति की भावना बचपन से ही कूट-कूट कर भरी थी। जलियाँ वाला बाग हत्याकांड की घटना ने प्रीतिलता के अन्दर अंग्रेजों के प्रति नफरत का बीजारोपण कर दिया। इसी कारण स्कूल में बच्चों के साथ 'ब्रिटिश सम्राट' के प्रति वफादारी की शपथ लेते समय वे 'ब्रिटिश सम्राट' शब्द के स्थान पर 'भारत माता' शब्द का प्रयोग करने लगीं। प्रीतिलता ने कोलकाता में अध्ययन करते हुए 'छात्र संघ' एवं 'दीपाली संघ' दो क्रांतिकारी संगठनों की सदस्यता ग्रहण कर ली। यहीं उन्होंने तलवार, लाठी, बल्लम व भाला तथा पिस्टल चलाने का अभ्यास कर लिया। बाद में उन्होंने अध्यापिका की नौकरी कर ली। लेकिन मास्टर सूर्य सेन की 'इंडियन रिपब्लिकन आर्मी' की सदस्या बन कर नौकरी छोड़ दी। प्रीतिलता भेष बदल कर कई बार जेलों में क्रांतिवीरों के साथी राजबंदियों से मिल कर उन्हें संदेशों का आदान-प्रदान करती रहीं। 12 जून, 1932 को सावित्री देवी के मकान में प्रीतिलता, सूर्य सेन व अन्य साथियों को पुलिस ने घेर लिया। प्रीतिलता बड़े साहस के साथ फायरिंग करती हुई स्वयं बच निकली और सूर्य सेन को भी सुरक्षित बचा ले गई। चटगाँव शहर में पहारताली पर यूरोपियन क्लब में रात्रि को अंग्रेज अधिकारी क्रांतिवीरों पर जुल्म ढाने की योजना बनाते थे। 24 सितम्बर, 1932 को वह पुलिस के वेश में अपने दल के साथ उस क्लब पर पहुँच गई। वहाँ अंग्रेज अधिकारियों पर दनादन गोलियों की वर्षा कर दी। वहाँ मौजूद सुरक्षा अधिकारियों ने तुरंत इन पर जवाब में गोलियाँ चलाईं। प्रीतिलता की कलाई गोलियों से छलनी हो गई। उसे सुरक्षा अधिकारियों ने घेर लिया। जब उसने देखा कि अब गिरफ्तारी से बचने का कोई उपाय नहीं है तो सायनायड जुबान पर रख कर आत्म-बलिदान कर शहादत प्राप्त कर ली।

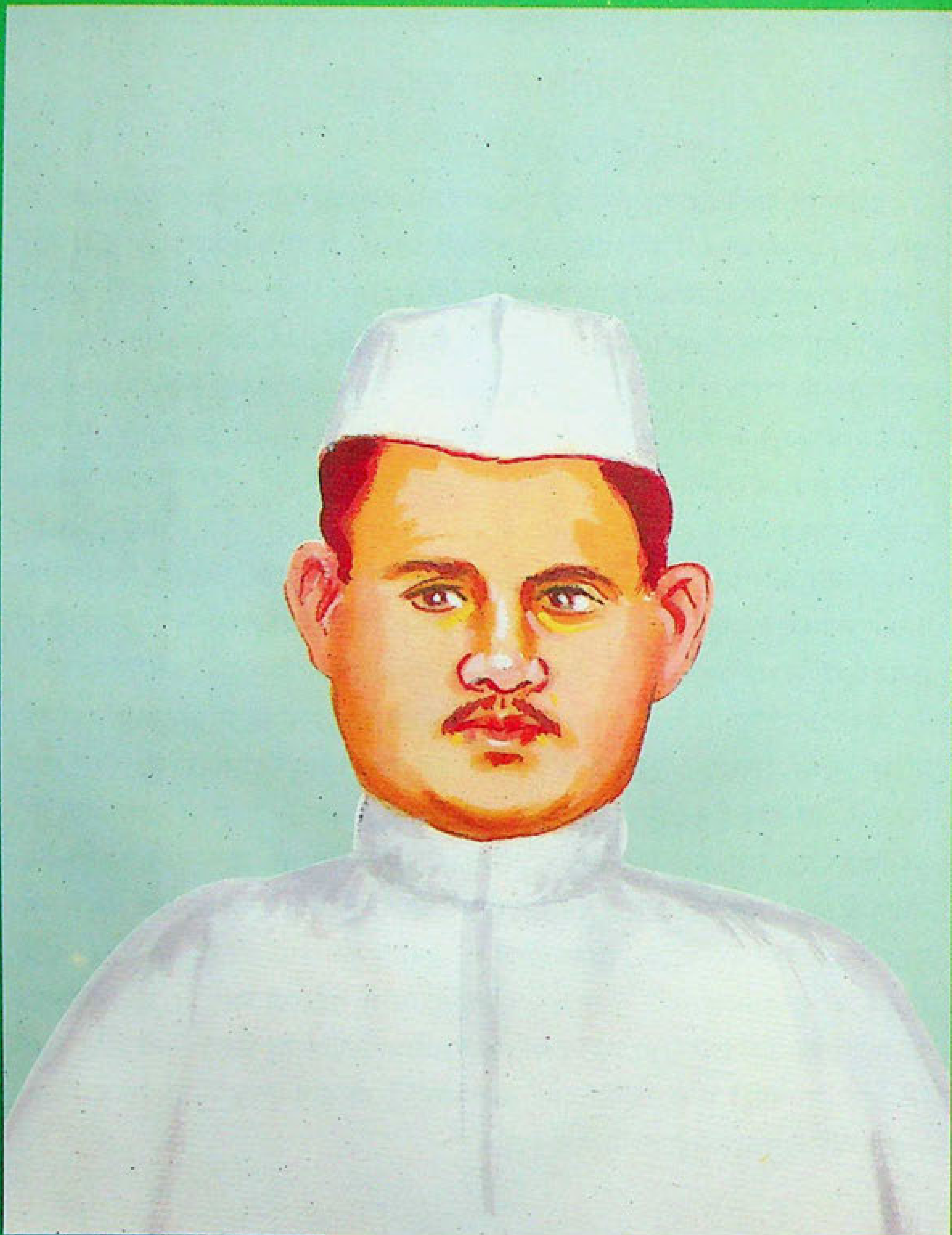

वैकुण्ठलाल शुक्ल

वैकुण्ठलाल शुक्ल का जन्म जलालपुर, मुजफ्फरपुर (बिहार) में 1910 में हुआ था। वह बचपन से ही कोई ऐसा कार्य करना चाहते थे कि उन्हें भी क्रांतिकारी कहलाने का गौरव प्राप्त हो। फणीन्द्रनाथ घोष क्रांतिकारियों की केन्द्रीय समिति का सदस्य था। आजादी के लिए जिन लोगों ने अपना जीवन दाँव पर लगा रखा था, फणीन्द्र उन्हीं की जान का दुश्मन बन गया। यद्यपि वह जेल में था लेकिन धन के लालच में उसने सरकारी गवाह बन कर क्रांतिवीरों के भेद पुलिस को देने आरम्भ कर दिये। उसी समय चन्द्रशेखर आजाद के साथी भगवान दास माहौर भी जेल में थे। चन्द्रशेखर आजाद ने माहौर के पास पिस्तौल भेज कर फणीन्द्र का वध करने का आदेश दिया। लेकिन माहौर द्वारा गोली चलाने पर भी वह बच गया। फणीन्द्र का वध बहुत आवश्यक था। वह क्रांतिवीरों के लिए फाँसी का फंदा बना हुआ था। अतः वैकुण्ठ लाल शुक्ल ने निश्चय किया, ''मैं करूँगा फणीन्द्र का वध।''

पुलिस को वैकुण्ठलाल पर शक हो गया। एक दिन वे अपने कपड़े तालाब के किनारे रख कर स्नान कर रहे थे। तभी एक दरोगा ने आकर उनके कपड़ों में रिवाल्वर पकड़ा। वैकुण्ठलाल ने देख लिया। वे तालाब में डुबकी लगा कर दूसरी तरफ निकले और भाग गये। पुलिस ने फणीन्द्र नाथ घोष को सुरक्षा गार्ड दिया हुआ था। वह बेतिया में अपना व्यापार जमाना चाह रहा था। वैकुण्ठलाल भी बेतिया पहुँच गये। एक दिन बाजार में उन्होंने फणीन्द्रनाथ को गोलीमार कर यमलोक पहुँचा दिया और गिरफ्तारी से बच कर भाग निकले। बाद में सोनपुर में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उस समय भी उनके पास से एक बम बरामद हुआ।

सरकार उनसे इतना घबराती थी कि मोतीहारी जेल में ही अदालत कायम कर वहीं मुकदमा चलाया गया। उन्हें फाँसी की सजा सुना दी गई। 14 मई, 1934 को गया जेल में उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया।

शचीन्द्रनाथ सान्याल

शचीन्द्रनाथ सान्याल का जन्म 3 जून, 1893 में वाराणसी (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। शचीन्द्र को देशभक्ति के संस्कार अपनी माँ से मिले थे। जिसका प्रमाण है यह पत्र– ''माँ से बड़ी है मातृभूमि। उसके लिए किया गया कोई भी त्याग या बलिदान कम है। प्राणों का उत्सर्ग भी कम . ...'' उपरोक्त पंक्तियाँ हैं जेल में बंद शचीन्द्र के नाम उस माँ के पत्र की जिसके तीन बेटे पहले ही जेल की सींखचों में बंद थे और 8 वर्ष का चौथा बेटा भी जेल जाने की जिद पकड़ रहा था। क्रूर सरकार ने घर-सम्पत्ति जब्त कर ली थी। माँ बच्चों के साथ रिश्तेदारों की शरण में थी। गदर पार्टी ने 1915 में सारे देश की सैनिक छावनियों के भारतीय सैनिकों को 21 फरवरी के दिन अंग्रेज सरकार के विरुद्ध एक साथ क्रांति हेतु तैयार कर लिया था। शचीन्द्र नाथ सान्याल को बनारस की छावनी का दायित्व सौंपा हुआ था। लेकिन इस क्रांति के बारे में सरकार को पूर्व सूचना मिल गई। अत: क्रांति आरम्भ होने से पूर्व ही सरकार ने छावनियों के भारतीय सैनिकों से हथियार रखवा लिये। 500 से भी अधिक क्रांतिवीरों को गिरफ्तार कर लम्बी सजाएँ दी गईं। 26 जून, 1915 को शचीन्द्र सान्याल भी पकड़े गये। उन्हें आजीवन कारावास देकर अंडमान (कालापानी) भेज दिया गया। उनको दी जाने वाली यातनाओं के बारे में सुनकर ही उनकी माँ ने शचीन्द्र को उपरोक्त पत्र लिखा था। राज-बंदियों को रिहाई के शाही फरमान से वे 1920 में रिहा हुए लेकिन झूठे आरोप लगा कर 1925 में पुनः कारावास में डाल दिया। 1937 में रिहा होने के बाद 1941 में पुनः गिरफ्तार कर लिया गया। यह जैसे ही जेल से छूटते पुनः ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध गतिविधियाँ आरम्भ कर देते। अबकी बार सरकार ने उन्हें देवली कैम्प की जेल में रखा। वहाँ कुपोषण से इनका स्वास्थ्य खराब हो गया। 1945 में गोरखपुर में नजरबंद अवस्था में ही यह क्रांतिवीर सदैव के लिए चिर-निद्रा में सो गया।

ऊधमसिंह

ऊधमसिंह का जन्म 26 दिसम्बर, 1899 को सुनाम, संगरुर (पंजाब) में सरदार टहलसिंह के पुत्र के रूप में काम्बोज परिवार में हुआ था। माता-पिता का सर से साया उठ जाने के बाद ऊधम सिंह का बचपन अनाथालय में बीता। जलियाँ वाले बाग के नृशंस हत्याकाण्ड से वीर ऊधम सिंह का हृदय चीत्कार कर उठा। इस वीर ने हत्या काण्ड के जिम्मेदार ब्रिगेडियर रेजिनाल्ड एडवर्ड हैरी डायर को मारने का प्रण कर लिया। सरकार को इन पर संदेह हो गया अत: उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। 4 वर्ष के कारावास के बाद वे मुक्त हुए। अब उन्होंने अपना नाम बदल कर 'राम मुहम्मद सिंह' रख लिया जोकि हिन्दू-मुस्लिम-सिख एकता का प्रतीक था। डायर से प्रतिशोध की ज्वाला में धधकते हुए वे अवसर की तलाश में रहने लगे। जब उन्हें पता चला कि हैरी डायर 8 वर्ष की लम्बी बीमारी के बाद लन्दन में मर गया तब उन्होंने पंजाब के तत्कालीन गर्वनर सर माइकेल ओ' डायर को मारने का फैसला किया। 1939 में वे इंग्लैंड पहुँच गये। यहाँ उन्होंने माइकेल ओ' डायर की गतिविधियों पर कड़ी नजर रखी। 13 मार्च, 1940 को इंग्लैंड के कैक्स्टन हाल में ईस्ट इंडिया एसोसिएशन की सभा थी। उसी सभा में ऊधमसिंह ने माइकेल ओ' डायर को गोलियों से भून दिया। वे भागते उससे पहले ही एक अंग्रेज महिला ने उनका रास्ता रोक लिया। ऊधमसिंह बोले- ''महिलाओं और बालकों पर गोलियाँ अंग्रेज चलाते हैं भारतीय नहीं'' और रिवाल्वर फेंक कर गिरफ्तार हो गये। वह अंग्रेज महिला ऊधमसिंह के आदर्शों की भक्त बन चुकी थी। उसने ऊधमसिंह को फाँसी से बचाने का भरसक प्रयास किया। लेकिन 31 जुलाई, 1940 को ऊधमसिंह को फाँसी दे दी गई। 20 वर्ष, ग्यारह माह बाद अपनी प्रतिशोध की ज्वाला को ठंडी कर फाँसी का फंदा चूमते हुए ऊधमसिंह बहुत प्रसन्न थे।

गणेशशंकर विद्यार्थी

अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी का जन्म दिनांक 25 अक्तूबर, 1890 को प्रयाग (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। वे उत्कृष्ट देश-भक्ति की जीती जागती मिसाल थे। उन्होंने पत्रकारिता को देश-सेवा का सर्वोत्तम साधन माना। सन् 1911 में दिल्ली दरबार के समय जब बडौदा नरेश के स्वाभिमान पूर्ण आचरण की समस्त भारत के पत्रों द्वारा आलोचना कर ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति निष्ठा का यश लूटा जा रहा था ऐसे समय में विद्यार्थी जी ने बडौदा नरेश के स्वाभिमानपूर्ण आचरण का समर्थन कर उनकी प्रशंसा में लेख लिखा। उस लेख से वह भारत के मूर्धन्य पत्रकारों एवं साहित्यकारों में चर्चा का केन्द्र बन गये। उनके लेख 'कर्मयोगी' एवं 'सरस्वती' पत्रिकाओं में छपते थे। यह पत्रिकाएँ साहित्यिक थी। अत: पं. शिव नारायण मिश्र जी के सहयोग से उन्होंने 9 नवम्बर, 1913 को कानपुर से साप्ताहिक 'प्रताप' निकालना आरम्भ कर दिया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की राष्ट्र-भक्ति से ओत-प्रोत निम्न पंक्तियाँ इस पत्र की मुख वाणी बनी–

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं है, पशु निरा है और मृतक समान है.

इस पत्र के माध्यम से वह देश-भक्ति पूर्ण भावों को प्रकट करके अपनी चिर-पिपाशा को शांत करने लगे। यद्यपि ब्रिटिश सरकार द्वारा उन्हें कई बार गिरफ्तार किया गया, लेकिन सरकार इस पत्र को बन्द नहीं करा सकी। 1920 में यह दैनिक हो गया।

विद्यार्थी जी ने ही सरदार भगतसिंह की फरारी के समय उन्हें कुछ समय के लिये अपने मित्र के रूप में छद्म नाम से शिवपुर (अलीगढ़) में ठाकुर रोडर सिंह के घर पर छिपा कर रखा था। गणेशशंकर विद्यार्थी जी के ही आग्रह पर श्याम लाल गुप्त पार्षद ने 'झंडा ऊँचा रहे हमारा....' झंडा गीत लिखा। दिनांक 25 मार्च, 1931 को किन्हीं अज्ञात मुस्लिम धर्मान्धों के हाथों वह शहीद हो गये।

जयप्रकाश नारायण

जयप्रकाश नारायण का जन्म 11 अक्तूबर, 1902 को जिला सारन (बिहार) में हुआ था। 1922 में अध्ययन हेतु वे अमेरिका गये। वहाँ से 8 वर्ष बाद लौटे। लौटते ही नौकरी करने की बजाय पं. नेहरू जी के कहने पर वे स्वतंत्रता आन्दोलन में कूद पड़े। श्री जयप्रकाश नारायण को राजद्रोह के अपराध में गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें बिहार की हजारीबाग जेल में रखा गया था। दीपावली की रात्रि में जयप्रकाश जी, योगेन्द्र शुक्ल, रामानन्द मिश्र, सूर्यनारायण सिंह, गुलाबचन्द गुप्ता तथा शलिग्राम सिंह जेल की दीवार फाँद कर फरार हो गये।

अपने फरारी जीवन में ही वे स्वतंत्रता संघर्ष में निरंतर जुटे रहे। उन्होंने नेपाल पहुँच कर 'आजाद दस्ता' तैयार किया। इसके तत्वावधान में अंग्रेजी शासकों पर हमले का प्रशिक्षण दिया जाता था।

दिनांक 18 सितम्बर सन् 1943 को ट्रेन से जाते समय अमृतसर और लाहौर स्टेशनों के बीच उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। लहौर के शाही किले में बंद कर उन्हें अमानवीय यातनाएँ दी गईं। बाद में उन्हें आगरा सैन्ट्रल जेल में ले जाया गया।

जयप्रकाश नारायण जी समाजवादी विचारधारा से जुड़े थे। 1976 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी द्वारा देश में 'आपातकालीन स्थिति' घोषित होने पर अन्य नेताओं के साथ उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। बाद में जब मुक्त हुए तो उन्होंने सारे देश को नेतृत्व प्रदान किया लेकिन कोई पद ग्रहण नहीं किया। इनकी विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। स्वाधीनता के बाद देश में फैले भ्रष्टाचार से वह व्यग्र हो उठे।

वह प्रायः कहा करते थे– 'स्वतंत्रता सेनानियों के सपने तार-तार होते जा रहे हैं। देश में सुराज स्थापित करने के लिये एक और क्रांति की आवश्यकता है'। किडनी खराब हो जाने से लम्बी बीमारी के बाद 8 अक्तूबर, 1979 को उनका निधन हो गया।

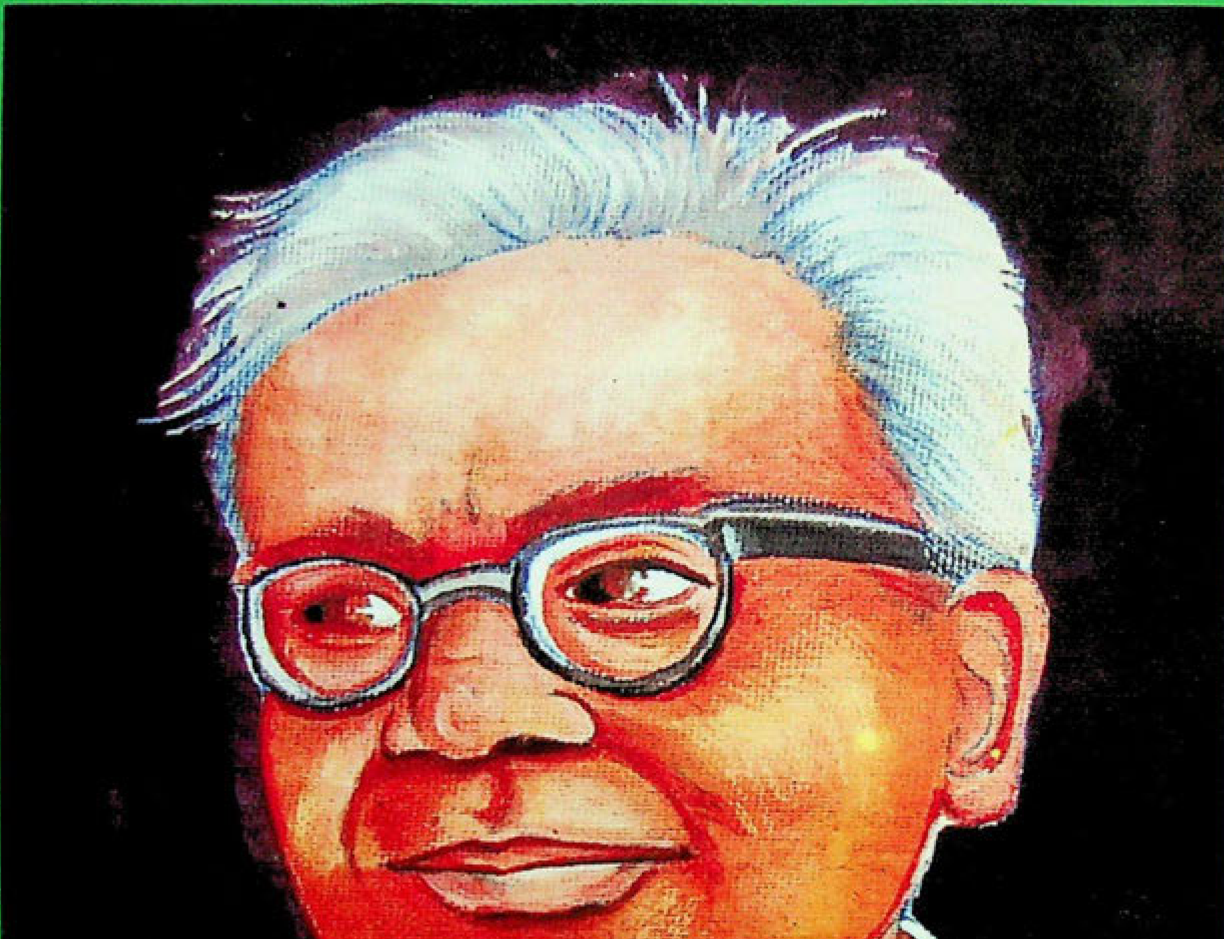

डॉ० राममनोहर लोहिया

डॉ. राममनोहर लोहिया का जन्म सन् 1910 में फैजाबाद जिले के गाँव अकबरपुर (उत्तर प्रदेश) में हीरा लाल अग्रवाल के पुत्र के रूप में हुआ था। सन् 1933 में उन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय से 'नमक सत्याग्रह एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलन' शोध ग्रंथ पर 'डाक्टरेट' की उपाधि प्राप्त की। प्रारम्भ में वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता थे लेकिन 1939 में विश्व युद्ध छिड़ जाने पर नेताजी सुभाष की तरह इनका भी कांग्रेस से मतभेद हो गया। इस विश्वयुद्ध को वह भारत की आजादी हेतु सर्वोत्तम अवसर मानते थे। इनके ब्रिटिश साम्राज्य विरोधी जोशीले भाषणों के कारण उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। मुक्त होते ही वे पुन: सक्रिय हो गये। 1942 के 'अंग्रेजो! भारत छोड़ो' आन्दोलन में वे भूमिगत रहकर जय प्रकाश नारायण के साथ मुम्बई एवं कोलकाता से गुप्त रेडियो के प्रसारणों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य पर प्रहार करते रहे। 20 मई, 1944 को उन्हें पुन: गिरफ्तार कर लिया गया। जेल से मुक्त होते ही वह पुर्तगाल गये। वहाँ मारमागोआ नगर में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध भाषण देने के आरोप में गिरफ्तार कर लिये गये। इस बार उन्हें लाहौर जेल में भारी प्रतारणा एवं यातनाएँ झेलनी पड़ीं। भारत की आजादी की घोषणा होने पर ही 11 अप्रैल, 1946 को उन्हें जेल से मुक्त किया गया।

डॉ. लोहिया की गणना विश्व के अग्रणी समाजवादी चिंतकों में की जाती है। आजादी के बाद वह लोक सभा के सदस्य रहे। उन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की। दादर और नगर हवेली को पुर्तगाली शासन से मुक्त कराने हेतु सत्याग्रह आन्दोलन डॉ राम मनोहर लोहिया के द्वारा ही चलाया गया। यद्यपि उस समय उस आन्दोलन को पुर्तगाल शासन ने बेरहमी से कुचला लेकिन बाद में इनकी प्रेरणा से ही गोमंतक दल एवं स्वयं सेवकों के मात्र 117 क्रांतिवीरों द्वारा बिना सरकारी सहायता के इन बस्तियों को पुर्तगाली शासन से 2 अगस्त, 1954 को मुक्त करा लिया गया। 12 अक्तूबर, 1967 को यह महान् आत्मा पंच तत्व में विलीन हो गई।

आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन'

श्री क्षेमचन्द्र सुमन जी का जनम 16 सितम्बर, 1916 को हापुड़ तहसील के बाबूगढ़ गाँव में पं. हरिश्चन्द्र सारस्वत तथा भगवानी देवी के पुत्र के रूप में हुआ था। हिन्दी भाषा के प्रति इनका बचपन से लगाव था। सुमन जी ने गुरुकुल ज्वालापुर (हरिद्वार) से 1937 में 'विद्या भास्कर' की स्नातकीय उपाधि प्राप्त की। उसी वर्ष वे सहारनपुर से प्रकाशित 'आर्य' (साप्ताहिक पत्र) के सम्पादक नियुक्त किये गये।

सन् 1941 में सुमन जी लाहौर चले गये। वहाँ हिन्दी भवन के साहित्यिक प्रकाशनों का सम्पादन करने लगे। उन्हें 'हिन्दी मिलाप' पत्र का सहायक सम्पादक मनोनीत किया गया। 1942 में लाहौर राष्ट्रीय जागरण का केन्द्र बिन्दु बन चुका था। देश के अनेक राज्यों में स्वतंत्रता सेनानी पुलिस के चंगुल से बच कर लाहौर रहने लगे थे। लाहौर में सुमन जी का घर क्रांतिवीरों का आवास बना हुआ था।

सुमन जी 'मिलाप' में भड़काऊ लेखों के कारण 23 मार्च, 1943 को उन्हें भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हीं के साथ 'दैनिक मिलाप' के सम्पादक श्री लेखराज जी को भी बन्दी बनाया गया। लगभग डेढ़ वर्ष तक फिरोजपुर जेल में रहकर उन्होंने यातनाएं सहन कीं। इस जेल में उन्हें डॉ. युद्धवीर सिंह (दिल्ली), गोपीनाथ अमन, वृषभानु, बृजकृष्ण चाँदीवाला जैसे जाने-माने स्वाधीनता सेनानियों के साथ रहने का सौभाग्य मिला। फिरोजपुर जेल से मुक्त होते ही उन्हें उनके गाँव बाबूगढ़ (गाजियाबाद) में ले जाकर नजरबंद कर दिया।

सुमन जी ने 1943 से 1945 की अवधि में जेल जीवन तथा नजरबंदी के दौरान राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत अनेक कविताएं लिखीं, जो 'बन्दी के गान' संकलन में प्रकाशित हुई। सुमन जी की रचना 'हमारा संघर्ष' पुस्तक भारत के स्वाधीनता संग्राम का इतिहास है। उन्होंने 'कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास' व आजादी की कहानी आदि पुस्तकें लिखकर स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास को समृद्ध किया। 23 अक्तूबर, 1993 को वह दिवंगत हुए।

भगवतीचरण वोहरा

भगवतीचरण वोहरा का जन्म लाहौर (पंजाब) में सन् 1907 में हुआ था। भगवतीचरण वोहरा एवं सरदार भगतसिंह ने देश को आजाद कराने हेतु नवयुवकों का एक संगठन 'नौजवान भारत सभा' बनाया। लाहौर में भगतसिंह और उनके साथियों ने सांडर्स का वध कर दिया। लाहौर के चप्पे-चप्पे पर पुलिस का पहरा था। भगवतीचरण वोहरा की पत्नी दुर्गा भाभी ने अपने तीन वर्षीय पुत्र शची के जीवन को दाव पर लगा दिया। वह अंग्रेज पति-पत्नी के जोड़े के रूप में भगतसिंह को बड़ी चतुराई से लाहौर से निकाल ले गईं और उन्हें सुरक्षित कोलकाता पहुँचा दिया। भगवतीचरण ने दोनों को कोलकाता में देख कर आश्चर्य प्रकट किया और कहा - ''दुर्गा! मैं तो तुम्हें गाँव की भोली लड़की ही समझता रहा। लेकिन तुम तो क्रांति की मूर्ति दुर्गा हो। सचमुच तुम्हारी और मेरी शादी तो आज ही हुई है।''

भगवतीचरण वोहरा बम बनाने में निपुण थे। दिल्ली में वायसराय लार्ड इरविन की ट्रेन को बम से उड़ाने की योजना में वह शामिल थे। महात्मा गाँधी ने उनके इस प्रयास की आलोचना 'कल्ट आफ दी बम' लेख द्वारा की थी। भगवतीचरण और यशपाल ने 'फिलासफी आफ दी बम' लेख द्वारा उसका उत्तर दिया। भगतसिंह और उनके साथियों को जेल से भगाने की योजना हेतु भगवतीचरण 28 मई, 1930 को बम का परीक्षण कर रहे थे। रावी नदी के किनारे पर पैर फिसलने से बम उनके हाथ में ही फट गया। उनके शरीर के चिथड़े उड़ गये। पुलिस का भय था। अत: उनके साथियों नें उनके शव को वहीं एक झाड़ी के नीचे मिट्टी में दबा दिया। कुछ महीने बाद एक मुखबिर ने इस घटना की पुलिस को सूचना दे दी। पुलिस ने खोद कर उनके अस्थिपंजर को निकाला और कचहरी में पेश किया। न जाने कब तक भारत माता के उस पुत्र का अस्थिपंजर कचहरी के बक्सों में बंद पड़ा रहा? विप्लवी की नियति और गति का अनुमान लगाना कठिन है।

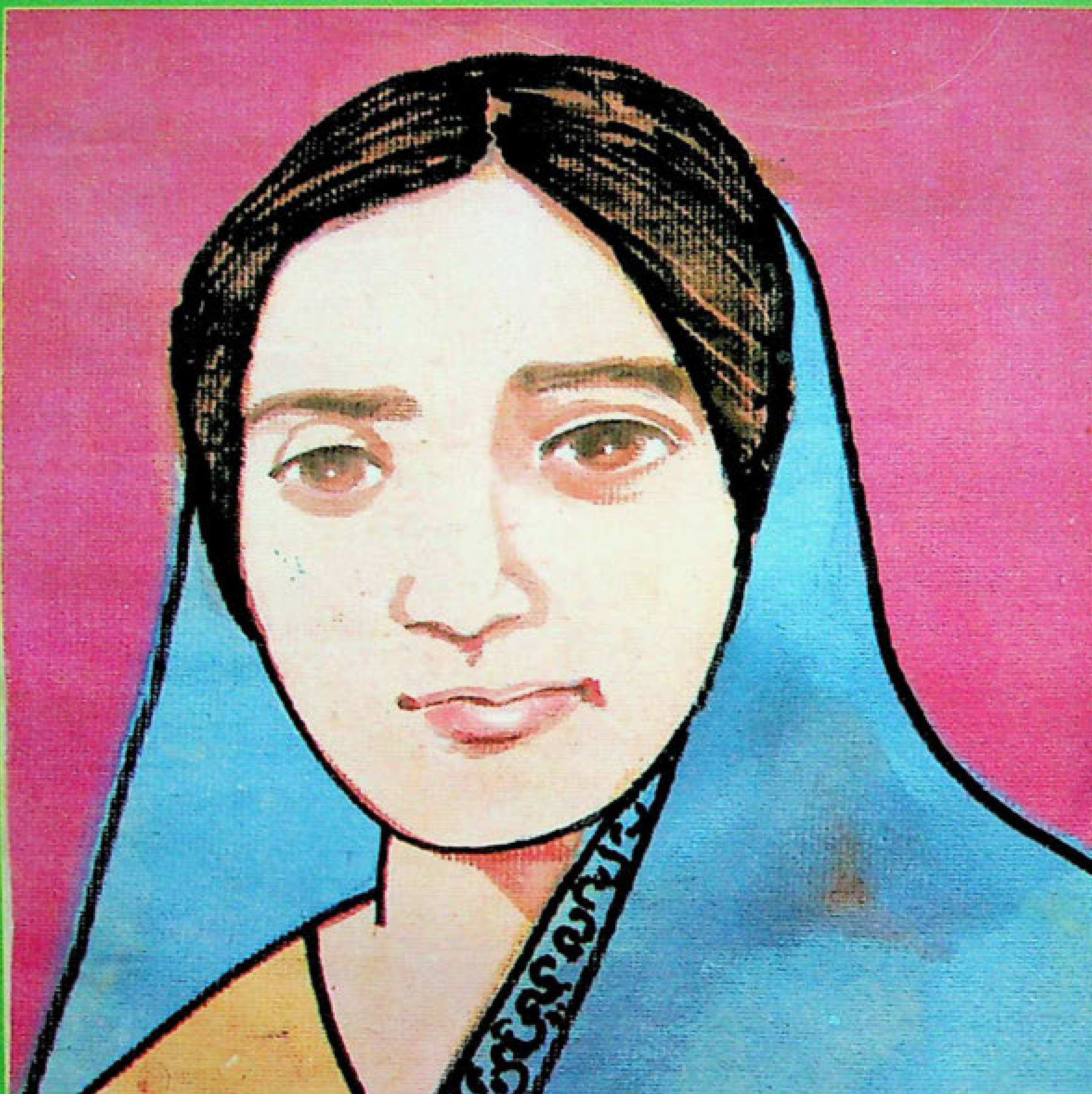

दुर्गा भाभी

दुर्गा भाभी का जन्म 7 अक्तूबर, 1907 को हुआ था। वह प्रसिद्ध क्रांतिकारी भगवती चरण वोहरा की धर्मपत्नी थीं। दुर्गा भाभी ने परिवार, परिस्थिति अथवा आर्थिक संकट से जूझते हुए राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व से कभी समझौता नहीं किया। सदैव ''राष्ट्र सर्वोपरि'' की भावना से ब्रिटिश सत्ता से जूझती रहीं। कर्तारसिंह सराबा की फाँसी के बाद उनके चित्र का अनावरण करना था। चित्र पर पड़े खद्दर के सफेद कपड़े को अपनी उँगली चीरकर अपने रक्त से उस पर रक्तिम-बार्डर बना डाला। चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह व अन्य क्रांतिवीरों को बम व पिस्तौलें ठिकानों पर पहुँचाने का कार्य दुर्गाभाभी करती थीं। इनके तीन वर्षीय पुत्र शचि की ममता भी इनके मार्ग को नहीं रोक सकी। मुम्बई में एक 'एक्शन' के समय अपने पुत्र को क्रांतिवीर गणेश दामोदर सावरकर को सौंप आईं। काले वस्त्रों में लम्बे बालों के कारण सरदार का वेश धारण किया एवं लेमिंगटन रोड पर एक सार्जेन्ट को गोली का निशाना बना सुरक्षित भाग निकलीं। पुलिस काले वस्त्रों के सरदार को तलाशती रही। लाहौर में इनके तीन मकान थे। तीनों ही सरकार ने जब्त कर लिये थे। कैसी विडम्बना थी- एक तो महिला, छोटा बच्चा, पुलिस के वारंट और फरारी जीवन, बच्चे को गोद में उठाये दिन में तीन-तीन बार मकान बदलना, यही उनकी नियति बन चुकी थी। वह अदम्य साहस की मिसाल थीं। कई बार पुलिस से उनका सामना हुआ लेकिन दुर्गा भाभी का एक हाथ सदैव जेब में पिस्तौल पर होता था। पुलिस भी यह समझती थी। गोलीकाण्ड से बचने के कारण पुलिस गिरफ्तारी टाल जाती थी। सांडर्स वध के बाद भगतसिंह की पत्नी बन अंग्रेज पति-पत्नी के जोड़े के रूप में पुलिस की आँखों में धूल झोंककर भगतसिंह को सुरक्षित कोलकाता पहुँचाने का जोखिम भरा कार्य किया। भगतसिंह को जेल से छुड़ाने हेतु बम परीक्षण करते समय इनके पति भगवती चरण शहीद हो गये। वे तब भी पथ से न विचलित हुईं और न ही साहस खोया। आजादी के बाद यह क्रांतिमूर्ति सरकारी उपेक्षा का शिकार रहते हुए 15 अक्तूबर, 1999 को अमरत्व को प्राप्त हुईं।

शहीद बच्चों की गौरव-गाथा

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में छात्र एवं बच्चों का योगदान विशेष सराहनीय रहा है। लेकिन दुर्भाग्य यह रहा कि उनकी कुर्बानी एवं बलिदान की गाथाओं से लेखकों एवं कवियों तथा इतिहासकारों की कलम अछूती ही रही। इन बालकों की मातृभूमि पर प्राण न्यौछावर करने की भी एक अजीब दास्ताँ है। इन्होंने अपने माता पिता एवं परिवार का मोह छोड़ कर स्वतंत्रता संघर्ष में भाग लिया एवं अल्पायु में ही मातृ-भूमि के ऋण से उऋण होने का गौरव प्राप्त किया।

1919 में 'रोलेट एक्ट' के विरोध के समय अमृतसर के कर्फ्यू, प्रतिबंधों और सेना के मार्च से भयभीत वातावरण में भी सैंकड़ों बच्चों का जलियाँवाले बाग की सभा में पहुँच जाना उनके साहस की कहानी कहता है। 1942 में आन्दोलन की बागडोर अपने हाथ में थाम कर हजारों छात्रों ने अपने बलिदान से एक इतिहास रच डाला। 22 एवं 23 फरवरी,1946 को मुम्बई में नौ-सैना क्रांति के समर्थन में सैंकड़ों बच्चों के बलिदान पर देश आज भी नतमस्तक है।

वसुदेवहरि चाफेकर

गोपीमोहन साहा

गुरूदासराम अग्रवाल

उदयचन्द जैन

कन्हईलाल दत्त

सुधीर गुप्त

रोशनलाल मेहरा

दत्तू रंगारी

अनन्त लक्ष्मण कन्हेरे

अब्दुल रसूल

काशीनाथ पगधरे

शंकर महाले

करतारसिंह सराबा

हरीकिशन

रमेशदत्त मालवीय

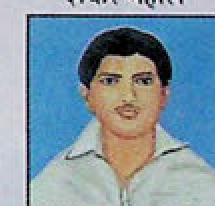
हेमू कालाणी

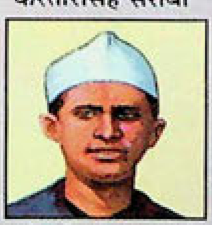
नलिनीकान्त बागची

रामकृष्ण विश्वास

रामा स्वामी

रामेश्वर बनर्जी

हरिगोपाल बल

अनन्तसिंह

जनार्दन मामा

कुमारी मैना

मैना बिठूर के नाना साहब पेशवा की दत्तक पुत्री थी। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में नाना साहब ने बड़े साहस के साथ अंग्रेजों से टक्कर ली। लेकिन अंत में उन्हें भूमिगत होकर बिठूर छोड़ना पड़ा। पीछे से कुमारी मैना महल में अकेली ही रह गई। अंग्रेज सेनापति 'हे' को आदेश हुआ कि महल को आग लगादे। आग लगाने से पूर्व 'हे' ने महल की मूल्यवान वस्तुओं को लूटा। तभी उसने मैना को महल में देखा। मैना ने महल को आग न लगाने की प्रार्थना की। मैना 'हे' की मृत पुत्री की सहेली थी। अतः 'हे' ने मैना के प्रति कुछ सहानुभूति दिखाई। तभी प्रधान सेनापति अउट्रम वहाँ आ पहुँचा। उस ने 'हे' और मैना का संवाद सुना तो उसने 'हे' को बहुत फटकारा। नाना साहब पेशवा को पकड़वाने पर उस समय एक लाख रुपये का इनाम था। अउट्रम ने सोचा, 'मैना से उसके पिता का पता लगाया जा सकता है।' अतः बिठूर के महल को आग के हवाले करके वह मैना को कानपुर के किले में ले आया। वहाँ उसने नाना साहब का पता मालूम करने के लिए मैना को कठोर यातनाएँ दीं। न बताने पर उसने मैना को जलती चिता में झोंक दिया। मैना तड़पती हुई चिता से बाहर कूद पड़ी। नाना साहब का पता बताने के लिए उस पर पुनः दबाव डाला गया। फिर भी उसने नाना साहब का पता बताने से इन्कार कर दिया। अउट्रम के आदेश पर अधजली मैना को पुनः जबरदस्ती चिता में धकेल दिया गया। पिता की रक्षा की खातिर पुत्री का यह जौहर अद्वितीय है। उस समय कुमारी मैना की आयु मात्र तेरह वर्ष थी।

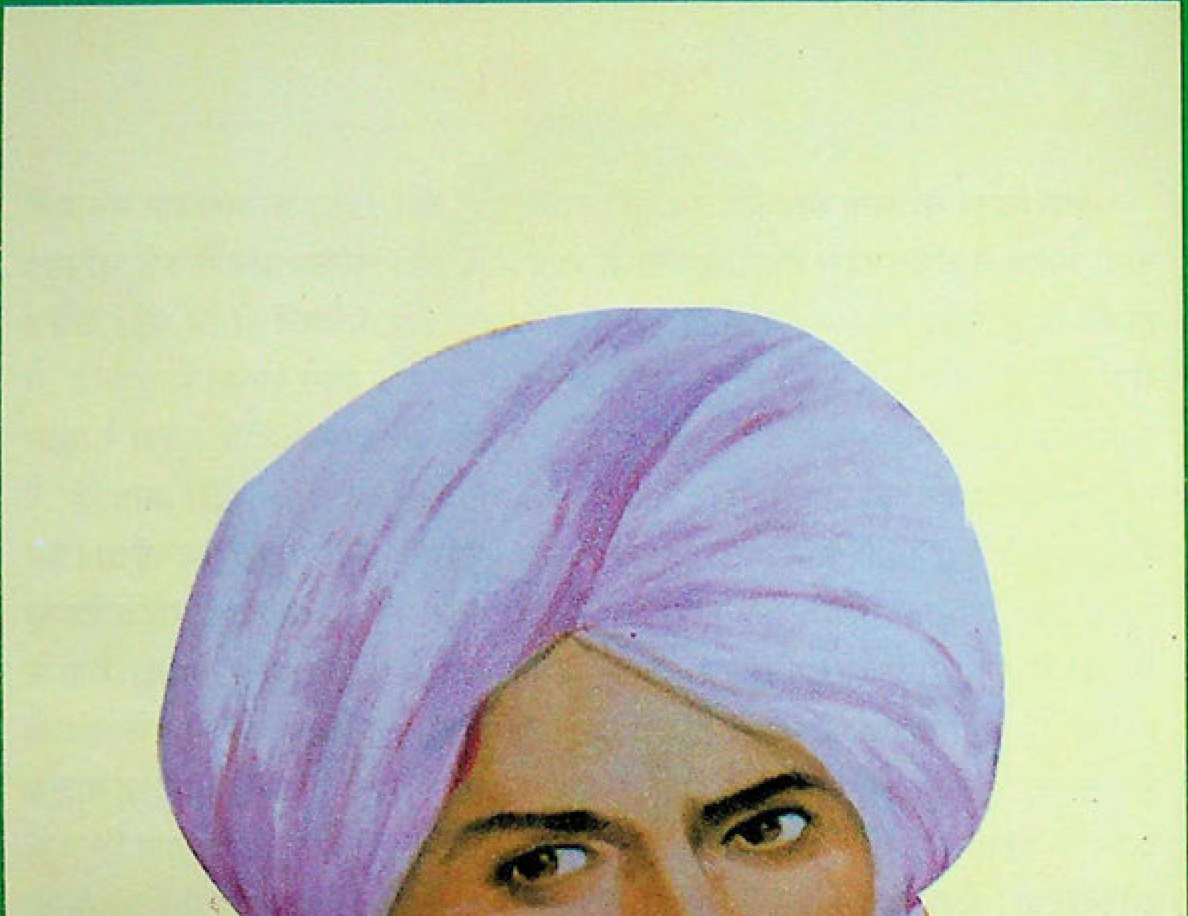

वसुदेव हरि चाफेकर

वसुदेव हरि चाफेकर एवं महादेव रानाडे

वसुदेव हरि चाफेकर एवं महादेव रानाडे दोनों का जन्म 1880 में पुणे महाराष्ट्र में हुआ था। 1897 में पूना में भयंकर प्लेग फैला। इस बीमारी को नष्ट करने के बहाने वहाँ के प्लेग कमिश्नर सर वाल्टर चार्ल्स रैंड ने पूना की जनता पर भारी अत्याचार किये। उसने महिलाओं को भी नहीं बख्शा। अत: जनता को उसके अत्याचारों से मुक्ति दिलाने हेतु वसुदेव के दो बड़े भाइयों दामोदर एवं बालकृष्ण चाफेकर ने रैंड का वध कर डाला। उसके वध की योजना में शामिल गणेश शंकर एवं रामचन्द्र दोनों द्रविड़ बंधुओं ने इनाम के लालच में रैंड की हत्या का भेद पुलिस को दे दिया। अत: दोनों चाफेकर बंधु पकड़े गये। वसुदेव के सबसे बड़े भाई दामोदर हरि चाफेकर को 18 अप्रैल, 1898 को ही फाँसी दे दी गई। बाल कृष्ण का भी फाँसी का फंदा इंतजार कर रहा था। इस घटना ने वसुदेव हरि चाफेकर को विचलित कर दिया। वह एक दिन अपने मित्र महादेव रानाडे से बोला- ''मेरे दोनों भाइयों को द्रविड़ भाइयों ने पकड़वाया है। उनकी फाँसी के वे ही जिम्मेदार हैं। मैं उन्हें इस गद्दारी की सजा अवश्य दूँगा। क्या तुम इस कार्य में मेरा साथ दोगे?'' महादेव ने उसका पूरा साथ देने का वचन दिया। दोनों ने मिलकर 8 फरवरी, 1899 को द्रविड़ बंधुओं का वध कर डाला और अपने भाइयों को पकड़वाने का बदला ले लिया। इसी अपराध में वसुदेव ने 8 मई को एवं रानाडे ने 10 मई, 1899 को फाँसी का फंदा चूम कर शहादत प्राप्त की। वसुदेव की फाँसी के चार दिन बाद 12 मई, 1899 को उसके मझले भाई बाल कृष्ण को भी फाँसी दे दी गई। इस प्रकार मातृ-भूमि की खातिर तीनों चाफेकर बंधुओं का बलिदान वन्दनीय है। बलिदान के समय दोनों क्रान्तिवीरों की आयु मात्र 19 वर्ष थी।

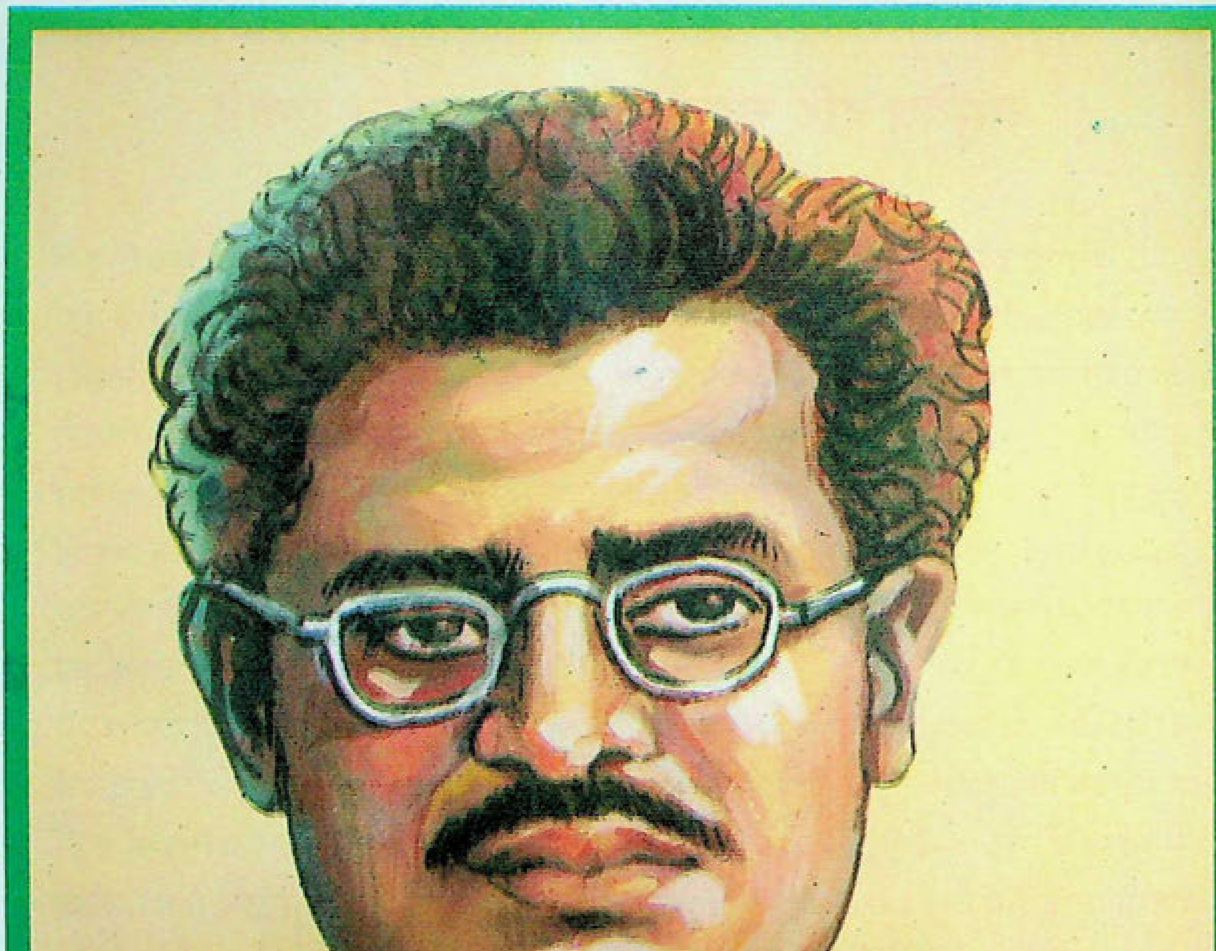

कन्हाईलाल दत्त

कन्हाईलाल दत्त का जन्म सन् 1888 में कृष्ण जन्माष्टमी के दिन चन्द्र नगर (पं. बंगाल) में हुआ था। मातृ-भूमि की आज़ादी की खातिर अलीपुर बम केस में 38 क्रांतिवीरों पर फाँसी की तलवार लटकी हुई थी, क्यों कि नरेन्द्र गोसाईं उनके विरुद्ध गवाही देने के लिये सरकारी गवाह बन गया था। अत: कन्हाई लाल दत्त ने जेल में रहते हुए नरेन्द्र गोसाईं का वध करने की सोच ली। उसने सत्येन्द्र बसु व भूप सिंह (विजय सिंह पथिक) को अपनी योजना में शामिल किया। नरेन्द्र गोसाईं को सुरक्षा घेरे में अस्पताल में रखा गया था। कन्हाई लाल दत्त भी उदर शूल के बहाने अस्पताल में दाखिल हो गया। सत्येन्द्र बसु का लिखा पत्र कन्हाई ने नरेन्द्र गोसाईं को दिया। इस में लिखा था – 'भाई नरेन्द्र मैं भी सरकारी गवाह बनना चाहता हूँ। तुम किसी तरह मेरे को कोई रास्ता सुझाओ'। नरेन्द्र ने पुलिस की मदद से सत्येन्द्र को अस्पताल बुलाया। सत्येन्द्र, नरेन्द्र व कन्हाई अस्पताल में इकट्ठे हो गये। इसी मुलाकात में सत्येन्द्र एवं कन्हाई लाल दत्त ने अपनी कोख में छिपी पिस्तौलों से नरेन्द्र की हत्या कर दी। नरेन्द्र गोसाईं की हत्या हो जाने के कारण 38 राजबंदियों को फाँसी से बचा लिया गया।

नरेन्द्र की हत्या के अभियोग में कन्हाई लाल ने 10 नवम्बर एवं सत्येन्द्र बसु ने 21 नवम्बर, 1908 को फाँसी का फंदा चूम कर शहादत प्राप्त की। कन्हाई लाल की कुर्बानी के कारण उसकी यशधारा से सारा भारत प्रभावित था। उसकी शव यात्रा में 50 हजार से भी अधिक लोग सम्मिलित थे। इस शव यात्रा में लोगों के उफान को देख ब्रिटिश सरकार ने भविष्य में शहीदों का शवदाह जेल में ही करने का निश्चय किया। लेकिन इस निश्चय का पूर्णत: पालन न हो सका। कन्हाई लाल दत्त ने केवल बीस वर्ष की आयु में शहादत प्राप्त की।

अनन्तलक्ष्मण कन्हेरे

अनन्तलक्ष्मण कन्हेरे का जन्म 1891 में आयटीमेटे खेड़ (महाराष्ट्र) में हुआ था। महाराष्ट्र में नासिक का जिलाधीश जैक्सन भारतीय देश-भक्तों पर अत्याचारों की सीमाएँ लाँघ चुका था। उसके काल में एक वकील सखाराम की जेल में हत्या, कथा वाचक जो लोगों को देश-भक्ति का प्रवचन देते थे, उनकी कथाओं पर रोक लगाना, वीर सावरकर के भाई गणेशदामोदर सावरकर को आजीवन कारावास, लोकमान्य तिलक को उनके दो लेखों पर 6 वर्ष तक काले पानी की सजा जैसी जघन्य घटनाएँ उसी के आदेश पर घटीं। अनन्तलक्ष्मण कन्हेरे ने छोटी आयु में ही लोगों को उसके अत्याचारों से मुक्ति दिलाने की ठान ली। 1909 में मदनलाल ढींगरा ने लंदन में कर्जन वायली की हत्या कर दी। इस साहसिक कार्य से उसे बड़ी प्रेरणा मिली। अतः वह एक क्रांतिकारी संस्था 'अभिनव भारत' का सदस्य बन गया। इसी संस्था के अन्तर्गत कन्हेरे ने पिस्तौल चलाना सीख लिया। विनायक देश पाण्डेय और गोपाल कृष्ण कर्वे ने कन्हेरे का साथ दिया। इन तीनों ने मिलकर जैक्सन की हत्या की पूरी योजना तैयार कर ली।

21 दिसम्बर, 1909 को विजयानन्द नाट्यगृह में 'शारदा' नाटक अभिनीत किया जाना था। जैक्सन को इस नाटक का मुख्य अतिथि बनाया गया था। इसी अवसर पर कन्हेरे ने जैक्सन को गोली मार कर संसार से विदा कर दिया। तीनों क्रांतिवीर नाट्य गृह में ही पकड़े गये। उनपर मुकदमा चला। विनायक देश पाण्डेय, गोपाल कृष्ण कर्वे व अनन्तलक्ष्मण कन्हेरे तीनों को फाँसी की सजा घोषित हुई। 19 अप्रैल, 1910 को तीनों ने थाणे की जेल में फाँसी का फंदा चूम कर अमरत्व प्राप्त कर लिया। अनन्तलक्ष्मण कन्हेरे की आयु अभी मात्र अठारह वर्ष थी।

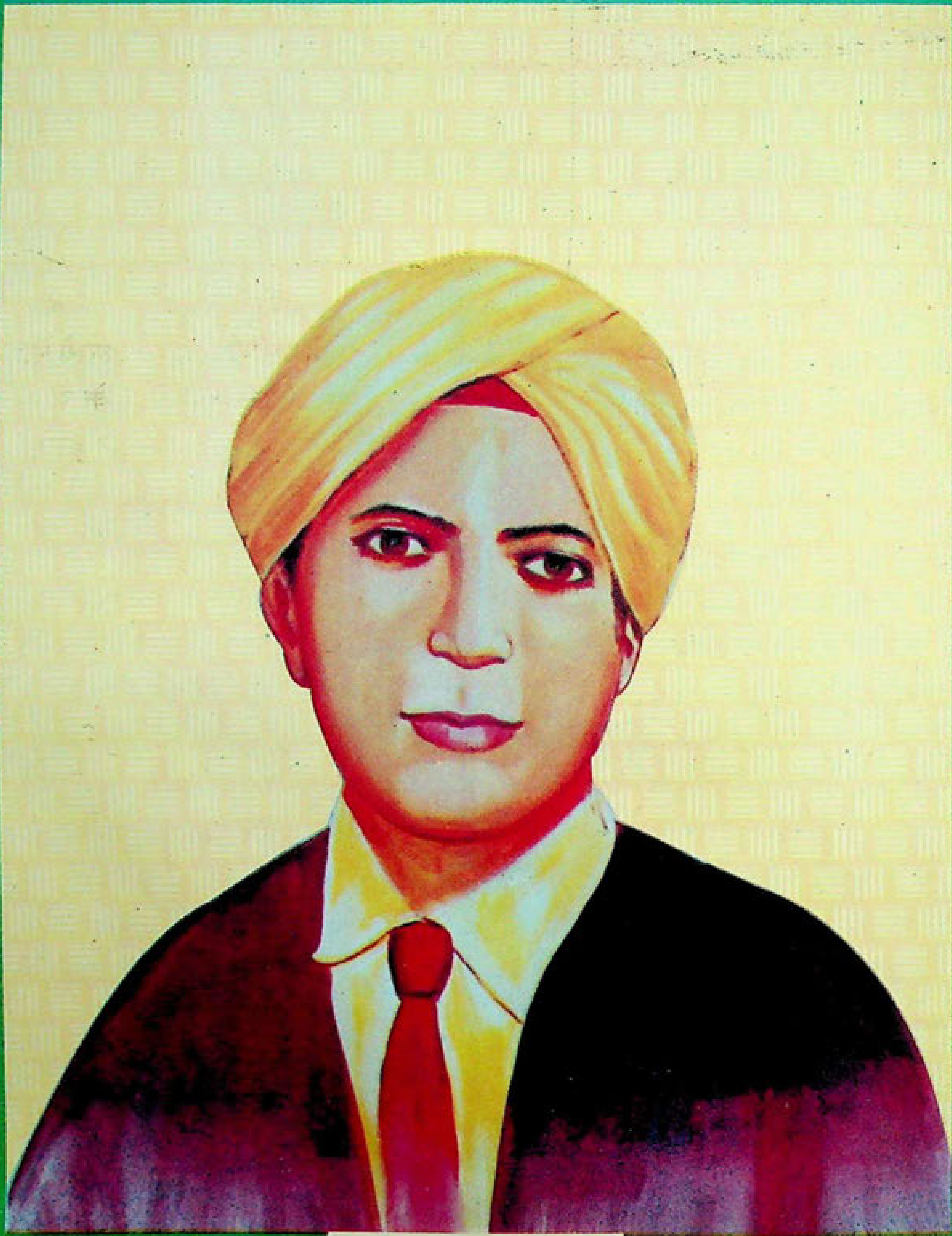

करतारसिंह सराबा

करतारसिंह सराबा का जन्म 1896 में लुधियाना के पास सराबा गांव में हुआ था। वह बचपन में ही अध्ययन हेतु विदेश चले गये। सेनिफ्रांसिस्को में गदर पार्टी के लोगों ने 'गदर' पत्र के माध्यम से वहाँ के प्रवासी भारतीयों में देश की आजादी की अलख जगाई हुई थी। उसी से प्रेरित होकर अमेरिका के 4000 भारतीयों ने अपना घर-बार बेच दिया, व्यापार समाप्त किया और धन एकत्र कर युद्ध सामग्री खरीदी। जहाज किराये पर लिये। युद्ध सामग्री से भरे जहाजों में सवार होकर चार हजार भारतीयों के साथ करतारसिंह सराबा भारत को अंग्रेजों से मुक्त कराने निकल पड़े। लेकिन इनका 'तोशामारू' जहाज सरकार ने भारत पहुँचने से पूर्व कोलकाता से पहले ही रोक लिया। युद्ध सामग्री जब्त कर ली। क्रांतिवीरों को बंदी बना लिया। लेकिन धुन का धनी करतारसिंह सराबा अपने कुछ साथियों के साथ बच कर पंजाब पहुँच गया। सराबा ने तुरंत रास बिहारी बोस से संपर्क किया और देश की विविध छावनियों जैसे लाहौर, लायलपुर, फिरोजपुर, बनारस व मेरठ आदि में घूम-घूम कर भारतीय सैनिकों को 21 फरवरी, 1915 को विद्रोह के लिए तैयार किया। इन्होंने लाहौर में बड़े पैमाने पर बम बनाने का कारखाना खोलने में सहयोग प्रदान किया। लेकिन दुर्भाग्यवश किसी ने इस योजना की सूचना सरकार को दे दी। सरकार ने सारे भारतीय सैनिकों को निरस्त्र कर दिया। सराबा को भी गिरफ्तार कर लिया गया और इन्हें 16 नवम्बर, 1915 को केवल उन्नीस वर्ष की आयु में ही फाँसी दे दी गई। अपने दादा की आँखों में आँसू देख फाँसी से पूर्व यह बोले 'दादा जी! मैं रेंग-रेंग कर नहीं मर रहा हूँ। आपका पोता शान से देश पर कुर्बान हो रहा है, किसी बीमारी का शिकार नहीं।'

सराबा ने जेल की कोठरी में कोयले से अपना परिचय इस प्रकार लिखा था-
''यही पाओगे मशहर में, जबाँ मेरी यकीं मेरा। मैं बन्दा हिन्द वालों का हूँ, है हिन्दोस्ताँ मेरा।
मैं हिन्दी, ठेठ हिन्दी, खून हिन्दी, जात हिन्दी है, यही मजहब, यही फिरका, यही है खानदाँ मेरा।''

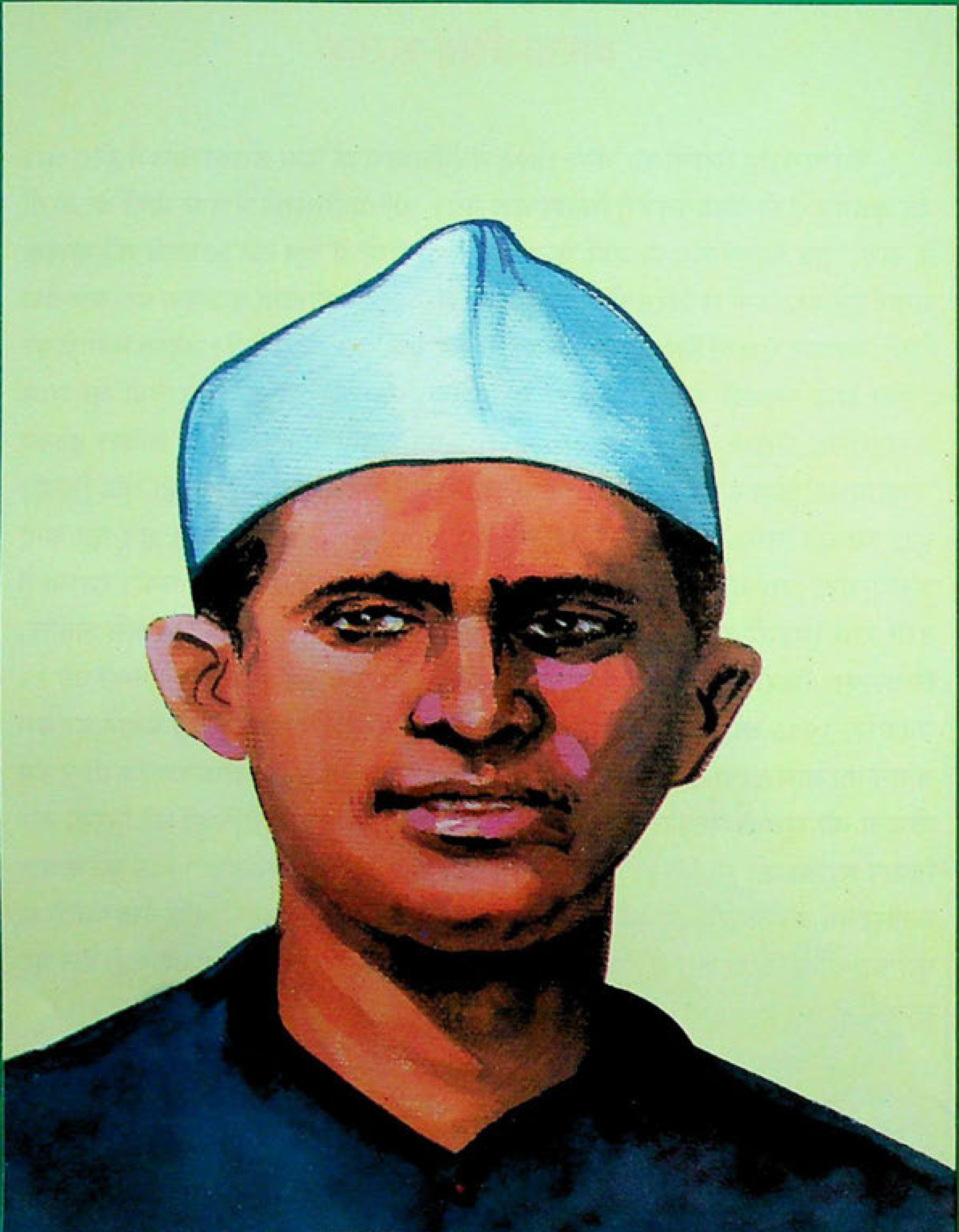

नलिनीकान्त बागची

नलिनीकान्त बागची का जन्म 1896 में बहरामपुर (पं. बंगाल) में हुआ था। बचपन से ही उसमें अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष की भावना जागृत हो गई थी। क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेने के कारण नलिनी के सभी घर वाले नाराज थे। नलिनी अंग्रेजों की गुलामी से छुटकारा पाना चाहता था। अतः उसने गृह त्याग दिया। बिहार में क्रांतिकारी गतिविधियों का जाल फैलाने हेतु दल ने उसे बिहार भेज दिया। उसने पुलिस की आँखों में धूल झोंकने हेतु अपना पहनावा व भाषा भी बिहारी ही अपना ली। पुलिस को उस पर संदेह हो गया। अतः वह असम चला गया। यहाँ उसने **'Geography and Topography of East Bengal & Asam.'** (पूर्वी बंगाल और असम का भूगोल एवं विवरण पुस्तिका) नामक पुस्तक की रचना की। इस खोज पूर्ण पुस्तक में असम एवं बंगाल के गुप्त मार्गों का खुलासा किया गया था। यह क्रांतिवीरों के लिए बड़े महत्व की पुस्तक थी। ब्रिटिश सरकार ने इसे जब्त कर लिया। पुलिस ने नलिनीकान्त को पकड़ने के लिए पूरी ताकत झोंक दी। वह भेष बदलता हुआ बंगाल आ गया। लेकिन असम के जंगलों में भूखा-प्यासा रहकर व जंगली कीड़ों के काटने से बीमार हो गया। पुलिस से बचने के लिए भिखारी का वेष भी धारण करना पड़ा। एक दिन कोलकाता में कल्ता बाजार की कोठरी में तारिणीप्रसन्ना मजूमदार एवं नलिनी कान्त बागची को पुलिस ने घेर लिया। पुलिस से मुठभेड़ में वह घायल हो गया और पकड़ा गया। घायल एवं अर्द्धमूर्छा अवस्था में पुलिस उसके बयान लेना चाहती थी, तभी उसने पुलिस को लताड़ा **"Dont Disturbe me. Let me die peacefully."** (अर्थात मुझे परेशान न करो! मुझे शांति से मरने दो।)16 जून, 1918 को अस्पताल में नलिनीकान्त बागची का निधन हो गया।

...मिश्नर था। बंगाल ...
स्वतंत्रता हेतु संघर्ष कर रहे क्रांतिवीरों की गतिविधियों ...
किसी कारण किसी को भी अनिश्चित काल के लिए जेलों में रखा जाने लगा।
...क क्रांतिवीरों को फाँसी पर लटका दिया गया। 1921 में प्रिंस आफ वेल्स के
...लकाता पहुँचने पर उसके विरोध प्रदर्शनों में गोपीमोहन ने भाग लिया। गोपीमोहन
को गुप्त सूचना मिली कि टेगार्ट ने सुभाषचन्द्र बोस को लम्बे समय तक जेल की
सींखचों में बंद करने की योजना बनाई है। अतः गोपीमोहन ने निश्चय कर लिया कि वह
टेगार्ट का वध करके ही रहेगा। इसी लक्ष्य को पूरा करने हेतु उसने पिस्टल का प्रबंध
कर निशाना साधने का अभ्यास कर लिया।

दिनांक 12 जनवरी, 1924 को प्रातः काल धुंध थी। कोलकाता की चौरंगी रोड प... र
उसने देखा कि टैगार्ट ओवर कोट पहने जा रहा है। उसने अपनी पिस्तौल से उस ... पर
अनेक वार किये। वह वहीं धराशायी हो गया। गोपीमोहन पकड़ा गया। लेकिन उसे ... पता
चला कि ''टेगार्ट के भुलावे में कोई और व्यक्ति मारा गया है। मुकदमे में उसने ... वीका
किया, ''मैं पुलिस कमिश्नर टैगार्ट के अत्याचारों से जनता को मुक्ति दिला... के लि
उसका वध करना चाहता था। लेकिन मेरी गलती से वह बच गया।''

एक मार्च 1924 को गोपीमोहन साहा ने केवल बीस वर्ष की आयु में ... ही फाँ
फंदा चूम कर शहादत प्राप्त की। उसका शव उसके घर वालों को न... हीं दि
उसके भाई मदनमोहन ने जेल में ही उसका अंतिम संस्कार किया। ... अंतिम
बाद उनका भाई जब गोपीमोहन के वस्त्रादि लेकर बाहर आया ... तो व
सुभाषचन्द्र बोस व अन्य सैंकड़ों लोगों की सिसकियाँ फूट पड़ीं।

हरिगोपाल बल

हरिगोपाल बल का जन्म सन् 1917 में कानूनगोपरा चटगांव (बंगला देश) में हुआ था। वह बचपन से ही क्रूर और उद्दंड स्वभाव का बालक था। बचपन से ही क्रांतिकारी स्वभाव के कारण उससे बड़े-बड़े गुंडे भी काँपते थे। इसीलिये लोग उसे 'टेगरा' कहकर पुकारते थे। उसका बड़ा भाई लोकनाथ बल सूर्य सेन की 'इंडियन रिपब्लिकन आर्मी' का सदस्य था। सूर्य सेन ने चटगाँव से ब्रिटिश सत्ता समाप्त करने हेतु वहाँ के शस्त्रागार पर आक्रमण की योजना बनाई। हरिगोपाल स्वभाव से कैसा भी था लेकिन देशभक्ति का पुतला था। अत: मना करते हुए भी उसने आक्रमण के एक्शन में भाग लेने हेतु सूर्यसेन को तैयार कर लिया।

दिनांक 18 अप्रैल, 1930 को चटगाँव का शस्त्रागार लूटने के कार्य में हरिगोपाल बल के चातुर्य और साहस की सभी ने सराहना की। 22 अप्रैल को लोकनाथ बल के नेतृत्व में पचास बाल सैनिकों ने जलालाबाद की पहाड़ी पर 2000 अंग्रेज सैनिकों का बड़े साहस से मुकाबला किया। युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व ही पत्थरों की ओट लेते हुए हरिगोपाल पहाड़ी के आगे के छोर पर जा पहुँचा। उसने सबसे पहले फायरिंग चालू कर दी। पत्थरों की ओट से उसने एक-एक करके छ: सैनिकों को धराशायी कर दिया। उत्साह में भरकर वह खड़ा हुआ और पहाड़ी के आगे के हिस्से की ओर जाने का प्रयास करने लगा। तभी उसका बड़ा भाई लोकनाथ बल चिल्लाया- ''नीचे बैठ... नीचे बैठ...।'' लेकिन तभी स्थान बदलते समय उसे शत्रु की गोली लगी। उसने पहाड़ी पर ही प्राण त्याग कर केवल 13 वर्ष की आयु में ही वीरगति प्राप्त की।

अनन्तसिंह

अनन्त सिंह का जन्म सन् 1910 में चटगांव (बंगलादेश) में हुआ था। उसने एवं मास्टर दा सूर्यसेन ने चटगाँव को अंग्रेजी शासन के पंजों से मुक्त कराने की योजना बनाई। इसके लिए अनन्तसिंह ने हथियारों का प्रबंध किया। 18 अप्रैल, 1930 को पुलिस शस्त्रागार को लूटने में अनन्तसिंह की मुख्य भूमिका थी। शस्त्रागार लूटने के बाद शेष सामान को आग लगा दी गई। आग में उनका साथी हिमांशु दत्त झुलस गया। अनन्त सिंह ने ही उसे बस्ती में एक सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया। चटगाँव अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त हो गया। उस पर 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी' का ध्वज फहरा दिया गया। लेकिन 22 अप्रैल को भारी संख्या में अंग्रेज सेना ने जलालाबाद की पहाड़ी पर मोर्चा जमा लिया। केवल 10 क्रांतिवीर शहीद हुए लेकिन दुश्मन के 160 सैनिक मारे गये। शेष क्रांतिवीर रात्रि के अंधकार का लाभ उठा कर बच निकले।

बाद में चटगाँव शस्त्रागार काण्ड के अनेक क्रांतिवीर पकड़े गये। उनमें से कुछ ने सरकारी गवाह बनना स्वीकार कर लिया। अनन्तसिंह को विश्वास था कि यदि वह अपने को गिरफ्तार करा दे तो वह उन बंदी साथियों को क्रांतिवीरों के विरुद्ध गवाही देने से रोक सकता है। अत: उसने घोषणा करा दी- '' 28 जून, 1930 को अनन्तसिंह आत्म समर्पण करेगा।'' इस घोषणा ने कोलकाता में हलचल मचा दी। सभी को आश्चर्य था कि अनन्तसिंह जैसा दिलेर क्रांतिकारी आत्मसमर्पण क्यों करेगा?अनन्तसिंह ने घोषणा के अनुसार आत्मसमर्पण कर दिया। जेल में जा कर अपने साथियों पर उसने ऐसा मन्त्र फेरा कि वह सभी सरकारी गवाही से मुकर गये। पुलिस अनन्तसिंह की चालाकी समझ गई। इसी कारण उसे भयंकर यातनाएँ सहनी पड़ीं। लेकिन विप्लवी ऐसी यातनाओं से कभी डरा है क्या?

यातनाओं के कारण केवल बीस वर्ष की आयु में ही अनन्तसिंह ने जेल में प्राण त्याग दिए।

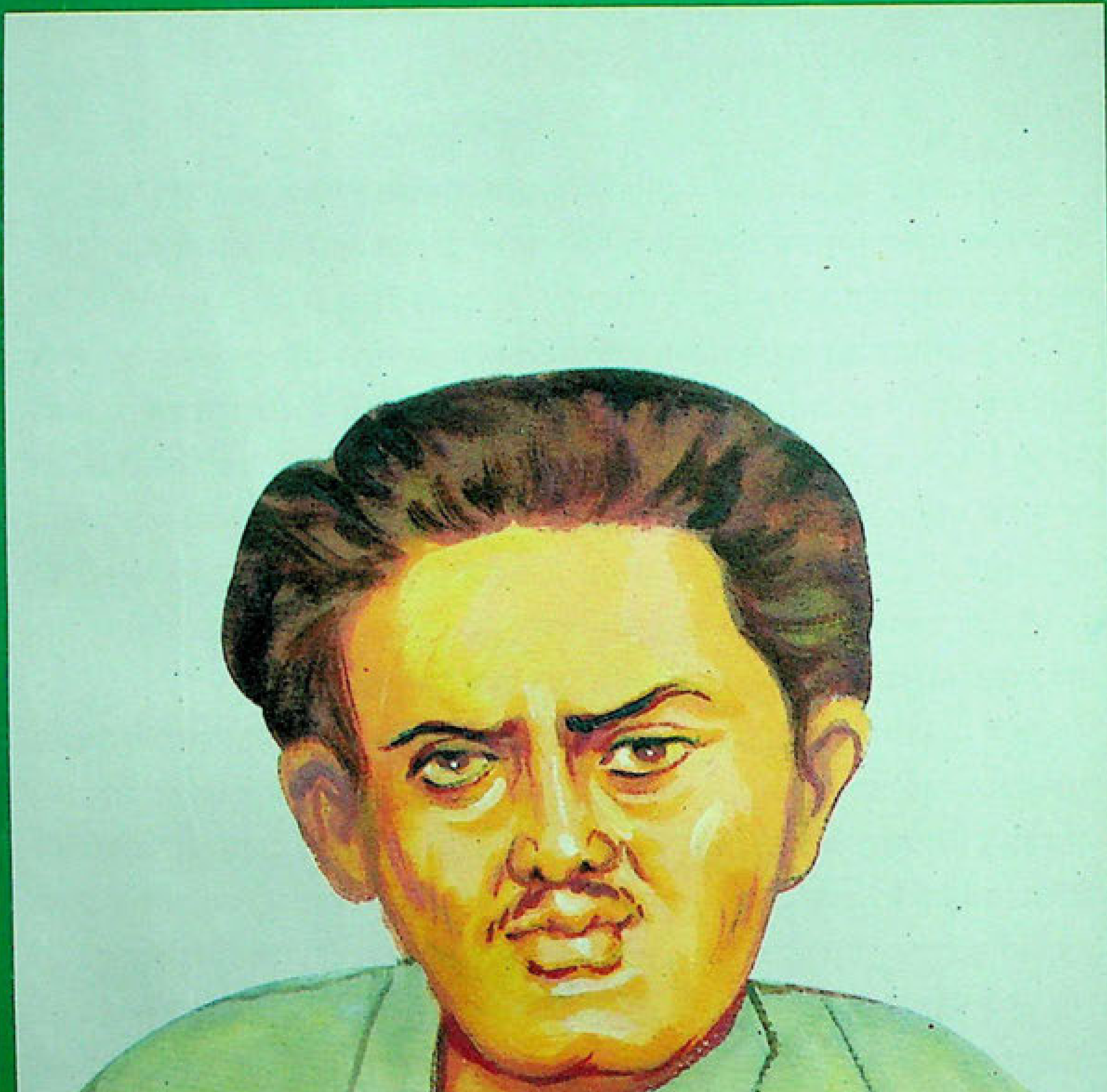

अब्दुल रसूल

अब्दुल रसूल व जगन्नाथ शिंदे

अब्दुल रसूल का जन्म सन् 1910 में शोलापुर (मध्य प्रदेश) में हुआ था। अब्दुल रसूल अशफाकउल्ला खाँ के बलिदान से बहुत दुखी था। उससे प्रेरणा लेकर उसने ब्रिटिश शासन से संघर्ष की ठान ली। वह वक्त का इंतजार करने लगा। 1930 में गाँधी जी की गिरफ्तारी के कारण सारे देश में जलूस, धरने और प्रदर्शनों का जोर था। महाराष्ट्र के शोलापुर में अहिंसक क्रांति की ज्वाला ने विकराल रूप धारण कर लिया। तुल्जापुर रोड़ के जंगलों में घुसकर जंगल कानून तोड़ने का निश्चय किया गया। अब्दुल रसूल इसी वक्त के इंतजार में था। अपने पिता कुर्बान हुसैन की इच्छा के विरुद्ध जलूस में पहुँच गया। जिलाधीश सशस्त्र पुलिस के साथ जंगल का मार्ग रोक कर खड़ा था। अब्दुल रसूल जोर-जोर से नारे लगाता हुआ पुलिस के घेरे को तोड़ कर आगे बढ़ा। तभी पुलिस ने गोली चला दी। एक व्यक्ति शंकर को गोली लगी। उसने उसी स्थल पर प्राण त्याग दिये। अब तो भीड़ बेकाबू हो पुलिस पर झपट पड़ी। लोगों ने पुलिस वालों की बंदूकें छीन कर उन्हीं से उनकी धुनाई शुरू कर दी। अब्दुल रसूल तो खून का प्यासा था ही। उसने पुलिस की धुनाई करके अपनी चिर पिपासा को खूब शांत किया।

इसके बदले में अगले दिन 9 मई, 1930 को पुलिस ने शहर के लोगों को घरों से निकाल-निकाल कर खूब मारकाट मचाई। घरों को आग लगा दी। पुलिस पर वहशीपन सवार हो गया। महिलाओं को बेइज्जत कर आग में झोंका गया। अनेक लोगों को गिरफ्तार किया गया। मुकदमे में अब्दुल रसूल, मलप्पा धन शैट्टी, जगन्नाथ शिंदे तथा श्री कृष्ण शारदा चारों को फाँसी की सजा घोषित हुई। इनमें अब्दुल रसूल सबसे छोटा था। उसने माफीनामे पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया और 12 जनवरी, 1931 को केवल बीस वर्ष की आयु में ही दोनों ने सहर्ष फाँसी का फंदा चूम लिया।

हरिकिशन

हरिकिशन का जन्म जून सन् 1909 में मर्दान, गल्लाधर (पाक.) में हुआ था। गुरुदास मल ने अपने बेटों–हरिकिशन एवं भगतराम को बचपन से ही देश के लिए अपने प्राण न्यौछावर करने की शिक्षा दी। उन्होंने उन्हें साहसी बनाया। अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष के लिए तैयार किया। उन्हें पिस्टल से निशाना साधना भी सिखाया। हरिकिशन को विश्वास था कि अंग्रेजों से भारत को शक्ति से ही मुक्त कराया जा सकता है। भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरु को जब अदालत में डंडों व घूँसों से पीटा गया तो हरिकिशन का खून खौल उठा। उसने इसका बदला लेने की ठान ली। 23 दिसम्बर, 1930 को लाहौर में पंजाब विश्व विद्यालय का दीक्षान्त समारोह था। इसके अध्यक्ष पंजाब के तत्कालीन गवर्नर ज्यो.फ्रे.डी. मेंट मोरंसी थे। सर्वपल्ली डॉ. राधा कृष्णन प्रमुख वक्ता थे।

गवर्नर जब सभा भवन में अंग-रक्षकों के साथ हरिकिशन के नजदीक से निकल रहा था तो उसने पीछे की सीट पर खड़े होकर निशाना लगाया। गवर्नर घायल तो हुआ लेकिन बच गया। हरिकिशन ने भागने का प्रयत्न किया लेकिन पकड़ा गया। हरिकिशन को जेल में अन्य साथियों के नाम जानने हेतु कठोर यातनाएँ दी गईं। उसने भगत सिंह से मिलने हेतु आज्ञा न मिलने पर अन्न जल त्याग दिया। आखिर उनकी मुलाकात कराई गई। 9 जून, 1931 को हरिकिशन को फाँसी पर लटकाया गया। उसके बाद हरिकिशन के पिता को सरकार ने अनेक अभियोगों में फँसा दिया। 15 दिन बाद ही हरिकिशन के पिता गुरुदास मल ने अदालत में प्राण त्याग दिये। हरीकिशन का पूरा परिवार देश पर कुर्बान हो गया। सुभाष को रहमत अली नाम के जिस व्यक्ति ने अफगान सीमा पार कराई थी वह हरिकिशन का छोटा भाई भगत राम ही था। हरिकिशन केवल बीस वर्ष की आयु में ही मातृ-भूमि के ऋण से उऋण हो गया।

सुधीर गुप्त

सुधीर गुप्त व दिनेश गुप्त

सुधीर एवं दिनेश का जन्म क्रमशः सन् 1912 में तथा 6 सितम्बर, 1911 में पूर्वी तिमलिया (बंगलादेश) में हुआ था। देश की आजादी के लिए संघर्ष करने वाले क्रांतिवीरों को जेलों में कठोर यातनाएँ दी जाती थीं। उन यातनाओं के कारण अनेक क्रांतिवीर अपंग हो जाते, अनेक मानसिक संतुलन खो बैठते। कुछ ऐसे भी थे जो अपना ही मल अपने शरीर पर लपेट कर पागल होने का नाटक करते थे कि शायद ऐसे ही उन्हें यातनाओं से मुक्ति मिल जाय। इन यातनाओं का मुख्य कारण था कोलकाता का जेल महानिरीक्षक कर्नल एन.एस. सिम्पसन। अतः क्रांतिवीरों ने उसकी हत्या की योजना बना ली। उसकी हत्या का दायित्व दिनेश गुप्त एवं सुधीर गुप्त को सौंपा गया।

8 दिसम्बर, 1930 को विनय बसु के साथ दोनों सिम्पसन के कार्यालय कोलकाता की राइटर्स बिल्डिंग में जा पहुँचे। सिम्पसन के कार्यालय में घुस कर उसे गोलियों से छलनी कर भाग निकले। कार्यालय के बरामदे में भागते हुए सुरक्षा अधिकारियों ने उनका पीछा किया। उन्होंने देखा कि सामने से भी लोग उन्हें पकड़ने आ पहुँचे हैं। अतः वह बरामदे के एक खाली पड़े कमरे में घुस गये। लोगों ने कमरे की बाहर से कुंडी लगा दी। इतनी देर में पुलिस भी आ पहुँचीं। क्रांतिवीरों ने खिड़की से गोलियाँ चलाईं। पुलिस ने भी अपना बचाव करते हुए दनादन गोलियों की वर्षा कर दी। थोड़ी देर बाद अन्दर से गोलियाँ चलनी बन्द हो गईं। धीरे-धीरे पुलिस ने कुंडा खोल कर अन्दर प्रवेश किया तो सुधीर गुप्त ने आत्म-बलिदान कर लिया था। दिनेश गुप्त घायल हो चुका था। उसे गिरफ्तार कर लिया गया। उसने दिनांक 7 जुलाई, 1931 को फाँसी का फंदा चूम कर शहादत प्राप्त की। जिस जज ने दिनेश को फाँसी का आदेश दिया था, कन्हाई लाल भट्टाचार्य ने 20 दिन बाद ही भरी अदालत में उसका वध कर दिया। इस प्रकार दोनों बच्चों ने केवल अठारह व उन्नीस वर्ष की अल्पायु में ही शहादत प्राप्त कर ली।

रामकृष्ण विश्वास

रामकृष्ण विश्वास का जन्म 16 जनवरी सन् 1910 को शरणातली, चटगांव (अब बंगलादेश में) हुआ था। वह शरणातली के एक विद्यालय में विज्ञान का छात्र था। वह मास्टर दा सूर्य सेन द्वारा गठित 'इंडियन रिपब्लिकन आर्मी' का सदस्य था। इस आर्मी ने चटगाँव शस्त्रागार को लूट कर चटगाँव से ब्रिटिश सत्ता को समाप्त करने की योजना बनाई। उसकी तैयारियाँ होने लगीं। विज्ञान का छात्र होने के कारण बम बनाने का कार्य रामकृष्ण को सौंपा गया। पूरी तैयारी के साथ दिनांक 18 अप्रैल, 1930 को चटगाँव के शस्त्रागार पर क्रांतिवीरों का पूर्ण नियंत्रण हो गया। अब वह शस्त्रागार 'इंडियन रिपब्लिकन आर्मी' का मुख्यालय बन चुका था। लेकिन राम कृष्ण विश्वास और इनके तीन साथी शस्त्रागार पर आक्रमण से पहले ही बम बनाते समय आग से झुलस गये थे अतः इस एक्शन में भाग न ले सके। इसका उन्हें बहुत मलाल था। रिपब्लिकन आर्मी ने पुलिस इंस्पैक्टर जनरल मि० क्रेज का वध करने का दायित्व राम कृष्ण को सौंपा।

राम कृष्ण ने एक दिसम्बर, 1930 की प्रातः 4 बजे चाँदपुर स्टेशन पर क्रेज के भुलावे में गलती से पुलिस अधिकारी तारिणी मुखर्जी की हत्या कर दी। धुंध के कारण पहचानने में गलती हुई। रामकृष्ण को वहीं गिरफ्तार कर लिया गया। राम कृष्ण विश्वास ने मुकदमे में अपना अपराध स्वीकार कर लिया। लेकिन जज उसके भोलेपन से बहुत प्रभावित हुआ। वह उसे 20 वर्ष से कम आयु का लाभ देकर फाँसी के फंदे से बचाना चाहता था। लेकिन रामकृष्ण ने तपाक से उत्तर दिया, ''मेरी आयु बीस वर्ष से ज्यादा है। अब तो आप मुझे फाँसी देंगे।'' जज भी हैरान था कि 'लोग झूठ बोल कर फाँसी से बचना चाहते हैं लेकिन यह बालक झूठ बोल कर फाँसी पर चढ़ना चाहता है'। 4 अगस्त, 1931 को फाँसी पर झूल कर रामकृष्ण विश्वास ने केवल बीस वर्ष की आयु में शहादत प्राप्त की।

रोशनलाल मेहरा

रोशनलाल मेहरा का जन्म सन् 1913 को अमृतसर (पंजाब) में हुआ था। रोशनलाल की माँ ललिता देवी ने देश की आजादी की खातिर मर मिटने वाले क्रांतिवीरों की कहानियाँ सुना-सुना कर रोशन लाल के बचपन में प्रखर राष्ट्रीय चेतना का भाव अंकुरित कर दिया। चन्द्रशेखर आजाद और भगतसिंह के बलिदान से प्रेरित हो रोशन ने भी अपना जीवन देश हेतु अर्पण करने का निश्चय कर लिया। अपने दल के साथ उसने एक दिन शहर की कोतवाली पर बम फेंक कर वहाँ की इमारत को धराशायी कर दिया। अनेक अधिकारी हताहत हुए। उस समय मद्रास में क्रांतिकारी चेतना जागृत करने हेतु उसे मद्रास जाना पड़ा। क्रांतिकारी गतिविधियों को चालू करने हेतु अपने ही घर से पाँच हजार रुपये बिना किसी को बताये निकाल लिये और मद्रास पहुँच गया। बम का कारखाना स्थापित करने हेतु धन जुटाना था। इनके दल के लोगों ने उटकमंड के बैंक में डकैती डाल कर धन प्राप्त कर लिया। लेकिन सभी साथी पकड़े गये। रोशन लाल बैंक लूटने वालों में शामिल नहीं था। उन्हें जेल से मुक्त कराने हेतु रोशनलाल ने योजना बना ली। एक मई, 1933 की रात्रि थी। वह समुद्र के किनारे बम का परीक्षण कर रहा था। लेकिन रात्रि में ठोकर खा कर गिरने से बम फट गया। रोशनलाल के शरीर के चिथड़े उड़ गये। दिन निकलने पर लोगों को पता चला कि कोई क्रांतिकारी शहीद हुआ है तो उसे देखने दूर-दूर से लोग आने लगे। रोशनलाल का अंतिम संस्कार नहीं किया गया। उसके पार्थिव शरीर को समुद्र में जल-समाधि दे दी गई। शहीदों की नियति एवं गति कुछ ऐसी ही होती है। रोशनलाल की आयु उस समय मात्र बीस वर्ष थी।

गुरुदासराम अग्रवाल

गुरुदासराम का जन्म 14 जुलाई सन् 1914 को जीरा, फिरोजपुर (पंजाब) में श्री हरिचन्द्र अग्रवाल के पुत्र के रूप में हुआ था। बचपन में ही जब गुरुदासराम ने जलियाँ वाले बाग हत्याकाण्ड के बारे में सुना तो उसे केवल इतना ही अहसास हुआ कि अंग्रेज कौम हत्यारी है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता गया उसका यह अहसास विश्वास में बदलता गया। लाला लाजपत राय की लाठी प्रहार से हत्या ने उसे विचलित कर दिया। यद्यपि अभी उसकी आयु भी छोटी ही थी। लेकिन उसने कठोर संकल्प ले लिया कि 'वह लाला जी की हत्या का बदला अवश्य लेगा'। यूँ तो ठीक एक माह बाद साण्डर्स का बध करके लाला जी की हत्या का बदला चन्द्रशेखर आजाद और उनके साथियों ने ले लिया। लेकिन गुरुदास का संकल्प तो अभी अधूरा ही था। वह स्वयं भी ऐसा ही ऐतिहासिक कार्य करना चाहता था।

गुरुदासराम को पता चला कि 31 अक्टूबर, 1930 को जीरा जेल में बड़े पुलिस अधिकारियों की सभा होने वाली है। उसने अपने कुछ अन्य साथियों के साथ मिल कर जेल पर उसी दिन बम का धमाका कर दिया। अनेक अधिकारी हताहत हुए। पुलिस ने गुरुदासराम को उनके अन्य चार साथियों के साथ गिरफ्तार कर लिया। शेष भागने में कामयाब हो गये। अन्य साथियों के नाम जानने हेतु गुरुदास राम को कठोर यातनाएँ दी गईं। कोड़ों की मार से चमड़ी के रेशे हवा में उड़ने लगे। शरीर से जगह-जगह खून बहने लगा। लेकिन अन्त तक उसने कुछ नहीं बताया। गुरुदासराम को सरकार ने मारने की योजना बना ली। उसके भोजन में ऐसे तत्व मिला दिये गये कि वह तपेदिक की अंतिम अवस्था में पहुँच गया। ऐसी अवस्था में ही उसे मुक्त किया गया। लेकिन कुछ ही दिनों बाद 27 मई, 1934 को उस महान क्रांतिवीर का शरीर पंचतत्व में विलीन हो गया। उस समय उसकी आयु केवल बीस वर्ष थी।

मृगेन्द्रनाथ दत्त व अन्य साथी

सन 1931 में मिदनापुर (प. बंगाल) के क्रांतिवीर अंग्रेज जिलाधिकारी के अत्याचारों से दुखी थे। उन्होंने घोषणा कर दी–''मिदनापुर के जिलाधिकारी के पद पर किसी भारतीय को नियुक्त किया जाये। जब तक ऐसा नहीं होगा हम उस का वध करते जायेंगे।'' ब्रिटिश सरकार ने तत्कालीन जिलाधिकारी जेम्स पैड्डी को कड़ी सुरक्षा प्रदान कर दी। सुरक्षा व्यवस्था को भेदना कठिन था। एक गुमनाम छात्र ने पैड्डी की हत्या कर क्रांतिवीरों के संकल्प की पहली कड़ी को पूरा कर दिया। इस के बाद पुन: अंग्रेज रोबर्ट डगलस जिलाधिकारी नियुक्त होकर आया। क्रांतिकारियों का खतरा उसके ऊपर भी मँडरा रहा था। वह बहुत घबराया हुआ था। दिनांक 30 अप्रैल, 1932 को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की मीटिंग में प्रद्योत भट्टाचार्य ने उसके सीने में गोलियाँ पार कर दीं। प्रद्योत को गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन ब्रिटिश सरकार नहीं झुकी। तीसरी बार पुन: बी.ई.जे बर्गे अंग्रेज जिलाधिकारी नियुक्त हुआ। अब की बार उसे ऐसा सुरक्षा कवच प्रदान किया गया कि क्रांतिकारी उसके पास भी नहीं फटक सकें। लेकिन वाली-बाल का खेल उसकी कमजोरी थी। क्रांतिवीरों ने उसी का लाभ उठाया। मृगेन्द्र कुमार दत्त एवं अनाथबंधु पाँजा वालीबाल के अच्छे खिलाड़ी थे। इन दोनों ने एक खेल के मैदान में उसे धड़ाधड़ गोलियाँ मार कर यमलोक पहुँचा दिया। मृगेन्द्र और अनाथबंधु पाँजा को सुरक्षा अधिकारियों ने वहीं मार डाला। उसी समय तलाशी में निर्मल जीवन घोष, बृजकिशोर चक्रवर्ती तथा रामकृष्ण रे तीन छात्र पकड़े गये। इन तीनों ने 25 व 26 अक्तूबर, 1934 को फाँसी का फंदा चूमा। छ: छात्रों की शहादत के बाद ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा। चौथी बार भारतीय जिलाधिकारी नियुक्त होकर आया। उस समय इन बाल-क्रांतिवीरों की आयु सत्रह एवं बीस वर्ष के मध्य थी।

काशीनाथ पगधरे

काशीनाथ पगधरे
गोविंद ठाकुर

काशीनाथ पगधरे एवं गोविंद ठाकुर का जन्म सन् 1925 में महाराष्ट्र के क्रमश: सतपती एवं पालघर दो अलग-अलग गांवों में हुआ था। 9 अगस्त, 1942 को 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन के आरम्भ होते ही सारे देश के प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिये गये। आन्दोलन की बागडोर साधारण जनता एवं छात्रों ने संभाल ली। महाराष्ट्र के थाना क्षेत्र में भारी तनाव था। चिनचिनी हाई स्कूल में छात्रों पर गोली चला दी गई। इस समाचार ने क्रांति ज्वाला को और भड़का दिया। आस-पास के गाँवों के लोग पालघर तालुका में एकत्र होने लगे। सरकार द्वारा आन्दोलन को बेरहमी से कुचला जाने लगा। एक जुलूस नन्द गाँव से पालघर की ओर बढ़ा। गोविंद ठाकुर इसी जुलूस में शामिल था। दूसरा जुलूस काशीनाथ पगधरे के साथ सतपती से चला। सतपती के लक्ष्मण पाटिल, रामचन्द्र चूरी व राम प्रसाद तिवारी भी इसी जुलूस में शामिल थे। पालघर के लोगों में भी बड़ा उत्साह था। पालघर के विविध रास्तों से अनेक जुलूस मामलातदार कार्यालय पालघर (तहसील) की ओर बढ़ रहे थे। मामलातदार कार्यालय की ओर बढ़ते जन-सैलाब को रोकने के लिए पुलिस का भारी प्रबंध था। जुलूस कुछ क्षणों के लिए रुक गया। तभी काशी नाथ पगधरे ने जोर का नारा लगाया ''वन्दे....मातरम्'', ''अंग्रेजो....भारत छोड़ो।'' जुलूस पुलिस का घेरा तोड़ कर आगे बढ़ने लगा। तभी पुलिस ने गोली चला दी। इसी गोली काण्ड में सैंकड़ों लोग घायल हुए। काशी नाथ पगधरे ने गोली लगने से वहीं प्राण त्याग दिये। गोविन्द ठाकुर ने घायल अवस्था में अस्पताल में शहादत प्राप्त की। बलिदान के समय दोनों की ही आयु मात्र 17 वर्ष थी।

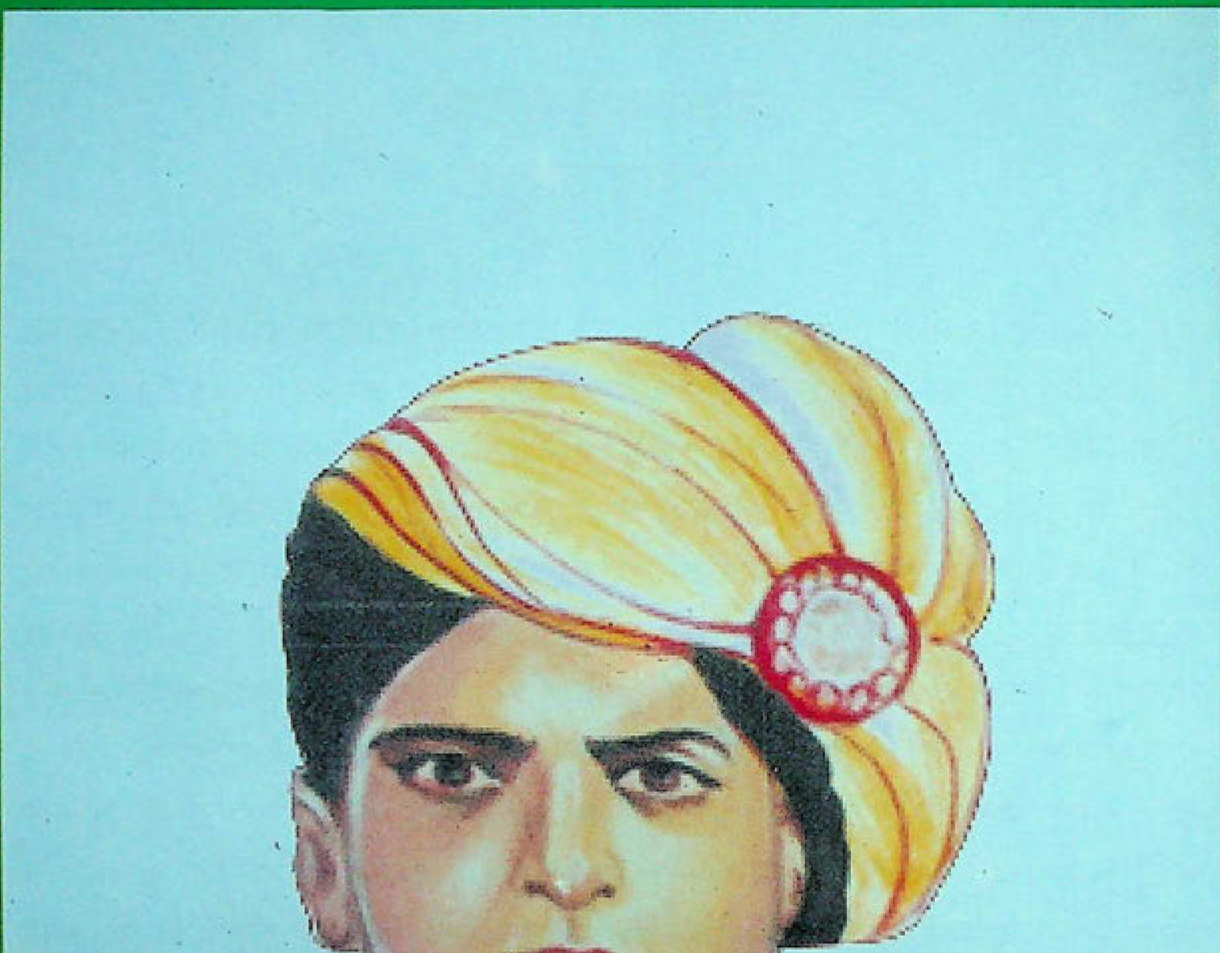

रमेशदत्त मालवीय

रमेशदत्त मालवीय का जन्म सन् 1929 में इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। वह इलाहाबाद के प्रसिद्ध वैद्य भानुदत्त का पुत्र था। 1942 में 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन आरम्भ होते ही सारे देश के नेता गिरफ्तार कर लिये गये। विरोध स्वरूप जगह-जगह जलूस और जलसों का आयोजन होने लगा। छात्र भी इस आन्दोलन में कूद पड़े। स्कूल एवं कालेज बंद कर दिये गये। 11 अगस्त को पटना में सचिवालय पर तिरंगा फहराने के प्रयास में 7 छात्रों के बलिदान से सारे देश के छात्रों में बड़ा रोष था। रमेशदत्त मालवीय ने जब इस घटना के बारे में सुना तो उसका भी खून खौल उठा। अगले दिन वह स्कूल पहुँचा। गेट पर ही छात्रों का हजूम इकट्ठा था। उसने छात्रों को जिला न्यायालय पर प्रदर्शन एवं तिरंगा ध्वज फहराने के लिये प्रेरित किया और वह छात्रों के जुलूस का नेतृत्व करता हुआ जिला न्यायालय पहुँच गया। वहाँ पुलिस का पहले ही प्रबंध कर लिया गया था। पुलिस की चेतावनी के बाद भी जुलूस नहीं रुका। पुलिस ने पहले लाठियाँ बरसानी आरम्भ कर दीं। लाठी चार्ज से भगदड़ मच गई। रमेशदत्त मालवीय ने निश्चय कर लिया कि चाहे जान चली जाय परन्तु न्यायालय पर तिरंगा अवश्य फहराया जायेगा। अतः लाठियों के प्रहार से बचता हुआ वह तेजी के साथ न्यायालय की ओर भागा। पुलिस ने उसे देख लिया और पुलिस भी लाठियाँ लेकर उसकी ओर भागी। उसी बीच पुलिस के बीच से गोली चली और रमेशदत्त मालवीय वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा। लेकिन गिरने से पूर्व ही उसने तिरंगा न्यायालय के परिसर में एक वृक्ष पर उछाल कर फेंका। वृक्ष पर टँगा तिरंगा एक 16 वर्षीय बच्चे के संकल्प की पूर्णता की कहानी कह रहा था। नीचे रमेशदत्त मालवीय मातृ-भूमि पर अपने प्राण न्यौछावर कर चुका था।

जनार्दन मामा

जनार्दन मामा का जन्म सन् 1929 में जालना, महाराष्ट्र में हुआ था। समस्त भारत में चल रहे स्वतंत्रता आन्दोलनों से प्रभावित होकर जनार्दन भी बचपन से ही स्वतंत्रता के सपने देखा करता था। उस समय जालना आन्ध्र प्रदेश में था एवं निजाम की हैदराबाद रियासत में आता था। 15 अगस्त, 1947 को भारत तो स्वतंत्र हो गया लेकिन अब भी सैंकड़ों रियासतों में राजाओं का निरंकुश राजतंत्र था। हैदराबाद भी ऐसी ही रियासत थी। कई वर्ष से हैदराबाद में भी राजतंत्र के विरुद्ध आन्दोलन पनप रहा था। देश के स्वतंत्र होने पर जनार्दन मामा एवं जालना के अनेक लोगों के मन में निजाम के चंगुल से मुक्त हो स्वतंत्र भारत में साँस लेने की उत्कंठा जाग उठी। अतः 15 अगस्त को ही जनार्दन मामा के नेतृत्व में जालना में स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। वह अपनी टोली का नेतृत्व करता हुआ निजाम शासन के विरुद्ध नारे लगाता हुआ सड़क पर निकल पड़ा। निजाम की पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। जन समूह न भड़क उठे इसलिए उसे दोगाँव ले जाकर वहीं गोली मार कर उसकी हत्या कर दी। मात्र अठारह वर्ष की आयु में ही जनार्दन मामा मातृ-भूमि के ऋण से उऋण हो गया

जालना वासियों ने जनार्दन के सम्मान में एक चौक पर जनार्दन मामा की प्रतिमा लगाई है। उस चौक का नाम 'जनार्दन मामा चौक' रख कर उसकी स्मृति को अमर बना दिया है।

उदयचन्द जैन

उदयचन्द जैन का जन्म 10 नवम्बर, 1922 को मांडला (म. प्रदेश) में हुआ था। 1942 में 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन आरम्भ होते ही सारे भारतवर्ष में अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने की लोगों में लालसा जाग उठी। माँडला (मध्य प्रदेश) में लोगों ने थाने पर ही तिरंगा ध्वज फहराने की ठान ली। बड़े-बड़े नेता गिरफ्तार किये जा चुके थे। अत: आन्दोलन की बागडोर छात्रों के हाथों में थी। विविध शहरों व नगरों से आन्दोलन को कुचलने एवं छात्रों के शहीद होने के समाचारों से माँडला के लोगों में विशेष रोष था। ब्रिटिश शासन के प्रतीकों को नष्ट करने के संकल्प ने उन्हें निर्भय बना दिया था। दिनांक 15 अगस्त, 1942 को 'ब्रिटिश शासन मुर्दाबाद'.... 'इन्कलाब जिन्दाबाद' तथा 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' के नारों की तुमुल ध्वनि के साथ जुलूस थाने की ओर बढ़ने लगा। उदयचन्द जैन तिरंगा ध्वज हाथों में थामे जोश के साथ नारे लगाता हुआ सबसे आगे था। जुलूस का नेतृत्व ही उसने संभाल लिया। मार्ग में सशस्त्र पुलिस ने जुलूस को आगे बढ़ने से रोक लिया। उदयचन्द जैन ने जोश में आकर 'वन्दे...मातरम्'' नारा लगाया और पुलिस का घेरा तोड़ कर आगे बढ़ने का संकेत दिया। तभी पुलिस ने गोली चला दी। उदयचन्द जैन के सीने में कई गोलियाँ लगीं। गोलीबारी रुक गई। लोगों को उदयचन्द की जान बचाने की चिंता थी। उसे तुरंत अस्पताल ले जाया गया। गोलियाँ निकालने के बाद भी उसकी बेहोशी नहीं टूटी, अगले दिन 16 अगस्त को उसकी तन्द्रा टूटी लेकिन कुछ क्षणों के लिए। उसने उसी दिन मात्र बीस वर्ष की अल्पायु में ही शहादत प्राप्त कर ली।

दत्तू रंगारी

दत्तू रंगारी का जन्म 16 अगस्त, 1929 को बेलहुॅगल, बेलगांव (कर्नाटक) में हुआ था। दत्तू रंगारी बचपन से ही देश-भक्ति की भावना से ओतप्रोत था। वह तेज बुद्धि का बालक था। पिता के मुख से 'वन्देमातरम्' सुन कर वह भी तोतली भाषा में उसे दोहराता था तो उसकी बाल क्रीड़ाएँ देख कर सभी उसे 'नन्हा क्रांतिकारी' कहने लगे। स्कूल में भी उसे अच्छे अध्यापक मिले। अंग्रेजों के अत्याचारों की कहानी सुन-सुन कर वह बचपन से ही क्रांति की राह पर चल पड़ा।

23 अगस्त, 1942 को बेलगाँव में 'अंग्रेजो! भारत छोड़ो' आन्दोलन का जुलूस निकलना था। उससे पूर्व ही उसने अपनी कक्षा के सहपाठियों के साथ मिल कर उसमें शामिल होने की योजना बना ली। जुलूस आरम्भ हुआ। तिरंगा हाथ में लिये वह भी अपनी टोली के साथ जुलूस के आगे-आगे चलने लगा। भावी त्रासदी से अनभिज्ञ बालकों की टोली आगे-आगे नारे लगाती बड़ा गर्व महसूस कर रही थी। सामने बंदूकें ताने पुलिस ने जुलूस का मार्ग रोक लिया। चेतावनी के बाद भी बालकों की टोली आगे बढ़ने लगी तो पुलिस ने गोली चला दी। दत्तू को सीने में गोली लगी। वह बेहोश होकर गिरने लगा। गिरने से पहले ही उसने झंडे को किसी दूसरे साथी को थमा दिया। जुलूस में भगदड़ मच गई। दत्तू रंगारी को उठा कर होश में लाने की कोशिश की गई। लेकिन उसकी बेहोशी नहीं टूटी। मात्र 13 वर्ष की अल्प आयु में ही उसने मातृ-भूमि पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिये।

गुलाबसिंह

गुलाबसिंह का जन्म सन् 1928 में जबलपुर (मध्य प्रदेश) में हुआ था। गुलाबसिंह सातवीं कक्षा का छात्र था। 1942 की क्रांति के समय जबलपुर में आजादी के मतवाले अपनी जान की चिंता किये बिना ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सड़कों पर उतर आये। गुलाबसिंह यद्यपि अभी छोटा ही था लेकिन नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के साहस से बहुत प्रभावित था। अत: उसने अपने पिता से कह कर खाकी (फौजी) वर्दी सिलवाई। वह खाकी वर्दी पहन कर ही 19 दिसम्बर को एक जुलूस में शामिल हो गया। जुलूस जबलपुर में घंटाघर होता हुआ शहर की तरफ बढ़ा। पुलिस ने जुलूस को रोक लिया। लेकिन गुलाबसिंह पुलिस की चेतावनी को अनसुना कर आगे ही बढ़ता गया। उसे देख अन्य लोग भी आगे बढ़े। तभी दनदनाती गोलियों ने गुलाब सिंह के सीने को छेद दिया। उसे तुरंत अस्पताल पहुँचाया गया। उसके पेट की गोलियाँ निकाली गईं फिर भी वह डेढ़ माह तक जीवन के लिए संघर्ष करता रहा। लेकिन उसे बचाया नहीं जा सका। 5 नवम्बर, 1942 को उसने अस्पताल में ही शहादत प्राप्त की। केवल 14 वर्ष की आयु में ही वह मातृ-भूमि के ऋण से मुक्त हो गया।

शंकर महाले

शंकर महाले का जन्म 18 जनवरी, 1925 को नागपुर (महाराष्ट्र) में दजीबा महाले के पुत्र के रूप में हुआ था। शंकर की माँ का बचपन में ही निधन हो गया था। अगस्त 1942 के 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन में नागपुर के स्कूल व कालेज बन्द कर दिये गये। बड़े-बड़े नेता गिरफ्तार किये जा चुके थे। आन्दोलन की बागडोर छात्रों ने संभाल ली। दिनांक 12 अगस्त को चिटणीस पुरा पुलिस चौकी पर शंकर महाले के पिता पुलिस की गोली से शहीद हो गये। शंकर महाले ने भी इस गोली काण्ड में पुलिस से भारी संघर्ष किया था। गोली काण्ड के बाद पुलिस शंकर को गिरफ्तार करने उसके घर पहुँच गई। अभी पिता की अर्थी भी नहीं उठी थी कि पुलिस शंकर को गिरफ्तार करने आ पहुँची। लोगों की प्रार्थना अस्वीकार करते हुए पुलिस शंकर को गिरफ्तार करके ले गई। शंकर की माँ अथवा कोई भाई व बहन भी नहीं था। पिता का दाह संस्कार उसके दोस्त को करना पड़ा।

शंकर को जेल में कठोरतम यातनाएँ दी गईं। मुकदमे में शंकर महाले को फाँसी की सजा घोषित हुई। दिनांक 19 जनवरी, 1943 को मात्र अठारह वर्ष की आयु में शंकर महाले ने फाँसी का फंदा चूम लिया। पिता-पुत्र की दो पीढ़ियों ने एक साथ माँ-भारती के चरणों में अपने जीवन-पुष्प अर्पित कर अमरत्व प्राप्त कर लिया। शंकर महाले के चचेरे भाई-बहनों के वंशज व अन्य परिजन शहीद शंकर महाले की स्मृति को आज भी ताजा रखे हुए हैं। उनकी स्मृति में नागपुर के झंडा चौक पर एक विशाल संग्रहालय बनाया हुआ है वहीं उनकी प्रतिमा स्थापित है। उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष वहाँ एक सप्ताह के विविध कार्यक्रम चलते हैं।

हेमू कालाणी

हेमू कालाणी का जन्म 11 मार्च, 1924 को पुराना सक्खर (सिंध, पाक.) में पेसूमल कालाणी के पुत्र के रूप में हुआ था। सन् 1942 में 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' नारे को लेकर इस 19 वर्ष के बालक की टोली ने सिंध शहर में तहलका मचा दिया। इसे देख कर शहर के बालक, बूढ़े, जवान सभी जोश में आ गये। सैनिक छावनी के भारतीय सैनिकों ने भी बगावत कर दी। अंग्रेजों को यूरोपियन फौज बुलानी पड़ी। हेमू को पता चला कि पास में जंगल के पुल से जो ट्रेन गुजरने वाली है उसमें यूरोपियन फौज और गोला बारूद भरा है। हेमू ने टोली को इकट्ठा करके ट्रेन को पुल से गिराने हेतु पटरी के नट खोलने आरम्भ किये ही थे कि पुलिस ने देख लिया। उस ने अपने साथियों को भगा दिया और स्वयं पुलिस से उलझा रहा एवं पकड़ा गया। साथियों का नाम बताने हेतु उसे बहुत यातनाएँ दी गईं लेकिन हेमू ने कोई नाम नहीं बताया। अंग्रेज कमांडर रिचर्डसन ने उसे डराने के विविध प्रयास किये। उसे आशा थी कि बालक है थोड़ा डराने से ही सभी के नाम उगल देगा। पुलिस इस साजिश की तह तक पहुँचना चाहती थी। हेमू सभी यातनाएँ सहता गया पर किसी का नाम जुबान पर नहीं लाया। आखिर क्रूर ब्रिटिश हुकूमत ने अबोध बालक को फाँसी की सजा सुना दी। साथियों के नाम बताने के लिए उसे फाँसी से बचाने का प्रलोभन दिया गया लेकिन हेमू अपने निश्चय पर ही अडिग रहा। अन्त में 21 जनवरी, 1943 को वह फाँसी का फंदा चूम कर बलिदान हो गया।

रामेश्वर बनर्जी

रामेश्वर बनर्जी का जन्म 8 फरवरी, 1925 को बघरा (अब बंगलादेश) में हुआ था। भारत को स्वतंत्र कराने के लिए 1945 में भारतीय सीमा पर आजाद हिन्द फौज के 26 हजार सैनिकों ने बलिदान दिया। 17 हजार सैनिक गिरफ्तार किये गये। उन पर दिल्ली के लाल किले में मुकदमा चलाया जा रहा था। उन पर मुकदमे के विरोध में जगह-जगह विरोध प्रदर्शन होने लगे। कोलकाता के छात्रों ने भी स्कूल व कालेजों की हड़ताल कर दी। 21 नवम्बर, 1945 को कई हजार छात्रों का जुलूस बीस वर्षीय रामेश्वर बनर्जी के नेतृत्व में वैलिंग्टन स्क्वायर की ओर चल पड़ा। जुलूस एस्प्लेनेड रोड पर पहुँचा ही था कि उसे पुलिस ने रोक लिया। जुलूस को तितर-बितर होने की चेतावनी दे दी गई। लेकिन छात्रों के जोश को देखते हुए रामेश्वर बनर्जी नारे लगाता हआ जुलूस के साथ आगे ही बढ़ता रहा। पुलिस ने लाठियाँ बरसानी आरम्भ कर दीं। रामेश्वर बनर्जी को लाठियों से इतना मारा गया कि उसने वहीं दम तोड़ दिया।

छात्रों ने रामेश्वर बनर्जी के शव को घेरे में ले लिया। उसकी शव यात्रा निकालते हुए वैलिंग्टन स्कवायर तक जाने की जिद पकड़ ली। रात्रि के दो बज गये। छात्रों ने शव यात्रा निकालनी आरम्भ की। दनादन गोलियाँ चल पड़ीं। एक-एक करके पैंतीस छात्रों के शवों से धरती पट गई। अब छात्र सभी की शव यात्रा निकालने पर अड़ गये। छात्रों को समझाने के लिए स्वयं गवर्नर को आना पड़ा। डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने भी बहुत समझाया लेकिन छात्र किसी भी कीमत पर झुकने को तैयार न थे। अगले दिन प्रातः आखिर 36 छात्रों की शव यात्राएँ निकलीं। उसी अवसर पर छात्रों की प्रेरणा स्रोत बहन ज्योतिर्मयी गांगुली को पुलिस के ट्रक ने कुचल दिया। कोलकाता के छात्रों की कुर्बानी से सारा देश थरथरा उठा। आखिर सरकार को मुकदमे का नाटक बन्द करना पड़ा। आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के ऊपर से मुकद्दमे की कार्यवाही रोक दी गई।

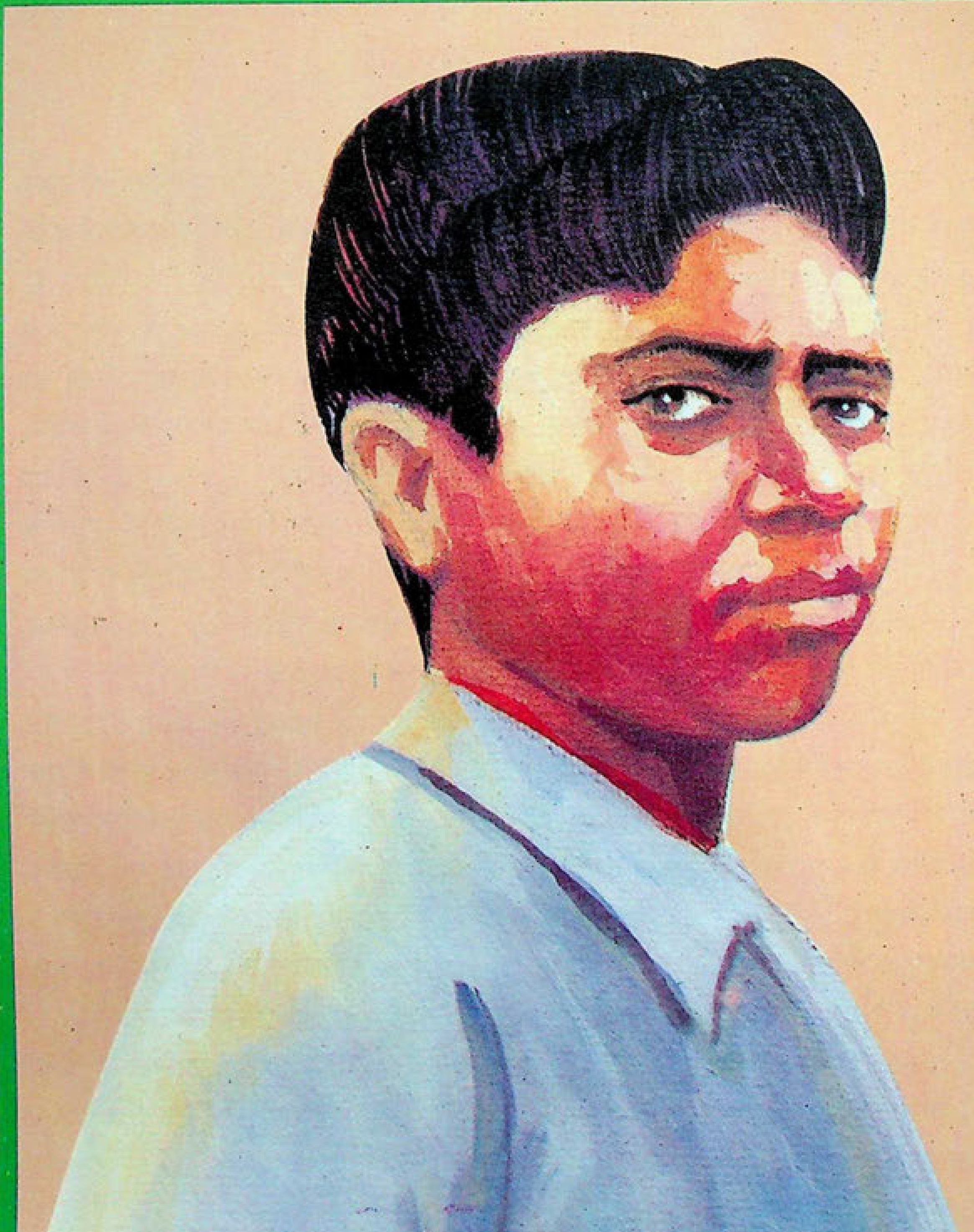

रामास्वामी

रामास्वामी का जन्म सन् 1929 में बनवारा, हासन (कर्नाटक) में हुआ था। पहले यह स्थान मैसूर राज्य में था। 1 नवम्बर, 1973 के बाद इसे कर्नाटक नाम दिया गया। रामास्वामी हाई स्कूल का छात्र था। देश की आजादी की लड़ाई अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ी जा रही थी। लेकिन अलग-अलग राज्यों में भी राजतंत्र के विरुद्ध प्रजातंत्र की स्थापना हेतु संघर्ष चल रहा था। वहाँ की प्रजा भी राजाओं के निरंकुश शासन से मुक्त होकर स्वराज्य स्थापित करना चाहती थी। इसी कारण मैसूर में राजतंत्र के विरुद्ध आन्दोलन चल रहा था।

सितम्बर, 1947 में स्वशासन स्थापित करने हेतु हासन में एक जुलूस निकाला गया। रामास्वामी भी अपने हृदय की भावनाओं को न रोक सका। वह भी जुलूस में शामिल होकर नारे लगाने लगा। पुलिस ने उन्हें वापस जाने हेतु चेतावनी दी। नारों की ध्वनि और जोश में रामास्वामी ने चेतावनी को अनसुना कर दिया गया। तभी जुलूस पर पुलिस ने गोली चला दी। रामास्वामी को सीने में गोली लगी। वह वहीं गिर पड़ा। लोग तितर-बितर होने लगे। लोगों ने उसे उठाना चाहा। लेकिन तब तक उसके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। मातृ-वेदी पर एक पुष्प और भेंट हो गया। रामास्वामी केवल अठारह वर्ष की आयु में ही देश पर बलिदान हो गया।

''यदि देश के हित मरना पड़े, मुझ को सहस्रों बार भी।
तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊँ कभी।।
हे ईश! भारतवर्ष में, शतबार मेरा जन्म हो,
कारण सदा ही मृत्यु का, देशीय कारक कर्म हो।।''

–रामप्रसाद बिस्मिल

'चलो दिल्ली' नारा गूँज उठा

महात्मा गाँधी के बाद नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ही दूसरी ऐसी हस्ती थे जिसकी भारतीय राजनीति पर गहरी छाप थी। नेता जी का विश्वास था कि विश्व का कोई भी राष्ट्र बिना अपने सैनिक संगठन के आज तक स्वतंत्र नहीं हो सका। लेकिन भारत में सैनिक संगठन के विषय पर सोचना भी अहिंसा के सिद्धान्तों पर आघात था। अत: नेता जी जो कुछ भारत में न कर सके उन्होंने वह विदेशों में जाकर कर दिखाया। उन्होंने जापान के सहयोग से 'अंतरिम आजाद हिंद सरकार' का गठन कर दिया एवं अमेरिका एवं ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इससे विश्व युद्ध का परिदृश्य ही बदल गया। पूर्वोत्तर सीमा पर ''चलो दिल्ली'' नारा गूँज उठा। लेकिन अमेरिका द्वारा जापान पर अणु बम के प्रहार से जापान को हथियार डालने पड़े। फलस्वरूप भारतीय सीमा पर 'आजाद हिन्द फौज' के 26000 सैनिकों को बलिदान देना पड़ा। इस बलिदान से प्रेरित हो कर भारतीय शाही जल, थल एवं नभ सेनाओं में खलबली मच गई। 18 फरवरी, 1946 को नौसेना के सभी बन्दरगाहों से क्रांति का बिगुल बज उठा। अत: भारतीय शाही सेना से विश्वास उठ जाने के कारण अगले ही दिन ब्रिटेन ने भारत को आजाद करने की घोषणा कर दी।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

मुख्य कार्यकारी अधिकारी

माण्डले जेल में

जनरल ऑफीसर कमांडिंग

भा. रा. कां. के अध्यक्ष

जियाउद्दीन के वेश में

आरलैडोमैजोटा के वेश में

हिटलर से मुलाकात

पोस्टर युद्ध

समुद्र में छलांग मृत्यु को चुनौती

रासबिहारी बोस

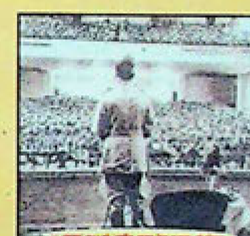

आजाद हिन्द फौज की घोषणा

नौ-सेना भवन पर तिरंगा

कैप्टन मोहन सिंह

सहगल, ढिल्लो, शाहनवाज

भगतराम तलवार

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का जन्म, 23 जनवरी सन् 1897 को कटक (उडीसा) में जानकीनाथ बोस तथा प्रभावती देवी के पुत्र के रूप में हुआ था। भारतीय प्रशासनिक सेवा में उत्तीर्ण होने के बाद नेताजी ने देश की आजादी की खातिर सरकारी नौकरी का त्याग कर दिया। नेताजी की उग्र राष्ट्र-भक्ति एवं अंग्रेजों की 'पोल-खोल' नीति के कारण उन्हें ग्यारह बार गिरफ्तार किया गया। लेकिन उनकी बीमारी एवं प्रबल आत्मिक शक्ति ने सरकार को हर बार उन्हें छोड़ने पर बाध्य कर दिया। स्विटजरलैंड से बीमारी का इलाज कराकर वापस लौटने पर उनकी यशधारा 1938 व 39 में इतनी ऊँचाई पर थी कि उन्हें काँग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया। लेकिन गाँधी जी से विचारों में मतभेद होने के कारण उन्हें 3 वर्ष के लिए काँग्रेस से निष्कासित कर दिया गया। द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हो चुका था। फारवर्ड ब्लाक के मंच से उन्होंने घोषणा कर दी–''यही सर्वोत्तम अवसर है देश को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त कराने का।'' नेताजी के उग्र विचारों के कारण उन्हें पुन: जेल में डाल दिया गया। नेताजी के विरोध करने पर उनके ही घर में नजरबंद कर दिया। 17 जनवरी, 1941 को नेताजी भेष बदल कर नजरबंदी से भाग निकले। वे देश छोड़ कर जर्मन पहुँचे। 'आजाद हिन्द फौज' का गठन कर डाला। रास बिहारी बोस के निमंत्रण पर नेताजी जापान पहुँचे। वहाँ 21 अक्तूबर, 1943 को 'आजाद हिन्द सरकार' का गठन कर दिया। इस सरकार को 9 देशों की मान्यता भी प्राप्त हो गई। तीन दिन बाद ही उन्होंने ब्रिटेन एवं अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 1945 में आजाद हिन्द फौज भारत की सीमा में प्रवेश कर चुकी थी। किन्तु तभी अमेरिका ने जापान के दो नगरों पर एटम बम प्रहार कर दिया। जापान ने हथियार डाल दिये। सीमा पर आजाद हिन्द फौज के 26 हजार सैनिकों ने शहादत प्राप्त की। इसी बीच नेताजी रहस्यमय तरीके से गायब हो गये।

कोलकाता के मुख्य कार्यकारी अधिकारी

सन् 1924 में कोलकाता के पालिका चुनावों में स्वराज्य पार्टी ने काँग्रेस को हराकर 75 सीटों में से 55 सीटों पर कब्जा कर लिया। देशबंधु चितरंजनदास कोलकाता के मेयर बने। उन्होंने सुभाषचन्द्र बोस को नगर पालिका का मुख्य कार्यकारी अधिकारी नियुक्त कर दिया। इस समय सुभाष की आयु मात्र 27 वर्ष थी।

मुख्य कार्यकारी अधिकारी के पद पर रहते हुए सुभाषचन्द्र बोस ने सुधार एवं जन सेवा के अनेक कार्य किये। मुफ्त औषधालय, नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था आदि कार्यों से जनता बहुत खुश थी। लेकिन सुभाष की फैलती यशधारा से सरकार नाराज थी। सुभाष ने एक और साहसिक कार्य किया। उन्होंने कोलकाता की सड़कों और पार्कों से ब्रिटिश नामों को हटा कर भारतीय विभूतियों के नाम प्रदान किये। सुभाषचन्द्र बोस ने खादी को नागरिक कर्मचारियों की सरकारी वर्दी बना दिया। शहरभर में लड़कियों के लिये नि:शुल्क प्राथमिक विद्यालय स्थापित किये। निगम संचालित स्वास्थ्य समितियाँ गठित की गई। उच्च पदों पर आसीन अंग्रेजों के सम्मान में स्वागत समारोहों का चलन बंद कर दिया गया। इस कार्य से ब्रिटिश सरकार कुपित हो उठी। अत: सरकार ने उन्हें 'बंगाल आर्डिनेंस एक्ट' के अन्तर्गत गिरफ्तार कर अलीपुर सेंट्रल जेल में बंद कर दिया। उनपर आरोप लगाया गया कि सुभाष के क्रांतिकारियों से गुप्त सम्बध हैं। सुभाष जेल से ही कार्यकारी अधिकारी के दायित्वों का निर्वाह करने लगे। लेकिन सरकार ने उन्हें कठोर कारावास की सजा देकर माण्डले (बर्मा) जेल में बंद कर दिया।

माण्डले जेल की कोठरी में

ब्रिटिश सरकार के लिए सुभाषचन्द्र बोस भारत में सबसे अधिक खतरनाक व्यक्ति थे। उन्हें 25 जनवरी, 1925 की आधी रात को माण्डले (बर्मा) की जेल में स्थानान्तरित किया गया। माण्डले जेल की कोठरियाँ लकड़ी की फट्टियों से बनाई गई थीं। सर्दी में कड़ाके की ठंड व सर्द हवाएँ एवं गर्मियों में प्रचण्ड लू उन फट्टों के बीच की दरारों से थपेड़े मारती थीं। बरसात में मूसलाधार बारिश से बचने का भी कोई साधन नहीं था। माण्डले जेल की जलवायु स्नायु शक्ति को क्षीण करने वाली, मंदाग्नि और गठिया को प्रोत्साहन देने वाली थी। सुभाष के स्वास्थ्य पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। लेकिन लोकमान्य तिलक भी इसी जेल में छः वर्ष का कठोर कारावास काट कर गये थे। इसी कारण सुभाष ने तिलक के चरणों की रज से पवित्र उस पुण्य भूमि को वन्दनीय समझ साहस बनाये रखा। जून 1925 में उनके राजनैतिक गुरु देशबन्धु चितरंजनदास का निधन हो गया। इस शोक समाचार ने उन्हें बहुत आहत किया। 1926 में बंगाल की जनता ने उन्हें विधानमंडल के चुनावों में भारी मतों से विजयी बनाया। लेकिन वह जेल की यातनाओं से मुक्ति नहीं पा सके। जेल की कुव्यवस्था के कारण सुभाष ने भूख हड़ताल कर दी। अधिकारियों ने यह समाचार गुप्त रखा छः सप्ताह की भूख हड़ताल से उनका स्वास्थ्य चौपट हो गया। निमोनिया बुखार भी हो गया। शरीर सूख कर हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया। मेडिकल बोर्ड की सलाह थी कि सुभाष को तुरंत रिहा करना ही उचित होगा। लेकिन फिर भी माण्डले जेल से निकाल कर इनसीन जेल में बंद कर दिया। 16 मई, 1927 को उन्हें मरणासन्न अवस्था में मुक्त किया गया।

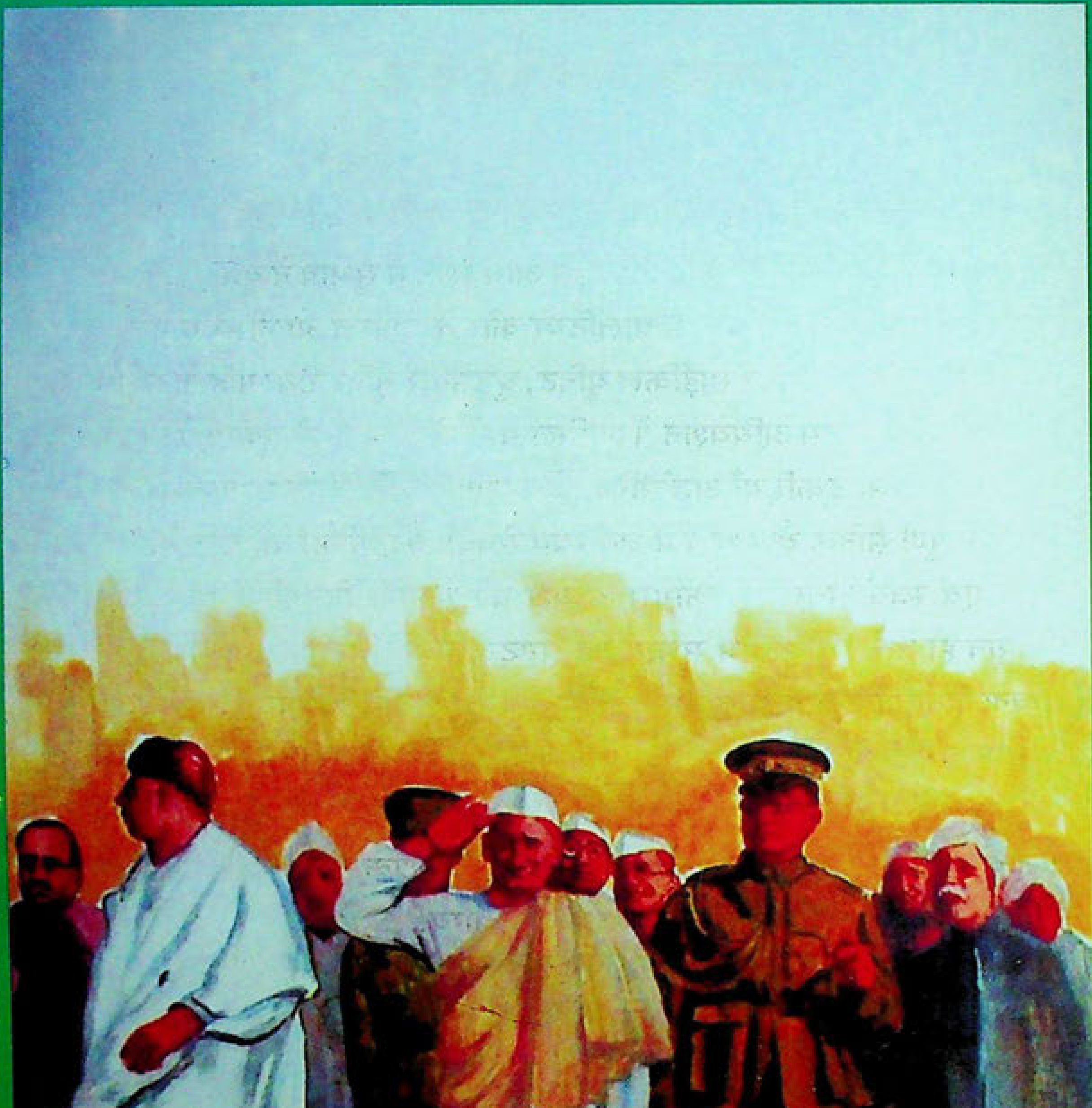

जनरल आफीसर कमांडिंग

इंडियन नेशनल काँग्रेस का 43वाँ अधिवेशन 1928 में कोलकाता में हुआ। इसकी अध्यक्षता मोती लाल नेहरू ने की थी। इस अधिवेशन में सुभाष ने युवा पीढ़ी का नेतृत्व किया। सुभाष चन्द्र बोस काँग्रेस वालंटियर कोर के जनरल आफीसर कमांडिग बने। सुभाष ने इस कोर में मोटर साईकिल यूनिट, घुड़सवार यूनिट तथा महिला कोर को भी सम्मिलित किया। इस अधिवेशन में शामिल सभी सेवा दलों को सुभाष ने ही प्रशिक्षित किया। यह सभी टुकड़ियाँ अर्द्धसैनिक वेश भूषा में थीं। जनरल आफीसर कमांडिग सुभाष ने पूर्ण सैनिक वेश भूषा में जब स्वयं सेवकों की यूनिटों की परेड का निरीक्षण किया एवं स्वयं सेवकों से काँग्रेस अध्यक्ष को सलामी दिलाई तो एक भव्य दृश्य मूर्तिमान हो उठा। वास्तव में सुभाष की 'राष्ट्रकर्मियों में सैनिक अनुशासन' की यही भावना द्वितीय विश्व युद्ध के समय दक्षिण - पूर्व एशियाई मोर्चे पर व्यावहारिक रूप में मुखरित हो उठी।

इसी अधिवेशन में काँग्रेस ने केवल 'औपनिवेशिक स्वराज्य' की माँग का ही प्रस्ताव रखा। सुभाष ने उस प्रस्ताव में 'औपनिवेशिक स्वराज्य' की जगह 'पूर्ण स्वराज्य' का संशोधन प्रस्तुत किया। लेकिन दुर्भाग्य! सुभाष का यह संशोधन प्रस्ताव 1350 के मुकाबले 973 मतों से गिर गया। सुभाष ने आश्चर्य व्यक्त किया, ''44 वर्ष पुरानी काँग्रेस अभी तक पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्ति का लक्ष्य घोषित करने का साहस नहीं जुटा पाई। तब देश स्वतंत्र कैसे होगा?'' इसके बाद सुभाष ने सारे देश का भ्रमण करके युवा शक्ति को ललकारा। उनमें आत्म-विश्वास जाग्रत किया। तब 1929 के अधिवेशन में काँग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्ति का लक्ष्य घोषित किया।

राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाष

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के अध्यक्ष

1938 में एक वर्ष काँग्रेस की अध्यक्षता करके सुभाष ने अपनी प्रतिभा से काँग्रेस के सदस्यों में अच्छा सम्मान एवं यश प्राप्त कर लिया। अत: 1939 में भी वह पट्टाभि सीता रमैया के विरोध में 200 मतों से अध्यक्ष के पद पर विजयी हुए। पट्टाभि सीता रमैया की हार को गाँधी जी ने अपनी हार माना। इससे सुभाष को बड़ा मानसिक आघात पहुँचा। वह सख्त बीमार पड़ गये। उनके दोनों फेफड़े निमोनिया से ग्रस्त थे। डाक्टरों ने उन्हें त्रिपुरा अधिवेशन में न जाने की सख्त हिदायत दी। लेकिन फिर भी वह न माने। अत: उन्हें एम्बूलैंस से स्टेशन लाया गया। स्ट्रैचर पर लिटा कर ट्रेन में चढ़ाया गया। उनके भाई व परिजन तथा डाक्टरों का दल जीवनरक्षक साधनों के साथ उनके साथ-साथ चला। शिविर में पहुँचने पर सुभाष ने मंच पर लेटे-लेटे ही विषय समिति की बैठक का संचालन किया।

नई कार्य कारिणी के गठन पर काँग्रेस दो गुटों में बँटी थी। एक गुट महात्मा गाँधी के नरमपंथी विचारों का पक्षधर था तो दूसरा सुभाष के परिवर्तनशील क्रांतिकारी विचारों का। अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास कर अध्यक्ष को हिदायत दी गई -''वह महात्मा गाँधी की सहमति से ही नई कार्यकारिणी का गठन करें।'' इस प्रस्ताव ने उन्हें असहज स्थिति में डाल दिया। बीमारी की अवस्था में इस मानसिक वेदना को उन्होंने बड़े धैर्य से सहन किया। जब सुलह नहीं हो पाई तो उन्होंने गाँधी जी के साथ किसी विवाद में पड़ना उचित नहीं समझा और 1939 के अन्त में अध्यक्ष पद से त्याग पत्र दे दिया। विश्व युद्ध छिड़ जाने पर ब्रिटिश सरकार से कांग्रेस की समझौते की नीति का विरोध करने के कारण सुभाषचन्द्र बोस को तीन वर्ष के लिये कांग्रेस से निष्कासित कर दिया गया। विचारधारा में भारी मतभेद होते हुए भी सुभाष महात्मा गाँधी का हृदय से बड़ा आदर करते थे। ''बापू'' नाम का सम्बोधन पहले उन्होंने ही किया था।

मोहम्मद जियाउद्दीन के वेश में

सुभाष का विश्वास था कि कोई भी राष्ट्र बिना अपने स्वतंत्र सैनिक संगठन के स्वतंत्र नहीं हो सकता। लेकिन भारत में यह संभव नहीं था। अत: उन्होंने भारत से पलायन का कठोर एवं साहसी निर्णय कर डाला।

दिनांक 17 जनवरी, 1941 की प्रात: 1.30 बजे सुभाष एक बीमा कम्पनी के ट्रैवलिंग इंस्पैक्टर मुसलमान मुहम्मद जियाउद्दीन के वेष में घर से निकल पड़े। उनके पलायन की खबर घर में केवल उनके 17 वर्षीय भतीजे शिशिर एवं 18 वर्षीय भतीजी इला को थी। दोनों ही पलायन की गुप्त योजना में शामिल थे। शिशिर ने अपनी 'जर्मन वांडरर' कार से उन्हें रातों रात चलकर प्रात: 9 बजे शरत चन्द्र के बड़े बेटे अशोक के घर धनबाद के निकट बराड़ी पहुँचा दिया। इसके बाद उनका अकेले का सफर आरम्भ हुआ। उन्होंने गोमोह स्टेशन से दिल्ली कालका मेल पकड़ी। दिल्ली से फ्रंटीयर मेल पकड़कर 19 जनवरी को सुभाष पेशावर पहुँच गये। पेशावर में पूर्व योजना के अनुसार अकबर शाह ने उनकी आगे की यात्रा की कमान संभाली। पेशावर में सुभाष को पठान का रूप धारण करना पड़ा। सीमा पार कराने में सिद्ध हस्त आबिदखान ने उनकी मदद की। योजना बनी कि पेशावर के भगत राम तलवार (रहमत अली) के साथ सुभाष उसके गूँगे और बहरे भाई के रूप में सीमा पार करेंगे। इस प्रकार दिनांक 26 जनवरी को सुभाष ने अफगानिस्तान की ओर प्रस्थान किया। पूर्व योजनानुसार इसी दिन कोलकाता में उनके परिवार वालों ने उनके पलायन का समाचार उजागर किया। यह पाँच दिन का सफर बड़ा जोखिम भरा और दुरूह था। कठिनाइयों से जूझते हुए 31 जनवरी, 1941 को सुभाष काबुल पहुँच गये। उधर ब्रिटिश सरकार उनकी तलाश में विश्व का चप्पा-चप्पा छान रही थी।

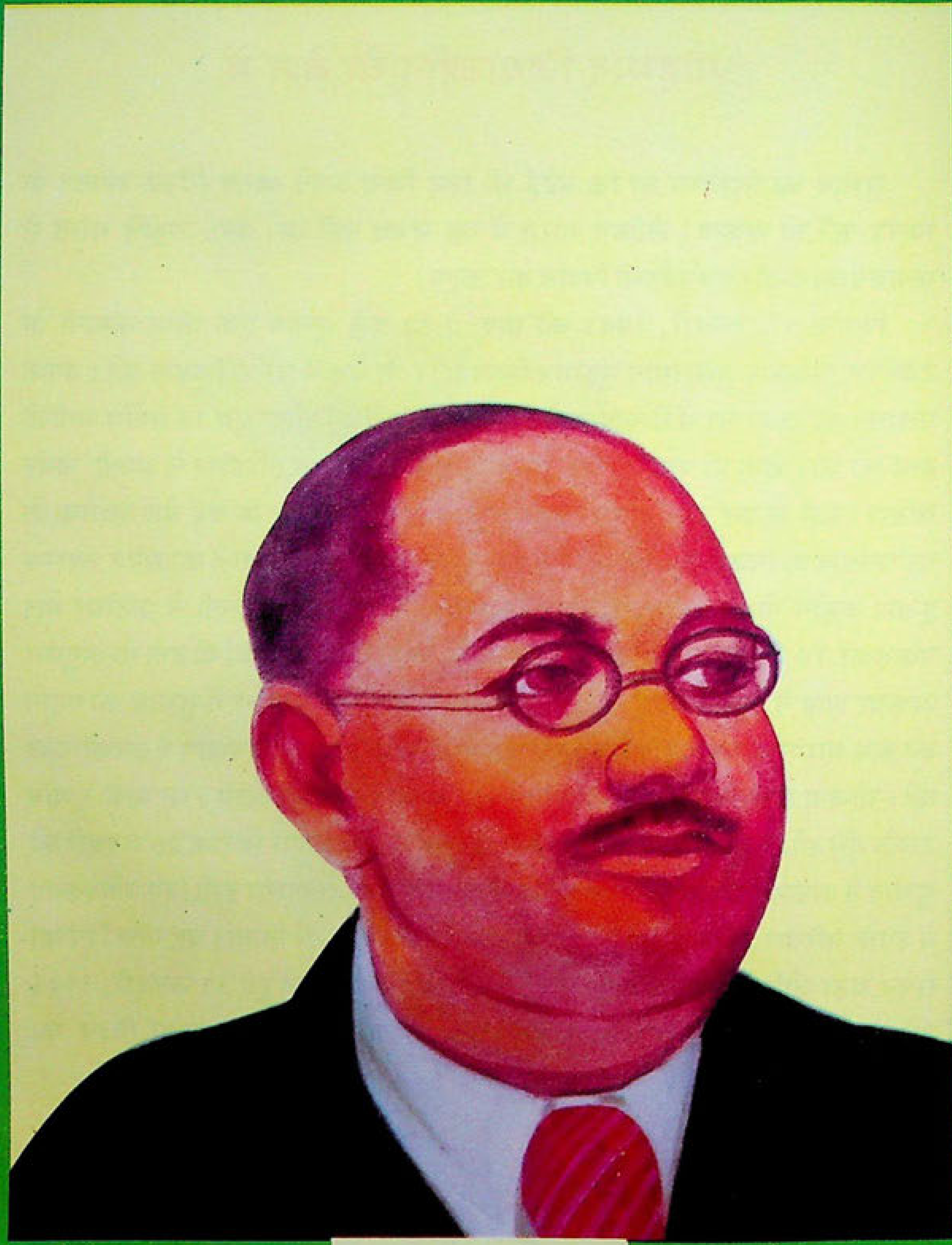

आरलैंडों मैजोटा के वेश में

काबुल की लाहौरी गेट के पास एक सराय में सुभाष और भगत राम तलवार काबुल से निकलने की योजना बनाने लगे। द्वितीय विश्व युद्ध चरम सीमा पर था। गूँगे व बहरे बने सुभाष पर निरंतर खतरा बढ़ता ही जा रहा था। अत: उनके ठहरने की व्यवस्था भगत राम के दोस्त उत्तमचन्द मलहोत्रा (काबुल के एक व्यापारी) के घर कर दी गई। सुभाष ने जर्मनी से सम्पर्क किया। उन्हें जर्मन से संदेश मिला कि वह इतालवी दूतावास में मिस्टर अलबर्टो करोनी से सम्पर्क करें। सुभाष पूरी रात करोनी को अपनी भावी योजना का ब्यौरा देने में व्यस्त रहे। उन्होंने करोनी को समझाया कि वह यूरोप में जर्मनी और इटली की मदद से वहाँ भारत की स्वतंत्र सरकार स्थापित करना चाहते हैं। तथा भारतीय युद्ध बंदियों को भरती कर मुक्ति सेना खड़ी करके ब्रिटेन के चंगुल से भारत को मुक्त कराना चाहते हैं। सुभाष ने 'शत्रु का शत्रु अपना दोस्त' की चाल चली। लेकिन रूस के मार्ग से ही जर्मनी पहुँचना संभव था। रूस भी बड़ी मुश्किल से ट्रांजिस वीसा देने पर तैयार हो गया। अत: सुभाष ने अपनी प्रतिभा और आत्म विश्वास के बल पर काबुल, इटली, जर्मनी और रूस चारों सरकारों का ताल-मेल बैठाने में सफलता हासिल कर ली। इन सरकारों ने सुभाष को गोपनीय ढंग से बर्लिन पहुँचाने की स्वीकृति दे दी।

इतालवी दूतावास के अधिकारी आरलैंडों मैजोटा के प्रतिरूप में सुभाष ने इतालवी कूटनीतिक पासपोर्ट बनवाया। हिन्दुकुश दर्रों को पार करते हुए अफगान सीमा चौकी से वह सीधे समरकंद पहुँचे। समरकंद से रेलगाड़ी द्वारा मास्को आये। मास्को से हवाई जहाज द्वारा बर्लिन पहुँच गये।

हिटलर से मुलाकात

रूस होते हुए सुभाष अप्रैल 1941 में बर्लिन (जर्मनी) पहुँच गये। जर्मन सरकार की सहायता से उन्होंने वहाँ 'फ्री इंडिया सेंटर' स्थापित किया। 'आजाद हिन्द रेडियो बर्लिन' से उन्होंने रेडियो से प्रसारण आरम्भ कर दिया। इटली और जर्मनी द्वारा गिरफ्तार भारतीय युद्ध बंदियों का विश्वास जीत कर 'इंडियन लीजन' नाम से सैनिक संगठन भी खड़ा कर दिया।

इसी बीच इतिहास ने करवट बदली। दिसम्बर 1941 में जापान ने आंग्ल-अमेरिकी शक्तियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। कुछ ही समय में जापान ने सिंगापुर को अंग्रेजों से मुक्त करा लिया। जापान में कैप्टन मोहनसिंह ने I.N.A. तथा रासबिहारी बोस ने 'इंडियन इंडिपेंडेंस लीग' का गठन कर लिया था। अतः जापान में सुभाष के लिए स्थिति अनुकूल थी। वहाँ से भारत पर आक्रमण कर भारत को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त कराना अधिक आसान था। अतः सुभाष ने इसी विषय पर हिटलर से मुलाकात की।

सुभाषचन्द्र बोस मई 1942 में जर्मनी के शासक एडोल्फ हिटलर से मिले तो पहली भेंट पर हिटलर ने कहा था-

''मैं 'फ्राइज-इंडिशे-फुहरर' का जर्मनी में स्वागत करता हूँ और श्रीमान के सुरक्षित बर्लिन पहुँचने पर हार्दिक बधाई देता हूँ।''

जर्मनी में 'फ्राइज-इण्डीशे-फुहरर' का अर्थ होता है- 'आजाद हिन्द के नेता' और तभी से सुभाष को 'नेताजी' कह कर पुकारा जाने लगा।

जर्मन और जापान दोनों का एक ही उद्देश्य था -'ब्रिटिश साम्राज्य का सफाया'। अतः हिटलर ने नेता जी को सुरक्षित जापान पहुँचाने के लिए हर प्रकार की सहायता का आश्वासन दे दिया।

हिटलर से मुलाकात

रूस होते हुए सुभाष अप्रैल 1941 में बर्लिन (जर्मनी) पहुँच गये। जर्मन सरकार की सहायता से उन्होंने वहाँ 'फ्री इंडिया सेंटर' स्थापित किया। 'आजाद हिन्द रेडियो बर्लिन' से उन्होंने रेडियो से प्रसारण आरम्भ कर दिया। इटली और जर्मनी द्वारा गिरफ्तार भारतीय युद्ध बंदियों का विश्वास जीत कर 'इंडियन लीजन' नाम से सैनिक संगठन भी खड़ा कर दिया।

इसी बीच इतिहास ने करवट बदली। दिसम्बर 1941 में जापान ने आंग्ल-अमेरिकी शक्तियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। कुछ ही समय में जापान ने सिंगापुर को अंग्रेजों से मुक्त करा लिया। जापान में कैप्टन मोहनसिंह ने I.N.A. तथा रासबिहारी बोस ने 'इंडियन इंडिपेंडेंस लीग' का गठन कर लिया था। अतः जापान में सुभाष के लिए स्थिति अनुकूल थी। वहाँ से भारत पर आक्रमण कर भारत को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त कराना अधिक आसान था। अतः सुभाष ने इसी विषय पर हिटलर से मुलाकात की।

सुभाषचन्द्र बोस मई 1942 में जर्मनी के शासक एडोल्फ हिटलर से मिले तो पहली भेंट पर हिटलर ने कहा था-

''मैं 'फ्राइज-इंडिशे-फुहरर' का जर्मनी में स्वागत करता हूँ और श्रीमान के सुरक्षित बर्लिन पहुँचने पर हार्दिक बधाई देता हूँ।''

जर्मनी में 'फ्राइज-इण्डीशे-फुहरर' का अर्थ होता है- 'आजाद हिन्द के नेता' और तभी से सुभाष को 'नेताजी' कह कर पुकारा जाने लगा।

जर्मन और जापान दोनों का एक ही उद्देश्य था -'ब्रिटिश साम्राज्य का सफाया'। अतः हिटलर ने नेता जी को सुरक्षित जापान पहुँचाने के लिए हर प्रकार की सहायता का आश्वासन दे दिया।

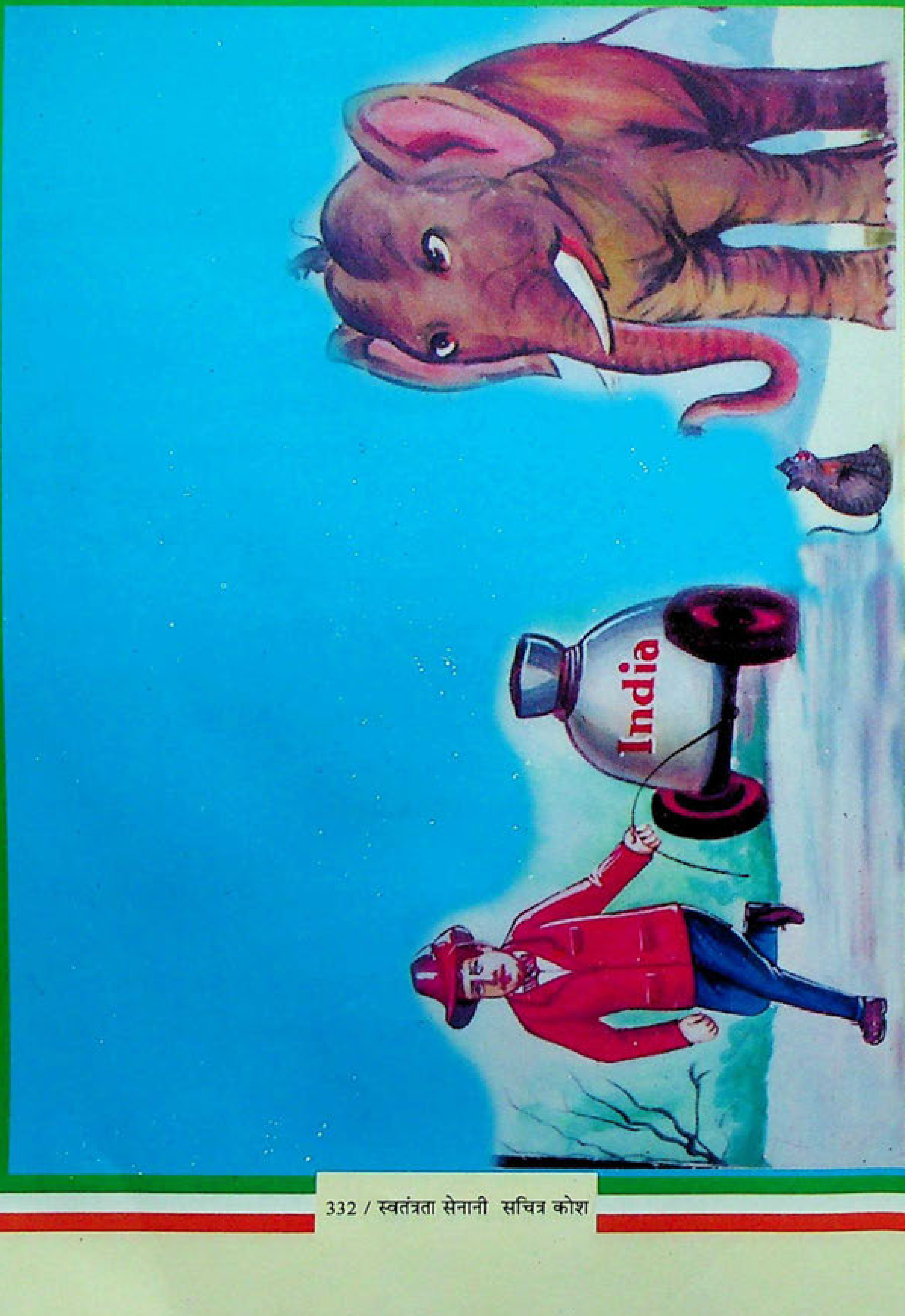
India

पोस्टर-युद्ध, नई सूझ

द्वितीय विश्व युद्ध अपने चरमोत्कर्ष पर था। ब्रिटेन की फौजें हर मोर्चे पर निरंतर हार रहीं थीं। इटली और जर्मनी ने हजारों की संख्या में ब्रिटिश सेना के जवानों को युद्ध बंदी बना लिया था। इनमें सबसे अधिक संख्या भारतीय सैनिकों की थी। सुभाष ने जर्मन सरकार के सहयोग से जर्मनी में 'आजाद हिन्द सरकार' गठित कर ली थी। उन्होंने युद्ध-रत भारतीय सैनिकों की आस्था को ब्रिटिश सम्राट से हटा कर 'भारत माता' के प्रति वफादार बनाने का नया तरीका निकाला 'पोस्टर युद्ध'। इन पोस्टरों को वायुयान से शत्रु सेना शिविरों में गिराया जाता था।

पहले पोस्टर में दिखाया गया है कि इतना बड़ा भारत हाथी के समान है। हमारी आपसी फूट के कारण उस हाथी पर ग्रेट ब्रिटेन रूपी चूहा सवार है। नीचे जर्मनी के रूप में बिल्ली चूहे को खाने के इंतजार में है।

दूसरे पोस्टर मे दिखाया गया है कि मि. चर्चिल (ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधान मंत्री) भारत की सारी दौलत को लाद कर इंग्लैंड ले जा रहे हैं।

ऐसे चित्रों से उन भारतीय सैनिकों को प्रेरणा मिलती थी जो अंग्रेजों की ओर से लड़ रहे थे। इनको पढ़ कर उनका मनोबल टूटता था। प्रेरित होकर कुछ आजाद हिन्द फौज में आकर मिल जाते थे।

आजाद हिन्द सेना ने जब, नेता जी का पैगाम लिया।
जै हिन्द का नारा गूँज उठा, हाथों में तिरंगा थाम लिया।।

मृत्यु को चुनौती

मित्र राष्ट्रों ने किसी भी प्रकार नेताजी को पकड़ने के लिए जाल बिछाया हुआ था। नेता जी ने जर्मनी से जापान जाने का साहसिक निर्णय ले लिया। लेकिन नौसेना विशेषज्ञों ने अपनी रिपोर्ट दी, 'सुभाष चन्द्र बोस की जर्मनी से जापान जीवित पहुँचने की संभावना मात्र पाँच प्रतिशत है।' इस पर सुभाष का उत्तर था - ''यदि यह संभावना मात्र एक प्रतिशत भी होगी तब भी मैं यह यात्रा करने को आतुर हूँ।''

नेताजी ने 8 फरवरी, 1943 को जर्मन पनडुब्बी से जापान के लिए प्रस्थान किया। उस पनडुब्बी में व्यक्ति सीधा खड़ा भी नहीं हो सकता था। हर पल डीजल की बदबू, यहाँ तक कि भोजन में भी डीजल की गंध छाई रहती थी। हवाई हमलों के डर से पनडुब्बी दिन में समुद्र की तलहटी में शांत पड़ी रहती थी केवल रात में ही चलती थी। एक बार पनडुब्बी पर मारक तारपीडो से शत्रु द्वारा हमला भी किया गया लेकिन ईश्वर ने रक्षा की।

28 अप्रैल, 1943 को इस जर्मन पनडुब्बी से नेता जी को जापानी पनडुब्बी में स्थानान्तरित होना था। लेकिन तभी समुद्री तूफान आ गया। ऊपर से हवाई आक्रमण का खतरा था। क्षण मात्र में सारा खेल समाप्त हो सकता था। तभी दो जापानी बेहतरीन नौसैनिकों ने जापानी पनडुब्बी से एक रस्सा बाँधा। उसे पकड़ कर रबड़ की डोंगी में सवार हो वह जर्मन पनडुब्बी के निकट पहुँचे। नेताजी ने तुरंत उस डोंगी में छलाँग लगा दी। जापानी पनडुब्बी पर सवार सैनिक धीरे-धीरे रस्से से डोंगी को अपनी ओर खींचते रहे। समुद्र की तूफानी लहरों से संघर्ष करके मृत्यु को चुनौती देते हुए डोंगी में सवार नेता जी जापानी पनडुब्बी तक पहुँचे। 25600 कि.मी. की यह यात्रा 90 दिन में पूरी हुई।

रासबिहारी बोस

रासबिहारी बोस का जन्म 1886 में हुआ था। वह देहरादून के फोरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट में लिपिक के पद पर कार्यरत थे। लेकिन उनके हृदय में राष्ट्र प्रेम की भावना इतनी प्रबल थी कि अपना सारा जीवन ही देश की आज़ादी की खातिर कुर्बान कर दिया। उन्होंने क्रांतिकारी दल का नेतृत्व किया। रासबिहारी बोस ने 23 दिसम्बर, 1912 को दिल्ली के प्रथम वायसराय पर चाँदनी चौक में बम प्रहार करा अंग्रेजों के घमंड को चकनाचूर कर दिया। 21 फरवरी, 1915 को समस्त भारत में एक साथ सैनिक क्रांति की योजना भी उन्होंने ही बनाई थी। लाहौर और रावल पिंडी से लेकर मेरठ, लखनऊ, बनारस, दीनापुर व राजस्थान तक की सैनिक छावनियों के भारतीय सैनिक क्रांति हेतु तैयार बैठे थे।लेकिन ब्रिटिश सरकार को इसकी पूर्व सूचना मिल जाने से यह योजना पूरी नहीं हो पाई।

रासबिहारी बोस को निश्चय हो गया कि बिना विदेशी मदद के भारत कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता। अत: वह गुप्त रूप से जापान चले गये। 1923 में उन्हें जापानी नागरिकता मिल गई। वहाँ पूर्वी एशिया में लाखों की संख्या में प्रवासी भारतीय रह रहे थे। उन्होंने उनमें भारत की स्वतंत्रता की ज्योति प्रज्वलित की। टोकियो में 'इंडियन इन्डीपेन्डेस लीग' की स्थापना कर दी गई। बैंकाक में सुमात्रा, फिलीपींस व थाईलैंड आदि अनेक देशों में इसकी शाखाएँ स्थापित कर दीं। मोहनसिंह के नेतृत्व में इंडियन नेशनल आर्मी (I.N.A.) का भी गठन कर दिया। उन्होंने जर्मनी से नेताजी सुभाष को जापान बुलाकर 'इंडियन नेशनल आर्मी' का नेतृत्व उन्हें सौंप दिया। नेताजी ने उसे 'आजाद हिन्द फौज' का नाम दिया। रासबिहारी बोस ने एक भव्य समारोह में 4 जुलाई 1943 को 'आजाद हिन्द संघ' की समस्त सम्पत्ति नेताजी को अध्यक्ष पद देकर उन्हें समर्पित कर दी। स्वाधीनता के लिए विदेशों से संघर्ष करती हुई यह ज्योति 2 जनवरी, 1945 को पंचतत्व में विलीन हो गई।

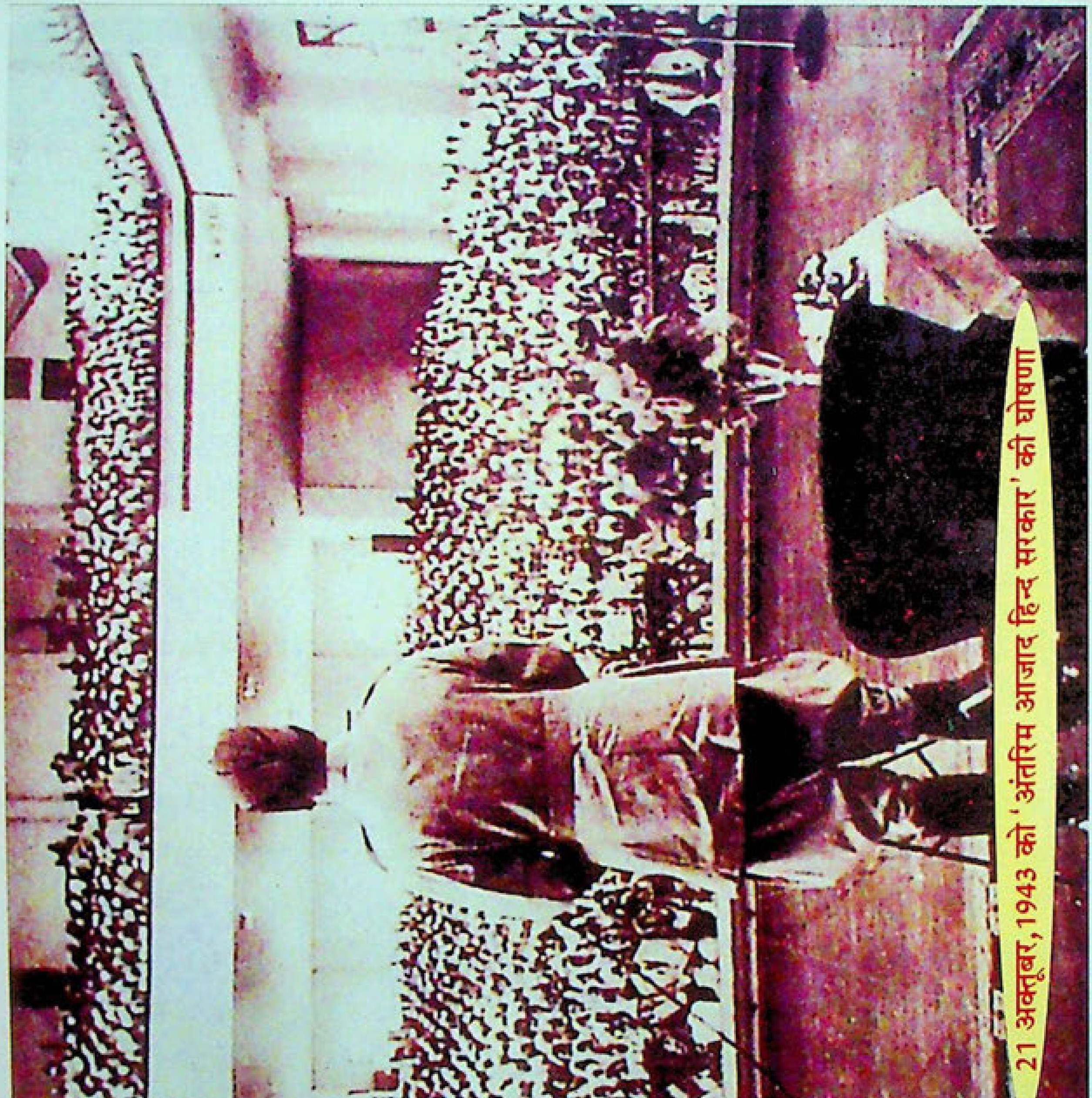

21 अक्तूबर,1943 को 'अंतरिम आजाद हिन्द सरकार' की घोषणा

'आजाद हिंद फौज'

द्वितीय विश्व युद्ध चल रहा था। जर्मनी इंग्लैण्ड को करारी हार दे रहा था। अतः जर्मनी व जापान के पास हजारों की संख्या में भारतीय युद्ध बंदी थे। जर्मनी में सुभाष व जापान में रासबिहारी बोस ने वहाँ की सरकारों का विश्वास प्राप्त कर भारतीय युद्ध बंदियों को आजाद हिंद फौज के पक्ष में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ कर भारत को स्वतंत्र कराने के लिए तैयार कर लिया।

सुभाष ने 26 दिसम्बर, 1941 को बर्लिन में आजाद हिन्द फौज की स्थापना कर ली। इसी प्रकार जापान में रासबिहारी बोस ने मार्च 1942 में 'इंडियन इंडिपेंडेस लीग' की स्थापना कर इंडियन नेशनल आर्मी (आई एन ए) का गठन कर दिया।

जापान की सेनाओं ने सिंगापुर पर अपना अधिकार कर 23 मार्च, 1942 को अंडमान निकोबार द्वीप समूह भी अंग्रेजों से मुक्त करा लिया। सुभाष को लगा कि जापान पहुँच कर भारत को आजाद कराना अधिक सुविधाजनक है। अतः 13 जून, 1943 को नेताजी भी जापान पहुँच गए। यहाँ रासबिहारी बोस ने इंडियन नेशनल आर्मी की कमान नेताजी को सौंप दी। 21 अक्टूबर, 1943 को भारत की अस्थाई 'आजाद हिन्द सरकार' की घोषणा कर दी गई। जापान, मंचूरिया, थाईलैंड, इटली व फिलीपिंस आदि नौ राष्ट्रों ने इसे मान्यता दे दी। आजाद हिंद फौज ने 24 अक्टूबर, 1943 को अमेरिका व इंग्लैंड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। भारतीय सैनिकों के शौर्य प्रदर्शन से जापान सैनिक भी हतप्रभ थे।

लेकिन अमेरिका द्वारा 'अणु बम' के प्रहार से जापान जीती बाजी हार गया। आजाद हिन्द फौज के सत्रह हजार सैनिकों को गिरफ्तार करके अंग्रेजों ने दिल्ली के लाल किले में मुकदमा चलाया। यह मुकदमा ही अंत में अंग्रेजों के लिए 'कफ़न' बना।

सहगल, ढिल्लों व शाहनवाज

दिल्ली के लालकिला में आजाद हिन्द फौज के बड़े अफसरों-गुरुबख्श सिंह ढिल्लों, कर्नल प्रेम कुमार सहगल एवं जनरल शाहनवाज खाँ पर फौजी अदालत में मुकदमा चला कर उन्हें फाँसी पर लटकाने का षडयंत्र हो रहा था लेकिन प्रबल जनमत के कारण ब्रिटिश सरकार को उन्हें मुक्त करना पड़ा। विश्वयुद्ध के समय ब्रिटिश सरकार ने भारतीय सैनिकों एवं जनता में यह झूठा प्रचार किया कि नेताजी सुभाष गद्दारी करके जापान से मिल गये हैं। ब्रिटेन यदि युद्ध में हारता है तो भारत पर जापान का अधिकार हो जायेगा लेकिन मुकदमे में यह बात जग-जाहिर हो गई कि भारतीय सीमा पर आजाद हिन्द फौज के 26 हजार सैनिकों ने भारत की आजादी की खातिर कुर्बानी दे दी। इस बात का पता चलते ही दिनांक 18 फरवरी, 1946 को मुम्बई में नौ सैनिकों के प्रशिक्षण स्थल 'तलवार' के जवानों ने क्रांति का बिगुल बजा दिया -'इन्कलाव.... जिंदाबाद' तथा 'आजाद हिन्द फौज के वीरों को रिहा करो' नारों से आकाश गूँज उठा। मुम्बई शहर के लोगों को जब पता चला तो जनता ने सैनिकों का साथ दिया और पूरे शहर में हड़ताल कर दी। सैनिकों ने शहर में मार्च किया तो जनता ने उन पर पुष्प वर्षा की।

कुछ ही घंटों में मुम्बई के छोटे-बड़े सभी जहाजों, बंदरगाहों व बैरकों में क्रांति की लपटें उठने लगीं। आकाशवाणी के प्रसारण ने ''नौसेना विद्रोह'' के समाचार को विश्व के कोने-कोने तक पहुँचा दिया। परिणाम यह हुआ कि देश के करांची, विशाखापट्टनम, मद्रास, कोचीन, कलकत्ता आदि बन्दरगाहों के भारतीय सैनिक भी इस क्रांति में शामिल हो गए। यहाँ तक कि वायु और थल सेना में भी क्रांति का विस्फोट होने की संभावना हो गई। ब्रिटिश सरकार ने इस क्रांति को दबाने हेतु अपनी पूरी ताकत झोंक दी। हजारों सैनिकों एवं नागरिकों ने अपने प्राणों की आहुति दे कर अपने रक्त की बूँदों से मातृवेदी का शृंगार किया।

National Herald, 22 February 1946
N. RATINGS MUTINY
REGULAR WARFARE IN BOMBAY
STRIKERS CAPTURE ARMOURY AND HOLD TWENTY SHIPS
ONE KILLED AND NINE INJURED AT KARACHI
Flags of Muslim League, Indian National Congress and Union Jack flying over Royal Indian Navy Quarters in Bombay
A poster on RIN Mutiny by Chittaprasad
RIN Mutineers marching towards their signalling school Talwar

नौ-सेना क्रांति

18 फरवरी, 1946 को आकाशवाणी से भारत में नौ-सेना विद्रोह का समाचार प्रसारित होते ही लंदन में खलबली मच गई। ब्रिटिश संसद की दीवारें हिलती नजर आने लगीं। प्रधानमंत्री क्लेमेंट एटली ने 19 फरवरी को घोषणा कर दी- ''हम भारत की सत्ता-हस्तांतरण हेतु 'केबिनेट मिशन' भारत भेज रहे हैं'' ब्रिटेन की संसद में विपक्ष के विरोध का उत्तर देते हुए एटली ने कहा-

''नेताजी सुभाष एवं आजाद हिन्द फौज के प्रभाव के कारण ब्रिटिश भारतीय सेना अब ब्रिटिश सम्राट के प्रति वफादार नहीं रही है और उसकी वफादारी के बिना भारत को एक दिन भी अपने अधीन रखना असंभव है।''

इन घोषणाओं को बहाना मात्र समझ भारतीय नौ-सैनिक अंग्रेजी सत्ता को जड़ से नष्ट करने पर उतारू थे। मुम्बई में पाँच दिन तक खूनी संघर्ष चलता रहा। सैनिकों के समर्थन में मुम्बई की जनता खुल कर सामने आ गई। इस संघर्ष में छात्रों की बड़ी सराहनीय भूमिका रही। सड़कों पर ''हड़ताल वापस नहीं होगी, हम तुम्हारे साथ हैं' नारे लगाते हुए छात्रों का जोश देखते ही बनता था। केवल 22 व 23 फरवरी दो दिन में ही लगभग 60 छात्रों व सैंकड़ों लोगों ने अपनी कुर्बानी दी। अब अंग्रेजों को भारत में जान बचानी भारी हो रही थी। लंदन से 'केबिनेट मिशन' की घोषणा होते ही भारतीय नेताओं ने क्रांतिकारी सैनिकों पर हथियार डालने हेतु दबाव डालना शुरू कर दिया। अत: भारतीय नेताओं के आग्रह पर 23 फरवरी, 1946 को क्रांतिवीरों ने घोषणा कर दी, ''हम ब्रिटेन के आगे नहीं भारत के आगे समर्पण कर रहे हैं।'' सैकड़ों सैनिक नौकरी से निकाल दिये गए। दुर्भाग्य यह रहा कि इन सैनिकों को आजादी के बाद भी सेना में पुन: बहाल नहीं किया गया।

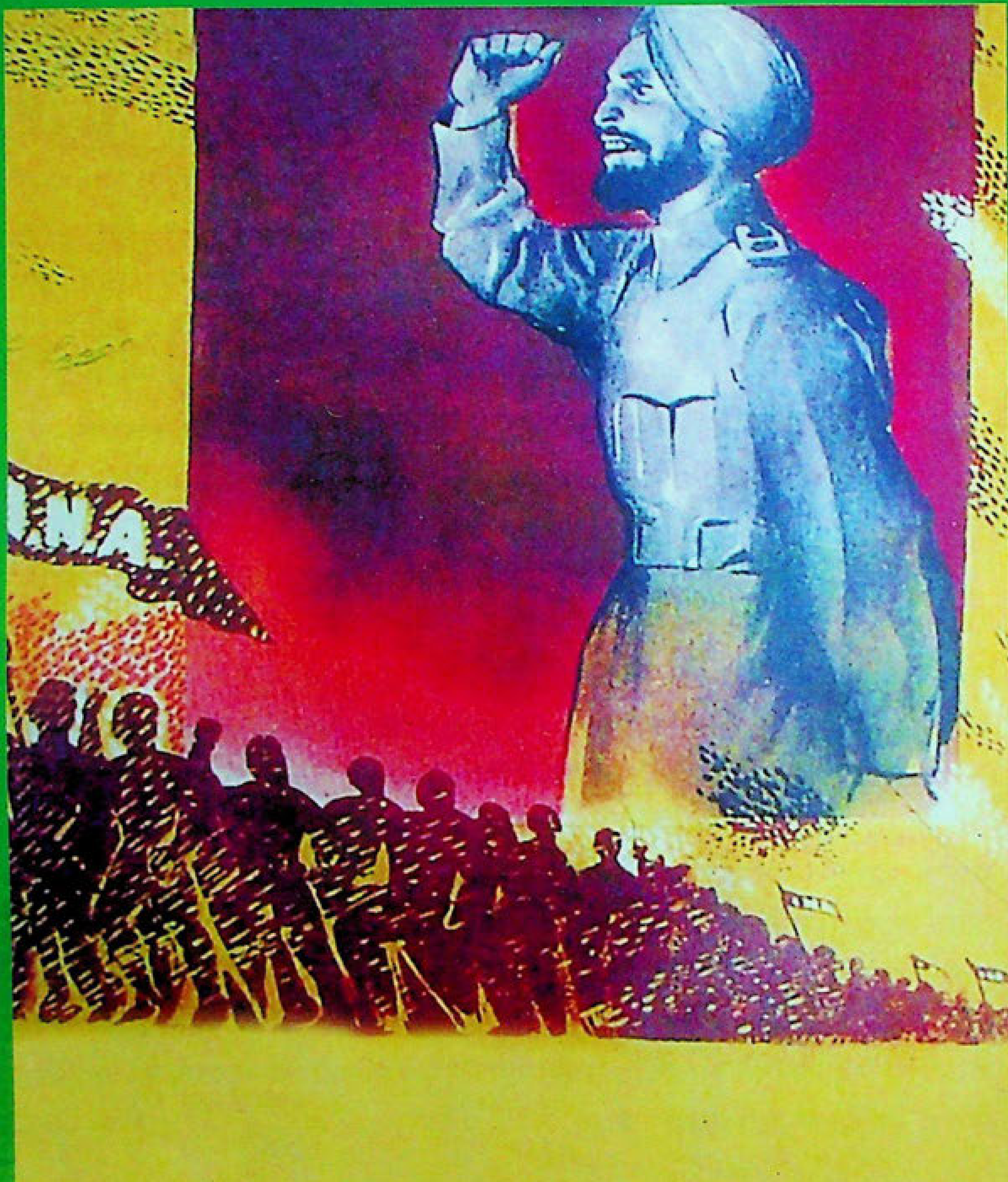
I.N.A.

कैप्टन मोहनसिंह

कैप्टन मोहनसिंह अंग्रेजी शासन की 41वीं पंजाब रेजीमेंट की प्रथम बटालियन में थे। यह बटालियन जापानी सेना से परास्त होकर मलाया में जित्रा के जंगलों में छिपी थी। मेजर फ्यूजीवारा (जापानी फौज के अधिकारी) एवं ज्ञानी प्रीतमसिंह (भारतीय स्वतंत्रता लीग के अधिकारी) ने जित्रा के जंगलों में कैप्टन मोहन सिंह से मुलाकात की। इन दोनों ने कैप्टन मोहनसिंह को भारतीय स्वतंत्रता लीग में शामिल होकर भारत की स्वतंत्रता हेतु कार्य करने के लिए तैयार कर लिया। अत: जित्रा के जंगलों में दिनांक 10 दिसम्बर, 1941 को 'आजाद हिन्द फौज' की स्थापना कर दी गई। इस मुक्ति सेना का जनरल आफीसर कमांडिग कै० मोहनसिंह को बनाया गया। उसी दिन जित्रा का जंगल ''आजाद हिन्द फौज ..... जिंदाबाद'' के गगन-भेदी नारों से गूँज उठा।

दिनांक 16 फरवरी, 1942 को अंग्रेज कर्नल हंट ने चालीस हजार भारतीय युद्ध बंदियों को 'ब्रिटिश सम्राट के प्रति वफादारी' की शपथ से मुक्त कर जापान सरकार को सौंपने की ऐतिहासिक घोषणा की। इन युद्ध बंदियों को जापान सरकार की ओर से मेजर फ्यूजीवारा ने ग्रहण कर कैप्टन मोहनसिंह (G.O.C.) के सुपुर्द कर दिया। इस प्रकार प्रथम बार आजाद हिन्द फौज (I.N.A.) के गठन का श्रेय कैप्टन मोहनसिंह को जाता है।

जापानी सेना के साथ तनाव एवं मनमुटाव के कारण 29 दिसम्बर, 1942 को कैप्टन मोहनसिंह को जापानी सेना ने गिरफ्तार कर लिया। कैप्टन मोहनसिंह की गिरफ्तारी के बाद ही आई.एन.ए. भंग कर दी गई। बाद में रासबिहारी बोस ने उसे पुन: सक्रिय कर उसकी कमान नेताजी सुषाषचन्द्र बोस को सौंप दी। बाद में अंग्रेजी सेना की जीत के बाद उन्हें 1945 में दिल्ली लाया गया एवं 1946 में बिना शर्त मुक्त कर दिया गया।

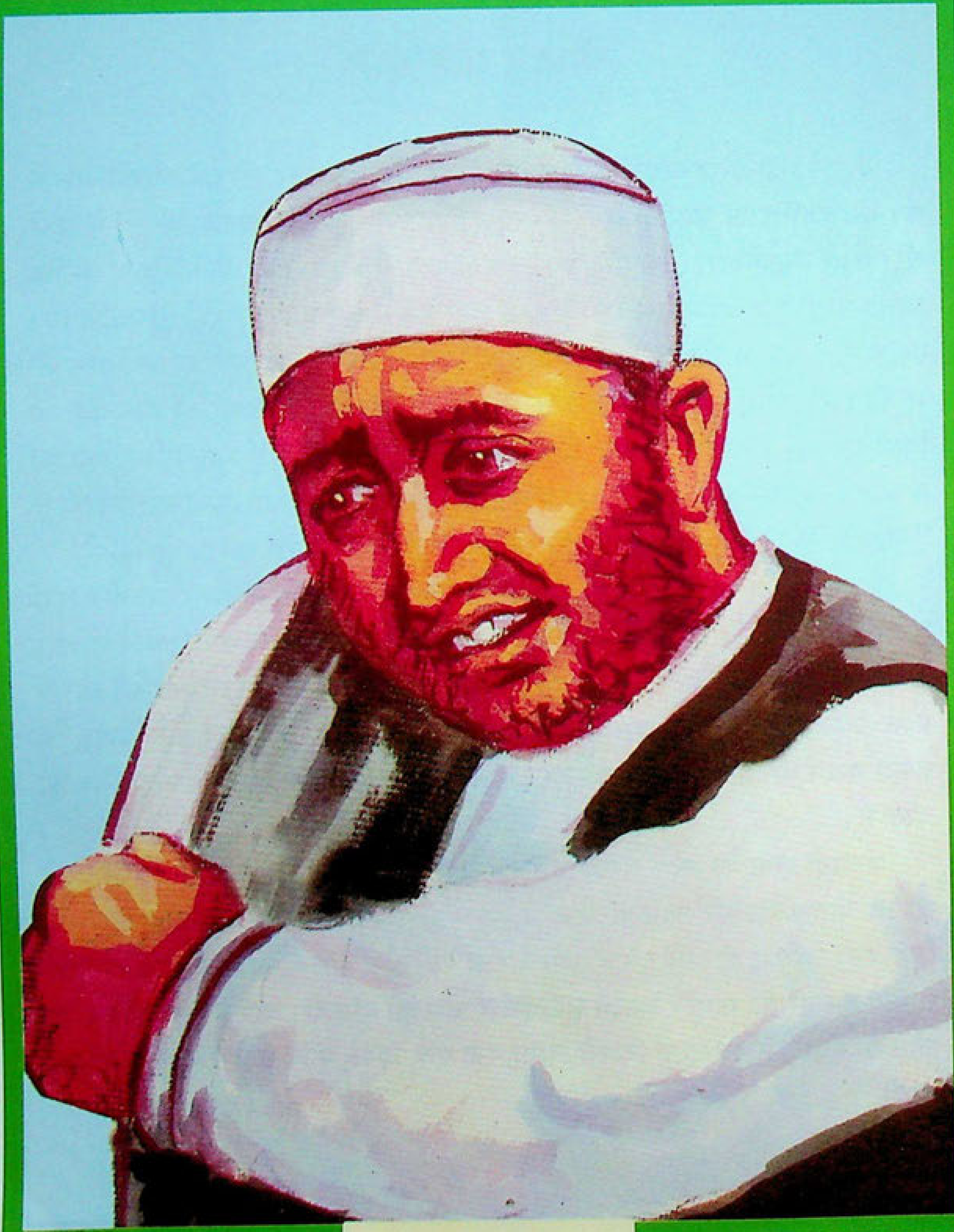

भगतराम तलवार (रहमत खान)

देश की आजादी की खातिर जब सुभाष चन्द्र बोस ने बड़े गोपनीय ढंग से 17 जनवरी, 1941 को देश से कूच किया था तब भगत राम तलवार ने भारी मुसीबत व संकट के समय उनकी सहायता की थी। पेशावर से सुभाष को काबुल पहुँचाने के लिए सरहद पार कराना बड़ा दुष्कर कार्य था। लेकिन भगत राम तलवार ने उन्हें अपना छोटा भाई बनाया। वहाँ की भाषा का ज्ञान न होने के कारण सुभाष को गूँगा और बहरा हो जाने का अभिनय करना पड़ा। भगतराम रहमत खान के वेश में उन्हें इलाज हेतु काबुल की एक दरगाह ले जाने का बहाना लेता हुआ चल पड़ा। बड़ी दुर्गम पहाड़ियाँ कभी पैदल तो कभी खच्चर पर सवार होकर, नीचे बर्फीले पहाड़ तो ऊपर से हिम वर्षा तथा बर्फीली हवाओं के झंझावातों को चीरते हुए सरहद पार कर 24 जनवरी, 1941 को वह काबुल पहुँच गये। फिर वहाँ से जर्मनी जाने के लिए भारी संघर्ष करना पड़ा। भगत राम एक साये की तरह नेता जी का साथ देता रहा। इटली, जर्मनी व रूस के दूतावासों व राजनयिकों से सम्पर्क कोई आसान काम नहीं था। दो महीने के बाद आखिर सफलता हाथ लगी। 18 मार्च को भगत राम तलवार ने सुभाष को जर्मनी के लिए विदा किया।

भगत राम तलवार का सारा परिवार ही राष्ट्र भक्त था। उनके सगे भाई ने पंजाब के गर्वनर सर जेफ़री मॉण्टमारेंसी पर गोलियों की बौछार कर फाँसी का फँदा चूमा। उनके पिता लाला गुरुदास मल को ब्रिटिश सरकार ने अनेकों झूठे अपराधों में फँसा दिया। अदालत में ही जिरह के समय उनका प्राणान्त हो गया।

देश हित तिल-तिल जले जो......

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में संघर्षरत क्रांतिवीरों में कुछ ऐसी हस्तियाँ थीं जिनके अन्दर ब्रिटिश सरकार का तख्ता पलटने की प्रतिभा एवं सामर्थ्य थी। ऐसे लोगों में नेताजी सुभाष, वीर सावरकर, राजा महेन्द्रप्रताप व अरविंद आदि नाम लिये जा सकते हैं। ब्रिटिश सरकार इन क्रांतिवीरों की दक्षता से परिचित थी लेकिन वह यह भी जानती थी कि सारा देश अहिंसा के रंग में डूबा है। अतः उसने इन क्रांतिवीरों को या तो देश निकाला दे दिया, अथवा उन्हें आजीवन जेलों में ही मर-खपने के लिए बाध्य कर दिया।

लेकिन देश को स्वतंत्र देखने हेतु उनकी जिजीविषा ने उन्हें जीवित रखा। अन्ततः देश स्वतंत्र हुआ। वह क्रांतिवीर जेल से बाहर निकले तो देखा कि उनकी सम्पत्ति जब्त हो चुकी थी। उनका आशियाँ उजड़ चुका था लेकिन जिस लक्ष्य के लिए वे तिल-तिल जले वह लक्ष्य पूरा हुआ। अब उन्हें कोई गम न था। कोई इच्छा शेष न थी।

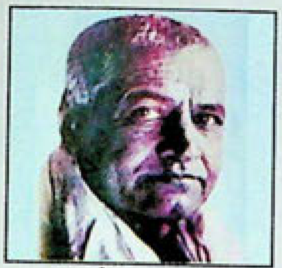

भाई परमानन्द

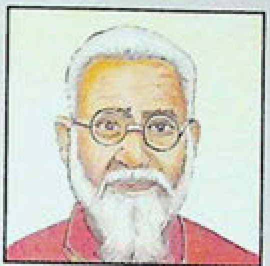

राजा महेन्द्रप्रताप

विनायक सावरकर

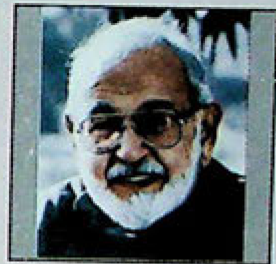

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन

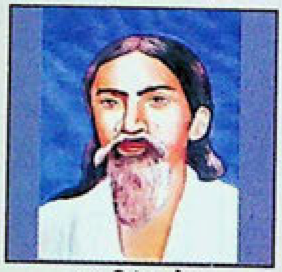

अरविंद घोष

बटुकेश्वर दत्त

रानी गाईडिन्ल्यू

श्यामलाल गुप्त 'पार्षद'

विजयसिंह पथिक

चन्द्रसिंह गढ़वाली

होतीलाल वर्मा + बाबूलाल हरि

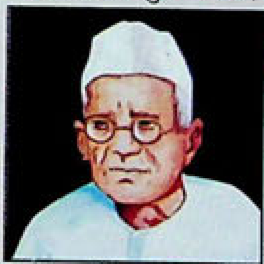

बाबू विष्णु पराड़कर

जगतराम भारद्वाज

डॉ. गयाप्रसाद

लद्दाराम कपूर, बाबूराम सेवक

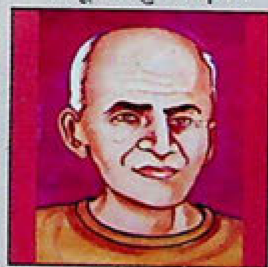

पं. सुन्दरलाल

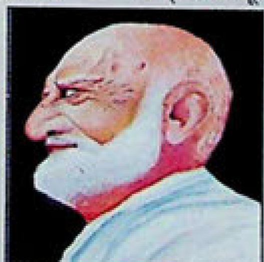

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

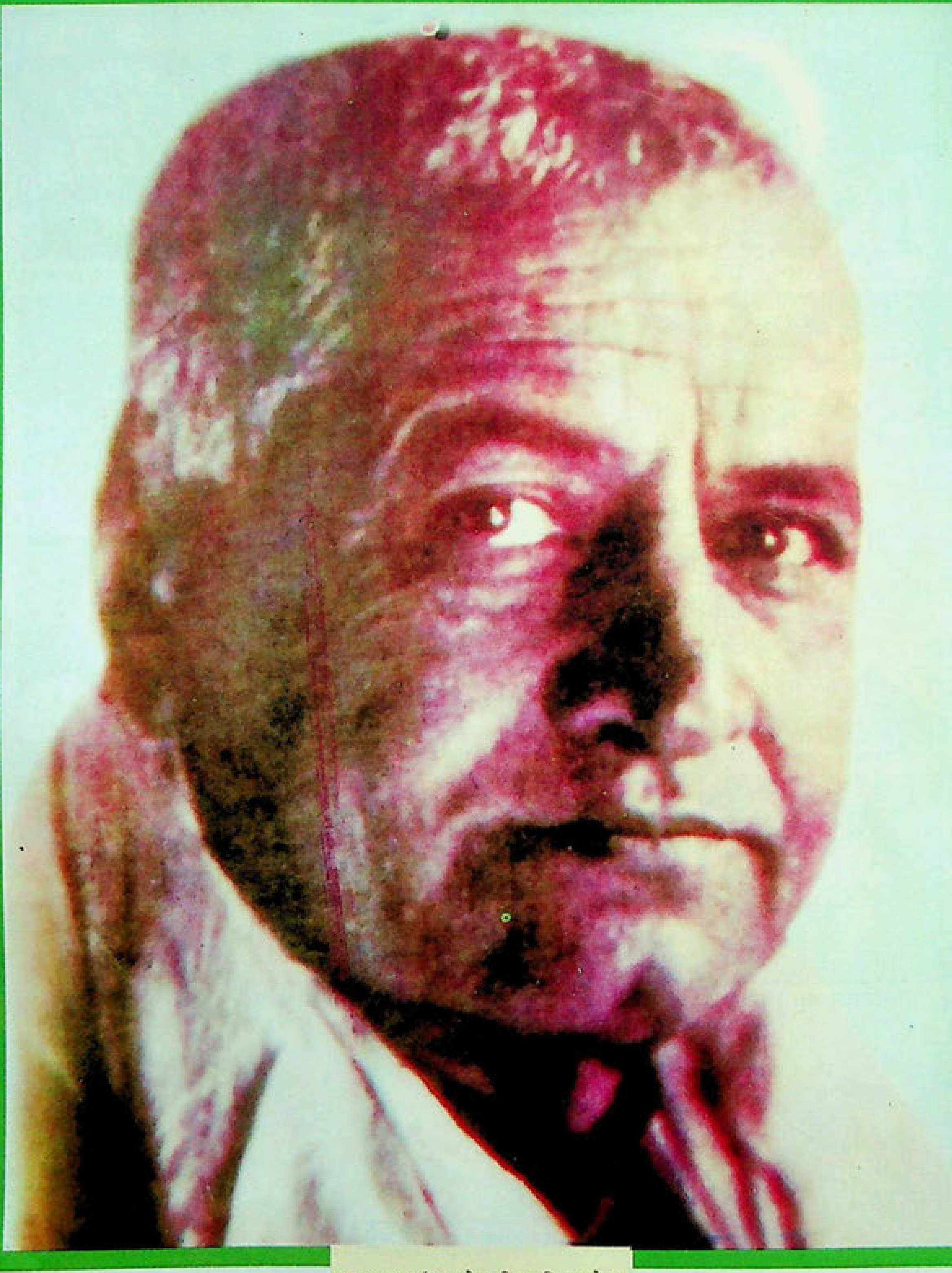

भाई परमानन्द

भाई परमानन्द का जन्म 4 नवम्बर, 1876 को झेलम जिले के करियाला गांव में भाई ताराचन्द के पुत्र के रूप में हुआ था। वे सिखों के नवें गुरु तेगबहादुर के साथ बलिदान देने वाले भाई मतिदास के वंशज थे। बचपन से ही आर्य समाज भाई परमानन्द की रग-रग में बसा था। अतः वह आर्य समाज के प्रचार हेतु अफ्रीका गये। यहाँ गाँधी जी पर इनकी सादगी का बहुत प्रभाव पड़ा। इसके बाद वह इंग्लैंड पहुँचे। यहाँ उनका सम्पर्क प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्यामजीकृष्ण वर्मा से हुआ। भारत लौट कर उन्होंने अंग्रेजों के काले कारनामों पर 'भारत का इतिहास' लिखा जिससे भारतीय क्रांतिवीरों को बड़ी प्रेरणा मिली। इनके विचारों ने सरकार को आतंकित कर दिया। अतः 1910 में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। बाद में उन्हें देश निकाला दे दिया गया। आपने अमेरिका जाकर सेनफ्रांसिस्को में 'औषध विज्ञान' पर उच्च शिक्षा प्राप्त की। आपके व्याख्यानों से प्रभावित होकर स्टेनफोर्ड विश्व विद्यालय ने आपको 'हिन्दू दर्शन तथा संस्कृति' का प्राध्यापक नियुक्त कर लिया। निष्कासन अवधि समाप्त होते ही आप भारत लौटे। लाहौर में दवाघर स्थापित किया। पंजाब के तत्कालीन गवर्नर माइकल ओ' डायर ने आरोप लगाया कि उनके दवाघर में बम बनते हैं। डी.ए.वी. कालेज के विद्यार्थी, भगतसिंह, भगवती चरण, सुखदेव आदि भाई परमानन्द से प्रेरणा लेते थे। भाई परमानन्द को 1915 में लाहौर षडयंत्र केस में फाँसी की सजा हो गई। बाद में उसे आजीवन कारावास में बदला गया। आपको अंडमान की जेल में कठोर यातनाएँ दी गईं। सी.एफ. ऐंड्रयूज एवं मालवीय जी के प्रयासों से आपको 1919 में जेल से मुक्ति मिली। इसके बाद आपने पंजाबी विद्यापीठ स्थापित की। लाला लाजपतराय एवं मालवीय जी के सहयोग से हिन्दू महासभा गठित की। देश के बँटवारे से उन्हें इतना अधिक कष्ट हुआ कि आजादी के बाद चार महीनों के अन्दर ही 8 दिसम्बर, 1947 को आपने देह त्याग कर दिया।

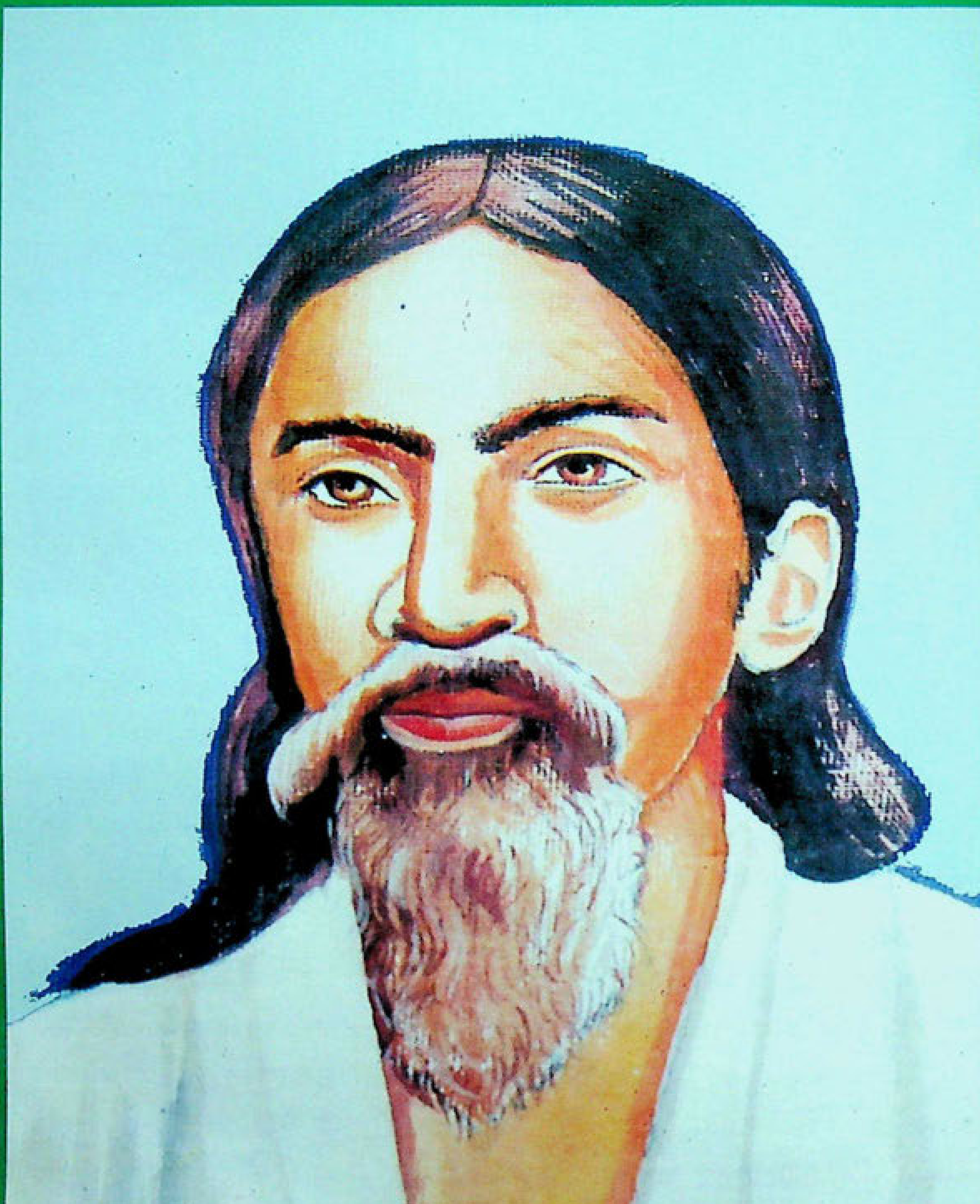

अरविंद घोष

अरविंद घोष का जन्म 15 अगस्त, 1872 को कोलकाता में हुआ था। अरविंद की प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण रूप से अंग्रेजी वातावरण में हुई। लन्दन में उन्होंने आई.सी.एस. परीक्षा तो उत्तीर्ण की लेकिन वह आवश्यक विषय घुड़सवारी की परीक्षा में ही न बैठे। वास्तव में नियति उन्हें कुछ और ही बनाना चाहती थी। बड़ौदा नरेश उनकी प्रतिभा से भलीभांति परिचित थे अत: उनके भारत लौटते ही बड़ौदा नरेश ने उन्हें अपने यहाँ रख लिया। उनका आध्यात्मिक संतों से साक्षात्कार हुआ। एक नागा संन्यासी (संभवत सखरिया स्वामी) ने अरविंद को स्तोत्र के रूप में काली का एक मंत्र दिया तथा उन्हें भारत को स्वतंत्र कराने हेतु वैदिक यज्ञ का अनुष्ठान भी बतलाया। यहाँ पर उन्होंने एक विप्लवी दल की सदस्यता भी ग्रहण कर ली।

ब्रिटिश सरकार ने 1905 में बंगाल का विभाजन कर दिया। अरविंद तुरंत बड़ौदा से बंगाल चले आये। यहाँ पर बंग-भंग के विरोध में विप्लवी संगठनों को मजबूत किया। 'वन्देमातरम्' व 'युगान्तर' जैसे क्रांतिकारी पत्रों का सम्पादन किया। अरविंद ने क्रांतिकारी भावों से ओत-प्रोत 'बाजी प्रभु' और 'विदुला' दो लम्बे ओजस्वी काव्यों की रचना की। उन्होंने अंग्रेजी भाषा में 'सावित्री' नामक महाकाव्य की रचना की। इस महाकाव्य ने समस्त विश्व के अंग्रेजी साहित्य में तहलका मचा दिया। यह विश्व का पहला ग्रंथ है जिसे अंग्रेजी भाषा में मंत्रों द्वारा लिखा गया है।

अरविंद ने बंगाल विभाजन के विरोध में ''वन्देमातरम्'' को सशक्त हथियार के रूप में प्रयोग किया। अरविंद घोष को ब्रिटिश सरकार ने झूठे 'मानिकतल्ला बम केस' में फँसा कर फाँसी देने का निश्चय कर लिया था। लेकिन कन्हाई लाल दत्त ने सरकारी गवाह नरेन्द्र गोस्वामी की हत्या करके 35 क्रांतिवीरों को फाँसी से बचा लिया। अरविंद शक्ति के उपासक थे। उनकी मान्यता थी कि भारत को शक्ति के द्वारा ही बेड़ियों से मुक्त कराया जा सकता है। उनकी रचना 'भवानी मंदिर' का भी यही संदेश था। 5 सितम्बर, 1950 को उनका पांडिचेरी आश्रम में निधन हो गया।

विजयसिंह 'पथिक'

विजयसिंह 'पथिक' का जन्म 28 फरवरी, 1875 को अख्त्यारपुर बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश) में किसान गुर्जर परिवार में हुआ था। विजयसिंह पथिक का पूर्व नाम भूपसिंह था। 1891 में वह अपनी बहन के पास राजस्थान चले गये। 1905 में वह प्रसिद्ध क्रांतिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल के सम्पर्क में आये। इसके बाद तो उनके जीवन में क्रांतिकारी गतिविधियों की बाढ़ सी आ गई। उन्होंने अनेक क्रांतिकारी पत्रों, युगान्तर' 'राजस्थान केसरी', 'राजस्थान संदेश' एवं आगरा से 'नव संदेश' आदि का सम्पादन किया। यह पत्र ब्रिटिश सरकार की कुनीतियों के विरुद्ध आग उगलते थे। उन्होंने बंगाल के क्रांतिकारियों को फाँसी पर लटकाने के लिये जिम्मेदार बंगाल के गवर्नर फ्रेजर की हत्या का असफल प्रयास किया। अलीपुर बम केस में फँसे क्रांतिवीरों को बचाना था। अत: भूपसिंह वेष बदल कर जेल में नौकरी करने लगे। वहाँ सरकारी गवाह नरेन्द्र गोस्वामी को मारने के लिए कन्हाईलाल दत्त की मदद की।

1908 में खुदीराम बोस की फाँसी के बाद भूपसिंह ने क्रांतिवीरों के साथ मिल ब्रिटिश सरकार की नींद उड़ा दी। अलीपुर षड़यंत्र केस के सरकारी वकील विश्वास एवं डी.एस.पी. को भूपसिंह ने अदालत में ही गोली से उड़ा दिया। इसके बाद रास बिहारी बोस ने भूपसिंह को राजस्थान भेजा। 21 फरवरी, 1915 को सारे देश में एक साथ सैनिक क्रांति की योजना थी। इसी हेतु भूपसिंह ने अजमेर कैंटोनमैंट पर 21 फरवरी को धावा बोलने की पूरी तैयारी कर ली थी। लेकिन वह योजना असफल हुई। भूपसिंह व अनेक क्रांतिवीर पकड़े गये। लेकिन भूपसिंह पुलिस के चंगुल से छूट कर भाग निकले। उन्होंने अपना नाम बदल कर विजयसिंह 'पथिक' रख लिया। भूमिगत रह कर पथिक ने राजस्थान में अनेकों किसान आन्दोलनों का नेतृत्व किया। लोग उन्हें ''राजस्थान का शेर'' कहते थे। 20 मई, 1954 को अजमेर में उनका निधन हो गया।

पं. जगतराम भारद्वाज

जगतराम भारद्वाज का जन्म 1892 में नगमपारु गांव (हरियाणा) में हुआ था वह उच्च शिक्षा प्राप्त करने अमेरिका गये थे। लेकिन वहाँ भारत की गुलामी के कारण जो उनका अपमान होता था उसने उन्हें क्रांति की राह पर डाल दिया। वहाँ उस समय गदर पार्टी का 'गदर' पत्र निकलता था जो वहाँ पर रह रहे भारतीयों में भारत को स्वतंत्र कराने की प्रेरणा देता था। पं. जगतराम ने 'गदर' पत्र की प्रतियाँ हर भारतीय को भेजने का बीड़ा उठाया। अमेरिका ही नहीं विश्व के विभिन्न देशों को 'गदर' की प्रतियाँ भेजी गईं। परिणाम यह हुआ कि अमेरिका से कई हजार प्रवासी भारतीय भारत को आजाद कराने हेतु शस्त्रादि से सुसज्जित होकर भारत आने को तैयार हो गये। पं० जगत राम भी अपने अनेक साथियों के साथ 'प्रिंसेज कोरिया' नामक जहाज से चल पड़े। हांगकांग से जहाज बदला और 'तोशामारु' जहाज से भारत की ओर चल दिये। कोलकाता से पहले ही समुद्र में जहाज तलाशी हेतु रोक लिया गया। ब्रिटिश सरकार को इस बात की सूचना पहले ही मिल गई थी। अन्य लोग गिरफ्तार करके पंजाब भेजे गये लेकिन पं. जगतराम अपनी चालाकी से बच निकले। भारत पहुँच कर उन्होंने पहले से ही तैयार योजना '21 फरवरी, 1915 को समस्त भारत में एक साथ क्रांति' पर कार्य करना आरम्भ कर दिया। लेकिन यह योजना सरकार को पता चल गई। अतः पं. जगतराम के साथ अन्य सैंकड़ों क्रांतिवीर पकड़े गये। पं. जगतराम व 23 अन्य को फाँसी की सजा घोषित हुई। लेकिन बाद में पं. जगतराम की सजा आजीवन कारावास में बदल दी गई। अंडमान में उन्हें कठोर यातनाएँ सहनी पड़ीं। यद्यपि 1940 में वह रिहा हो गए लेकिन उनके जीवन के 25 वर्ष जेल में व्यतीत हुए। रिहा होने पर अनेक मुसीबतों का सामना करते रहे। देश की आजादी के बाद भी उनकी कठिनाइयों का अन्त नहीं हुआ 1954 में दिसम्बर के महीने में अपने मित्र बृजकृष्ण चाँदीवाला के घर में पं० जगतराम भारद्वाज ने अंतिम श्वास ली। जिस देश की आजादी की खातिर उन्होंने अपना जीवन ही होम दिया आजादी के बाद उस देश ने उन्हें गुमनाम जीने और गुमनाम ही मरने पर विवश कर दिया।

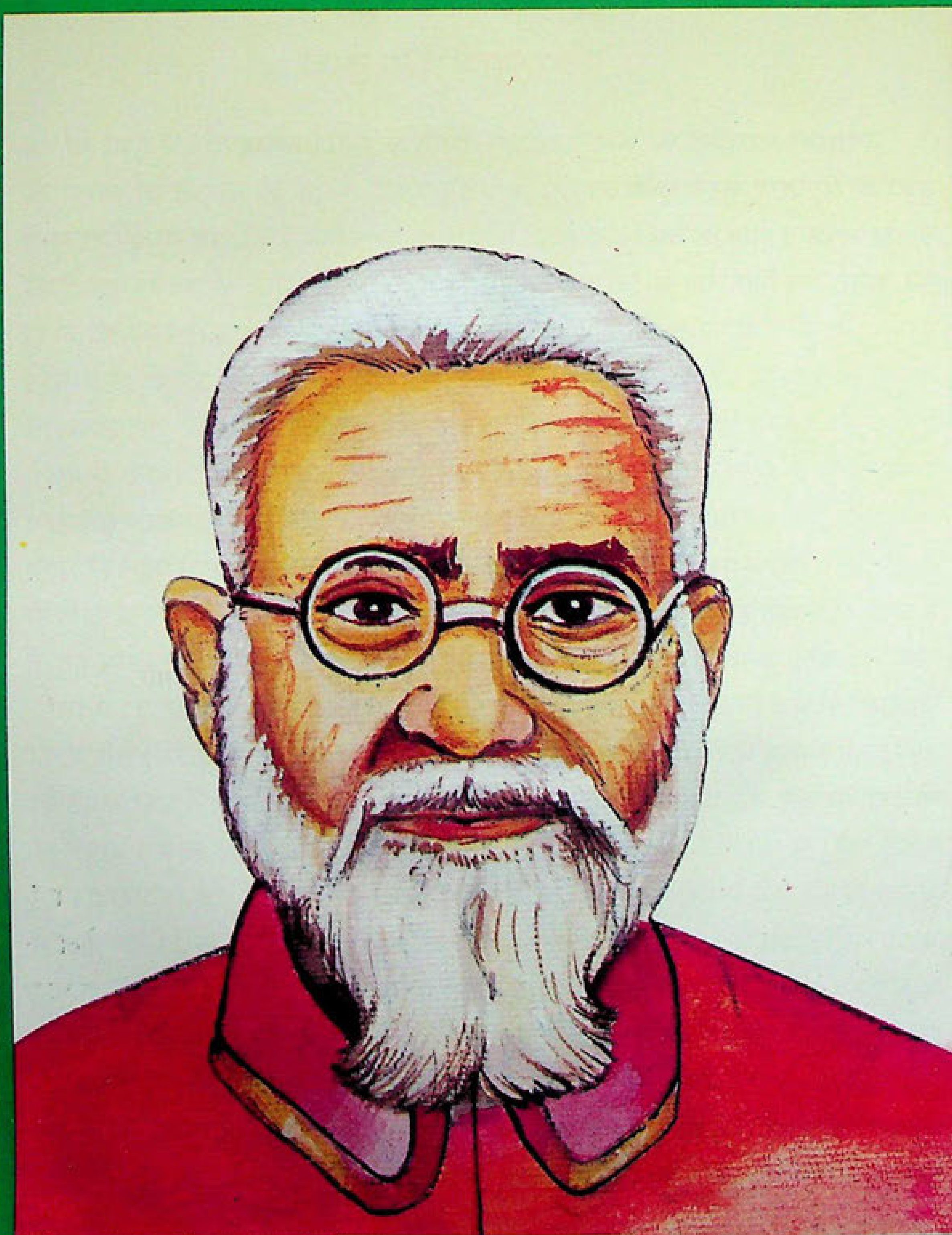

राजा महेन्द्रप्रताप

राजा महेन्द्रप्रताप का जन्म 1 दिसम्बर, 1886 को मुरसान (अलीगढ़) के राजपरिवार में हुआ था। वे समस्त शाही वैभव को त्याग कर भारत को अंग्रेजों से मुक्त कराने का संकल्प लेकर सन 1915 में विदेश चले गये। वहाँ श्याम जी कृष्ण वर्मा आदि क्रांतिवीरों से सम्पर्क किया। जर्मनी जाकर वहाँ के सम्राट कैसर को इस बात के लिए राजी किया कि वह अपने प्रभाव से अफगानिस्तान के अमीर हबीबुल्ला को भारत की आजादी हेतु मदद के लिए तैयार करे। इसी हेतु जर्मनी व अनेक राष्ट्रों के महत्त्वपूर्ण सदस्यों का 'इंडोजर्मन मिशन', राजा महेन्द्रप्रताप के नेतृत्व में हबीबुल्ला के नाम कैसर का पत्र लेकर अफगानिस्तान के लिए निकल पड़ा। मार्ग में यह मिशन वियना, बुखारेस्ट, मिस्र, सोफिया व टर्की आदि देशों के राष्ट्राध्यक्षों से सहायता का आश्वासन व समर्थन भी प्राप्त करता गया। अफगानिस्तान पहुँच कर इस मिशन ने अपने चातुर्य से अमीर के पुत्र अमानुल्ला खाँ, उसका छोटा भाई नसरूल्ला खाँ, वहाँ की राजनैतिक पार्टी 'जमायते सियासिया' के सदस्यों तथा वहाँ के कमाण्डर इन चीफ जनरल नादिर खाँ से भी दोस्ती गाँठ ली। यही कारण था कि अमीर अग्रेजों से मिला हुआ होकर भी इन क्रांतिवीरों का कुछ न बिगाड़ सका। उसे अपनी सेना एवं आम जनता के दबाव में राजा महेन्द्र प्रताप के मिशन की मदद करनी पड़ी। 1915 में राजा महेन्द्रप्रताप के नेतृत्व में 'अंतरिम आजाद हिंद सरकार' व उसके मंत्रीमंडल का गठन कर दिया गया। उनकी सेना ने कबाइली क्षेत्रों में प्रवेश करके भारत पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों ने वह आक्रमण विफल कर दिया। इधर राजा महेन्द्रप्रताप की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। उनके भारत प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया गया। राजा महेन्द्रप्रताप ने 29 मई, 1919 को अफगान सेनाओं की मदद से भारत पर पुनः आक्रमण किया लेकिन इस समय अंग्रेजों ने अफगानिस्तान से संधि करली। राजा महेन्द्र प्रताप को 1946 में ही भारत प्रवेश की अनुमति मिली जब अंग्रेज अपना बिस्तरबोरिया बाँधने की तैयारी में थे। राजा महेन्द्रप्रताप स्वाधीन भारत में संसद सदस्य भी रहे। 29 अप्रैल, 1979 को 93 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया।

बटुकेश्वर दत्त

बटुकेश्वर दत्त का जन्म नवम्बर 1908 में कानपुर (उ. प्र.) में हुआ था। ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत की राजनैतिक गतिविधियों पर रोक लगाने हेतु असेम्बली में एक बिल पास करना था। क्रांतिवीरों ने इसके विरोध हेतु असेम्बली में ऐसे बम का धमाका करने की योजना बनाई जिससे खलबली मचे लेकिन कोई हताहत न हो। इस कार्य के लिए पहले बटुकेश्वर दत्त एवं राम सरन दास को चुना गया। बटुकेश्वर दत्त कानपुर के दैनिक 'प्रताप' में भगत सिंह के साथ काम करते थे। भगत सिंह को क्रांतिकारी बनाने में बटुक का बहुत बड़ा हाथ था। बाद में सुखदेव की जिद पर राम सरन दास की जगह बटुक के साथ भगत सिंह को बम फेंकने का दायित्व दिया गया। दिनांक 8 अप्रैल, 1929 को असेम्बली में पहला बम भगत सिंह ने एवं दूसरा बम बटुकेश्वर दत्त ने फेंका। इस बम से गाढ़े काले रंग का धुआँ सारे सदन मे छा गया। लोग घबराहट में इधर-उधर भागे। धुआँ जब थोड़ा हलका हुआ तो दोनों ने दर्शक दीर्घा से पर्चों का पुलंदा नीचे फेंका और निर्भयता से नारे लगाये, 'इन्कलाब... जिंदाबाद' व 'लांग लिव पोलिट्रेट।' 'पर्चों पर लिखा था- ''बहरों को सुनाने के लिए धमाका करना पड़ता है....।'' दोनों शूरवीरों ने पूर्व योजनानुसार अपने को गिरफ्तार करा दिया। इन दोनों क्रांतिवीरों की सारे देश में बड़ी सराहना हुई। घर-घर में भगत सिंह एवं बटुककेश्वर के फोटो टाँगने की होड़ लग गई। मुकदमे में बटुक को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। 19 वर्ष बाद आजादी मिलने पर ही वह रिहा हुए। सम्पत्ति सब जब्त हो चुकी थी। स्वतंत्र भारत में भी उन्होंने बीड़ी कम्पनी में नौकरी की। उसके बाद भी आर्थिक तंगी एवं परेशानियों में जीवन काटा।

एक अधिकारी बस परमिट के लिये साक्षात्कार में उनसे पूछ बैठा– 'आप पर क्या प्रमाण है कि आप ही बटुकेश्वर दत्त है?' उन्होंने उसी समय प्रार्थना पत्र फाड़ डाला। परमिट लेने से इनकार कर दिया। बटुक ऐसे स्वाभिमानी थे। 1965 में दिल्ली में उनका निधन हुआ।

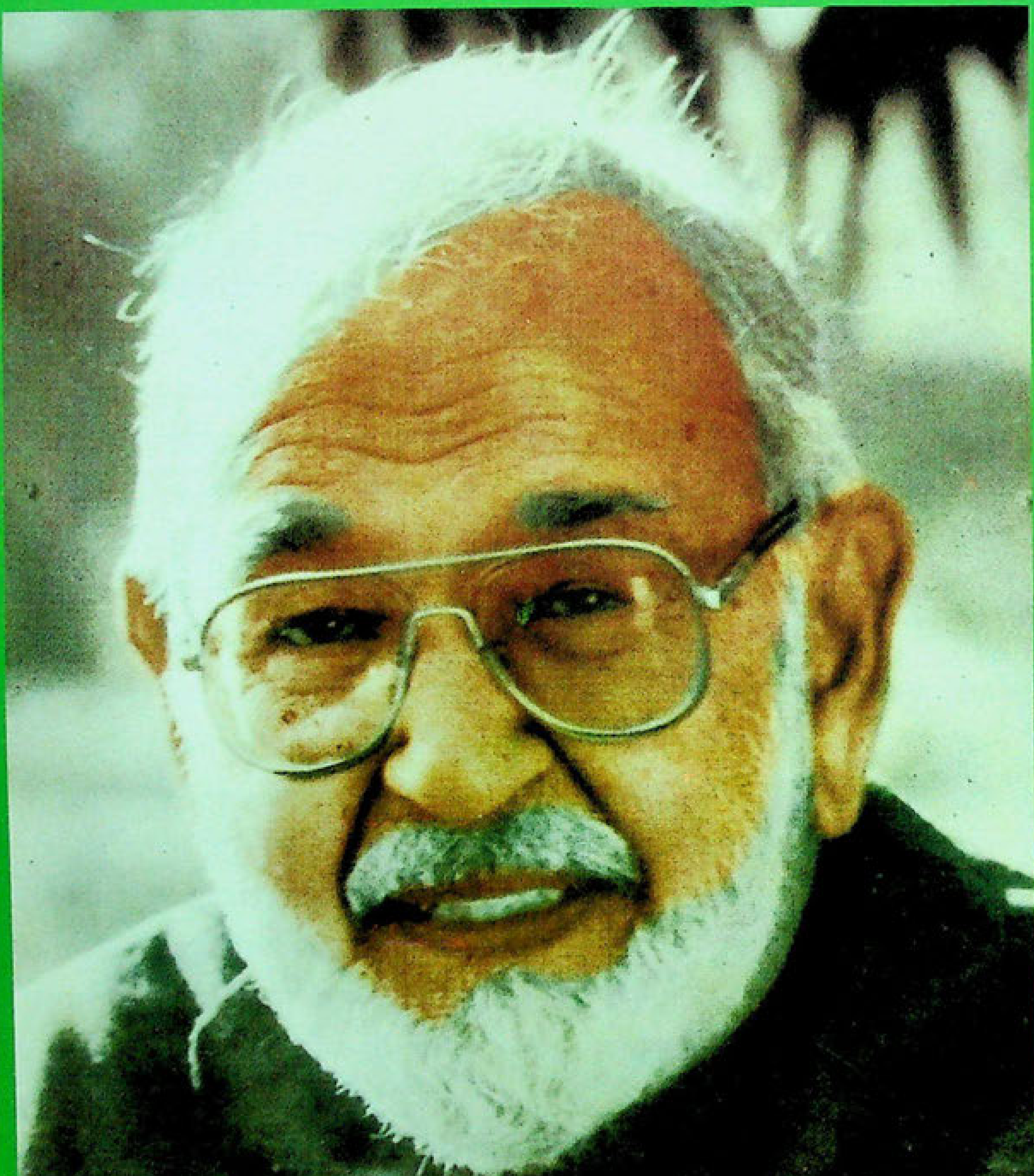

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' जी केवल शीर्षस्थ साहित्य साधक ही नहीं थे अपितु देश की स्वाधीनता के लिये एक क्रांतिकारी के रूप में उन्होंने वर्षों तक सतत संघर्ष किया था। वे चन्द्रशेखर आजाद तथा भगतसिंह के अनन्य सहयोगी रहे थे।

7 मार्च, 1911 को कुशीनगर (उ. प्र.) में जाने माने पुरातत्ववेत्ता पं. हीरानन्द शास्त्री के पुत्र के रूप में जन्मे श्री अज्ञेय जी लाहौर में एम. ए. के छात्र थे। तभी वे स्वाधीनता के लिये संघर्षरत चन्द्रशेखर आजाद, यशपाल आदि के सम्पर्क में आकर स्वयं भी क्रांतिकारी बन गये। क्रांतिकारियों ने सरदार भगतसिंह व उनके साथियों को पुलिस हिरासत से छुड़ाने की योजना बनाई। इसके लिये अज्ञेय जी ने सक्रिय होकर दिल्ली में गुप्त रूप से बम फैक्ट्री का संचालन आरम्भ कर दिया। भगवतीचरण वोहरा की लाहौर में बम परीक्षण करते समय विस्फोट के कारण मृत्यु हो गई। अज्ञेय जी को उसका बहुत आघात लगा। उन्होंने क्रांतिकारी यशपाल को पर्वतीय क्षेत्र में काफी समय तक छिपाये रखा। एक छापे के दौरान अमृतसर में अज्ञेय जी व कुछ अन्य क्रांतिकारी पकड़े गये। उनपर 'दिल्ली षड्यंत्र' के नाम से मुकदमा चलाया गया। दिल्ली की जेल में यातनाएं भोगते समय उन्होंने अनेक जोशीली कविताओं का सृजन किया। क्रांतिकारी जीवन पर अनेक कहानियाँ लिखीं।

अनेक वर्षों तक जेलों में यातनाएं सहने के बाद वह रिहा हुए। उन्होंने मेरठ रहकर किसानों में राष्ट्रीय भावनाएं जागृत कीं। सन् 1936 में आगरा से प्रकाशित राष्ट्रवादी पत्र 'सैनिक' के सम्पादकीय विभाग में कार्य किया। कोलकाता से प्रकाशित 'विशाल भारत' में भी कार्य किया। बाद में वे 'दिनमान' तथा 'नवभारत टाइम्स' के सम्पादक मनोनीत किये गये। उन्होंने अनेक साहित्यिक कृतियों की रचना की।

4 अप्रैल, 1987 को यह महान स्वाधीनता सेनानी व साहित्य मनीषी दिवंगत हो गया।

चन्द्रसिंह गढ़वाली

चन्द्रसिंह गढ़वाली का जन्म 25 दिसम्बर, 1891 को रोणसेरा (पौढ़ी गढ़वाल) में हुआ था। अप्रैल, 1930 में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था। विदेशी वस्तु बहिष्कार और शराबबन्दी आन्दोलनों का देश के विभिन्न भागों में आयोजन हो रहा था। चन्द्रसिंह पेशावर की गढ़वाल राइफल्स में गढ़वाल कम्पनी के हवलदार मेजर थे। 22 अप्रैल को पेशावर में आन्दोलन को तेज करने के लिए भारी जलसा था। पेशावर में केवल 2 प्रतिशत हिन्दू थे। ब्रिटिश अधिकारियों ने पेशावर की गोरखा पलटन के सैनिकों को भड़काया कि 'पेशावर में हिन्दुओं की संख्या कम होने के कारण मुसलमान उन पर बहुत अत्याचार करते हैं अतः उन्हें सबक सिखाना है।' हवलदार मेजर चन्द्र सिंह अंग्रेजों की इस चाल को समझ गये। 22 अप्रैल को उन्हें जलसे पर गोली चलाने का आदेश हुआ। लेकिन उन्होंने निहत्थे व शांति पूर्वक जलसा कर रहे लोगों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। इसी अपराध में उनका कोर्टमार्शल हुआ। उन्हें 12 वर्ष के कारावास की सजा हुई। उनकी जमीन व जायदाद जब्त कर ली गई। 1942 में जब वे जेल से रिहा हुए तो उन पर अन्य पचास से अधिक मुकदमे ठोक कर पुनः जेल में डाल दिया। आजादी के बाद ही वे जेल से रिहा हुए तो उन्होंने अपनी जमीन जायदाद व मकान को वापस पाने हेतु सरकार से प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की गई। संघर्ष करने पर आजाद भारत में उन्हे पुनः जेल में डाल दिया गया। 1 अक्तूबर, 1979 को उनका निधन हुआ।

''कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
कब से रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा''

-इकबाल

विनायक दामोदर सावरकर

विनायक दामोदर सावरकर का जन्म 28 मई सन् 1883 को महाराष्ट्र के नासिक जिले के ग्राम भगूर में श्री दामोदर तथा राधाबाई के पुत्र के रूप में हुआ था। विनायक सावरकर ने लोकमान्य तिलक के क्रांतिकारी विचारों से प्रेरणा प्राप्त करके किशोर अवस्था में ही राष्ट्र की स्वाधीनता के यज्ञ में आहुति देने का संकल्प ले लिया था। सन् 1905 में पुणे में छात्रावस्था के दौरान उन्होंने श्री तिलक जी की उपस्थिति में विदेशी वस्त्रों की होली जलाकर हलचल मचा दी थी। लोकमान्य तिलक की प्रेरणा से श्यामजीकृष्ण वर्मा ने उन्हें 1906 में अध्ययन के लिए लन्दन बुलवा लिया। वहाँ 'इंडिया हाउस' में रहकर उन्होंने भारतीय छात्रों को स्वाधीनता आन्दोलन की ओर उन्मुख किया। इसी बीच सावरकर ने '1857 का स्वातंत्र्य समर' ऐतिहासिक ग्रंथ की रचना की। यह ऐतिहासिक ग्रंथ प्रकाशित होने से पूर्व ही जब्त कर लिया गया था। लन्दन में मई 1907 में उन्होंने 1857 के स्वातंत्र्य समर की अर्द्ध शताब्दी मनाकर ब्रिटिश शासन को चुनौती दी।

सावरकर जी के भक्त मदनलाल ढींगरा ने 1 जुलाई, 1908 को लन्दन में सर करजन वायली की हत्या कर पूरे संसार तक भारतीय स्वाधीनता का उद्घोष पहुँचाया। सावरकर जी को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध राजद्रोह करने व बम-पिस्तौलें भारत भेजने का आरोप लगाकर गिरफ्तार कर लिया गया। उन पर मुकदमा चलाया गया। 30 जनवरी, 1911 को उन्हें दो आजन्म कारावासों की सजा देकर कुछ दिन डोंगरी व अन्य जेलों में रखने के बाद अण्डमान भेज दिया गया। अण्डमान में उन्हें तथा उनके अग्रज गणेश सावरकर को अमानवीय यातनाएं दी गईं। कोल्हू में जोतकर तेल निकलवाया जाता था। सावरकर बंधुओं की सम्पत्ति ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर ली।

आजादी के बाद भी सावरकर जी हिन्दू महासभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष के रूप में अनेक वर्षों तक समाज सुधार कार्य करते रहे। उन्होंने 'मेरा आजीवन कारावास' काला पानी की रोमांचकारी आत्म कथा लिखी। 26 फरवरी, 1966 को वे दिवंगत हो गए।

डॉ० गया प्रसाद

डॉ. गया प्रसाद एलोपैथी, होम्योपैथी व हकीमी तीनों प्रकार की पद्धतियों के विशेषज्ञ थे। वह फिरोजपुर (उ.प्र.) में दवाखाना चलाते थे। मातृ-भूमि को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त कराने हेतु उन्होंने अपने पेशे को ही माध्यम बनाया। वह हकीमी के नुस्खे एवं कुश्ता फूँकने के बहाने बम बनाने के मसाले की गंध को छिपा सकते थे। अतः उन्होंने क्रांतिवीरों की मदद करनी आरम्भ कर दी। क्रांतिवीरों ने दिल्ली से बम फैक्टरी हटा कर सहारनपुर में स्थापित करने का दायित्व डॉ. गया प्रसाद को सौंपा। अतः डॉ. गया प्रसाद फिरोजपुर से अपना दवाखाना हटाकर अपने सहायकों के साथ सहारनपुर आ गये। वहाँ किराये का मकान ले लिया। हकीमी नुस्खों के बहाने बम बनाने हेतु पूरी तैयारी कर ली। डॉ. गया प्रसाद रुपयों का प्रबंध करने कानपुर आ गये। उनके पीछे से सहारनपुर बम फैक्टरी पर पुलिस का छापा पड़ गया। फैक्टरी में शिव वर्मा और जयदेव कपूर गिरफ्तार हो गये। फैक्टरी में पुलिस दल गया प्रसाद के इंतजार में छिप कर बैठ गया। गया प्रसाद के आते ही उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। डॉ. गया प्रसाद को लाहौर षड़यंत्र केस में फँसाने हेतु लाहौर लाया गया। मुकदमे में उन्हें काले पानी की सजा सुना कर अंडमान भेज दिया गया। उन्होंने पूरी जवानी जेल में ही बिता दी।

रानी गाइडिन्ल्यू

गाइडिन्ल्यू का जन्म 26 जनवरी, 1915 में मणिपुर के तोमेगलंग जिले के नंगकाऊ गांव में हुआ था। वे आदिम जाति के पामेइ कबीले में नागाओं के पुरोहित की पुत्री थीं। वे पर्वतांचल के लांगकाओं में नवीं कक्षा की छात्रा थीं। 1927 में गाइडिन्ल्यू के चचेरे भाई जदोनांग ने अंग्रेजी सत्ता को भारी चुनौती दे रखी थी। अपने देश के लिये प्राण न्यौछावर करने की प्रेरणा गाइडिन्ल्यू को जदोनांग से ही मिली थी। जदोंनांग को ब्रिटिश सरकार ने 9 अगस्त, 1931 को फाँसी पर लटका दिया। जदोनांग की फाँसी से गाइडिन्ल्यू का क्रांतिकारी स्वरूप जाग उठा। उन्होंने मिशनरी स्कूल से नाता तोड़ लिया। अपने को 'नागा क्रांति दल' का नेता घोषित कर दिया। नागाओं ने कबीले की एक मात्र मिशन स्कूल में शिक्षित, तेजस्वी व राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत, 17 वर्षीय बाला को 'कबीले की रानी' स्वीकार कर लिया। रानी गाइडिन्ल्यू ने चार हजार निपुण नागा गुरिल्ला योद्धाओं की सेना तैयार की। रानी की क्रांति सेना का 'असम राइफल्स' सेना की टुकड़ी से कई बार सामना हुआ। हर बार रानी के गुरिल्ला सैनिकों ने ब्रिटिश सेना को भारी शिकस्त दी। ब्रिटिश अधिकारियों ने रानी को संदेश भेजा 'रानी शीघ्र ही आत्म समर्पण कर दे! अन्यथा भारी खून खराबा हो सकता है।' रानी ने इस का उत्तर भेजा- ''मैं आत्म समर्पण नहीं करूँगी। जीवन पर्यन्त संघर्ष करूँगी या तो अंग्रेज जीतेगा या मैं'' इसके बाद ब्रिटिश सरकार ने रानी को गिरफ्तार करने हेतु पूरी असम राइफल्स की सशस्त्र सेना झोंक दी। 17 अक्तूबर, 1932 को रानी को उसके छोटे भाई ख्यूसी नांग के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें जेल में कठोरतम असह्य यातनाएँ दी गईं। उन्हें 14 वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी गई। भारत के स्वतंत्र होने के बाद ही रानी को जेल से मुक्ति मिली। उस समय तक उनका समस्त यौवन ही मातृ-वेदी की भेंट चढ़ चुका था। आज़ादी के बाद भी नागाओं के अधिकारों के लिये उन्हें निरंतर जूझना पड़ा। 1981 में रानी को पद्मविभूषण उपाधि प्रदान की गई। 17 फरवरी, 1993 को वे स्वर्ग सिधार गईं।

होतीलाल वर्मा

स्वराज्य पत्र के सम्पादन पर
10 वर्ष का कठोर कारावास

बाबूराम हरि

स्वराज्य पत्र के सम्पादन पर
21 वर्ष का कठोर कारावास

'स्वराज्य' पत्र ने इतिहास रचा

इलाहाबाद में रायजादा शांति नारायण भटनागर द्वारा अपनी जमीन जायदाद बेच कर 'स्वराज्य' उर्दू पत्र आरम्भ किया गया। इस पत्र के सम्पादकीय लेख देशभक्ति की अलख जगाने वाले ज्वालामुखी के समान थे। अतः सरकार ने शांतिनारायण भटनागर को गिरफ्तार कर लिया। प्रैस को कुर्क करके नीलाम कर दिया। हरियाणा के होती लाल वर्मा पत्र के नये सम्पादक बने। उन्होंने नया प्रैस खोल कर पत्र पुनः आरम्भ कर दिया। सरकार ने उन्हें भी 10 वर्ष की सजा सुना कर काला पानी (अंडमान) भेज दिया। इसके बाद गुरुदासपुर के बाबूराम हरि सम्पादक बने। इन्होंने 11 अंक संपादित किये। उन्हें भी गिरफ्तार कर 21 वर्ष के लिए देश से निष्कासित कर दिया। अब तो 'स्वराज्य' पत्र के सम्पादक के लिए हर अंक में एक विज्ञापन छापा जाने लगा- 'स्वराज्य' पत्र के लिए सम्पादक चाहिए- वेतन दो सूखे टिक्कड़ (रोटियाँ), गिलास भर पानी और हर सम्पादकीय लिखने पर 10 वर्ष का काला पानी'' इस सम्पादकीय को पढ़ कर सम्पादकों की लाइन लग गई। पाँचवें सम्पादक आये मुंशीराम सेवक। इन्हें डिकलेरेशन के समय ही गिरफ्तार कर लिया गया। छठी बार आये देहरादून के नन्द गोपाल चोपड़ा। उन्होंने 12 अंक सम्पादित किये। उनके सम्पादकीयों पर उन्हें 30 वर्ष के लिए देश-निष्कासन देकर काला पानी भेज दिया गया। इसके बाद भी 12 नामों की सूची थी। उनमें से सातवें सम्पादक बने गुजरात के श्री लद्धाराम कपूर। उन्होंने तीन अंक निकाले। तीन सम्पादकीय पर 10+10+10 कुल तीस वर्ष का अंडमान में कठोर कारावास काटा। आजादी के बाद ही बूढ़े होकर लौटे। लद्धा राम के बाद नये सम्पादक आते रहे और गिरफ्तारियाँ होती रहीं। अंत में बारहवें सम्पादक आये श्री बंबवाल। उन्हें एक साल की सजा मिली। इसके बाद पत्र को बंद करना पड़ा। 1907 तक इस पत्र के 75 अंक प्रकाशित हुए 12 सम्पादकों ने कुल मिलाकर 125 वर्ष की सजा भोगी।

लद्धाराम कपूर
स्वराज पत्र के सम्पादन पर
30 वर्ष का कठोर कारावास

सम्पादक मुंशीराम सेवक
स्वराज्य पत्र के सम्पादक
बनने पर गिरफ्तार

पत्रकारों पर ब्रिटिश साम्राज्य का कहर

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में पत्रकारों की कुर्बानी और उनके बलिदान को भुलाया नहीं जा सकता। पत्रकारों की कलम ने स्वतंत्रता की यज्ञाग्नि की ज्वाला को कभी भी मंद नहीं पड़ने दिया। समाचार पत्रों की क्रांतिकारी वाणी से घबरा कर ब्रिटिश सरकार ने समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लगा दिया। 8 जून, 1908 को 'समाचार पत्र एक्ट' पास करना पड़ा। लेकिन उसके बाद भी अपनी जान हथेली पर रख कर पत्रकार भारतीय स्वतंत्रता हेतु अपना धर्म व भूमिका निभाते रहे। 'युगान्तर' की वाणी आग उगलती थी। 22 अप्रैल, 1906 को एक सम्पादकीय में भूपेन्द्र नाथ दत्त ने लिखा- 'निदान स्वयं जनता के पास है, दमन के अभिषाप को रोकने के लिए भारत में बसने वाले 30 करोड़ लोगों को अपने 60 करोड़ हाथ उठाने चाहिये। निश्चित ही ताकत को ताकत से जीतना होगा।'' परिणामस्वरूप पत्र पर देशद्रोह का आरोप मढ़ कर प्रतिबंध लगा दिया गया। भूपेन्द्र नाथ दत्त को डेढ़ वर्ष का कठोर कारावास भोगना पड़ा। 'काल' के संपादक परांजपे को 19 माह की सख्त सजा सुनाई गई। 'वन्देमातरम्' व 'संध्या' को देश द्रोही घोषित कर उनपर प्रतिबंध लगा दिया गया। 'वन्देमातरम्' के लेखों से मानो बम फूटते थे। सरकार ने परेशान होकर अरविंद घोष को गिरफ्तार कर लिया। उनपर संगीन आरोप मढ़ कर उन्हें फाँसी पर लटकाने की योजना बना ली। लेकिन प्रसिद्ध वकील चितरंजन दास के अकाट्य तर्कों ने सरकार को उन्हें छोड़ने पर बाध्य कर दिया।

'स्वराज्य' पत्र के सम्पादकीयों ने जो इतिहास रचा उसका वर्णन पिछले पृष्ठ पर किया गया है। मास्टर अमीरचन्द, सूफी अम्बाप्रसाद, ब्रह्मबांधव उपाध्याय, लोकमान्य तिलक आदि पत्रकारों के बारे में भी विस्तार से पहले ही उल्लेख किया जा चुका है।

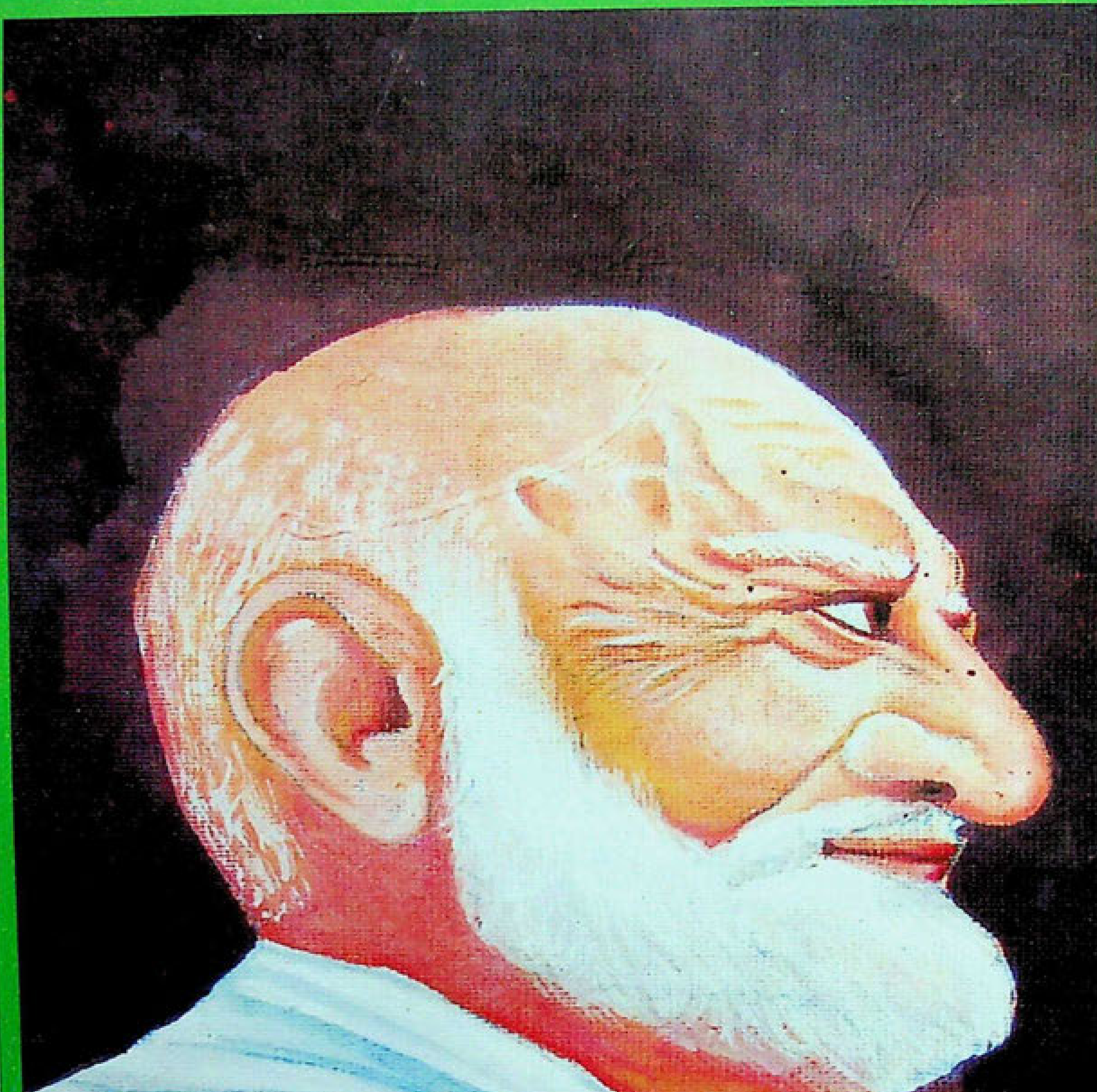

खान अब्दुल गफ्फारखाँ

खान अब्दुल गफ्फारखाँ का जन्म 1890 में पश्चिमी पाकिस्तान में चारसदा जिले के उत्तमजद गांव में हुआ था। 1921 के खिलाफत आन्दोलन में उन्हें प्रथम बार गिरफ्तार किया गया। सन् 1930 में विदेशी वस्तु बहिष्कार एवं शराब बंदी आंदोलन की कमान पेशावर में अब्दुलगफ्फार खाँ ने संभाली हुई थी। इस अवसर पर 23 अप्रैल को पेशावर के काबुली फाटक (किस्सा खाना) पर इन्होंने ब्रिटिश सत्ता के आदेशों की अवहेलना करते हुए भारी प्रदर्शन किया। ब्रिटिश सरकार ने प्रदर्शनकारियों पर गोली वर्षा कराने के लिये गढ़वाली पलटन बुला ली। अब्दुलगफ्फार खाँ ने संगीनों के आगे सीना तान दिया लेकिन पीछे न हटे। पलटन के हवलदार चन्द्रसिंह गढ़वाली ने निहत्थे लोगों पर गोली चलाने से इंकार कर अपनी पलटन से हथियार डलवा दिये। 1940 में व्यक्तिगत सत्याग्रह में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। मुक्त होते ही 1942 के 'अंग्रेजो! भारत छोड़ो आन्दोलन' की बागडोर संभाली। विविध आन्दोलनों में अब्दुल गफ्फारखाँ ने कुल मिलाकर लगभग 14 वर्ष तक जेल की यातनाएँ भोगीं। इसीलिये भारतीय जनता ने उन्हें 'सरहदी गाँधी' के नाम से विभूषित किया। सीमा प्रान्त में उन्होंने 'खुदाई खिदमतगार' दल का गठन किया।

देश की स्वतंत्रता और विभाजन के बाद वे पाकिस्तान के नागरिक बने। पाकिस्तान में वहाँ के शासकों की कुनीतियों के कारण वहाँ भी उन्हें भारी संघर्ष करना पड़ा। वहाँ उन्होंने पख्तून के लोगों के हित में, पख्तूनिस्तान के निर्माण हेतु प्रयास किये। अतः उन्हें देश निकाला दे दिया गया। उन्हें अफगानिस्तान निर्वासित होना पड़ा। 1972 तक वह अफगानिस्तान में रहे। भारतीय जनता ने उनके जीवन के 85 वर्ष पूरे होने पर उन्हें 85 लाख रुपये की थैली भेंट कर उन्हें सम्मानित किया। इस सम्मान के कुछ वर्ष बाद ही 20 जनवरी, 1988 को उन्होंने मुक्ति प्राप्त की।

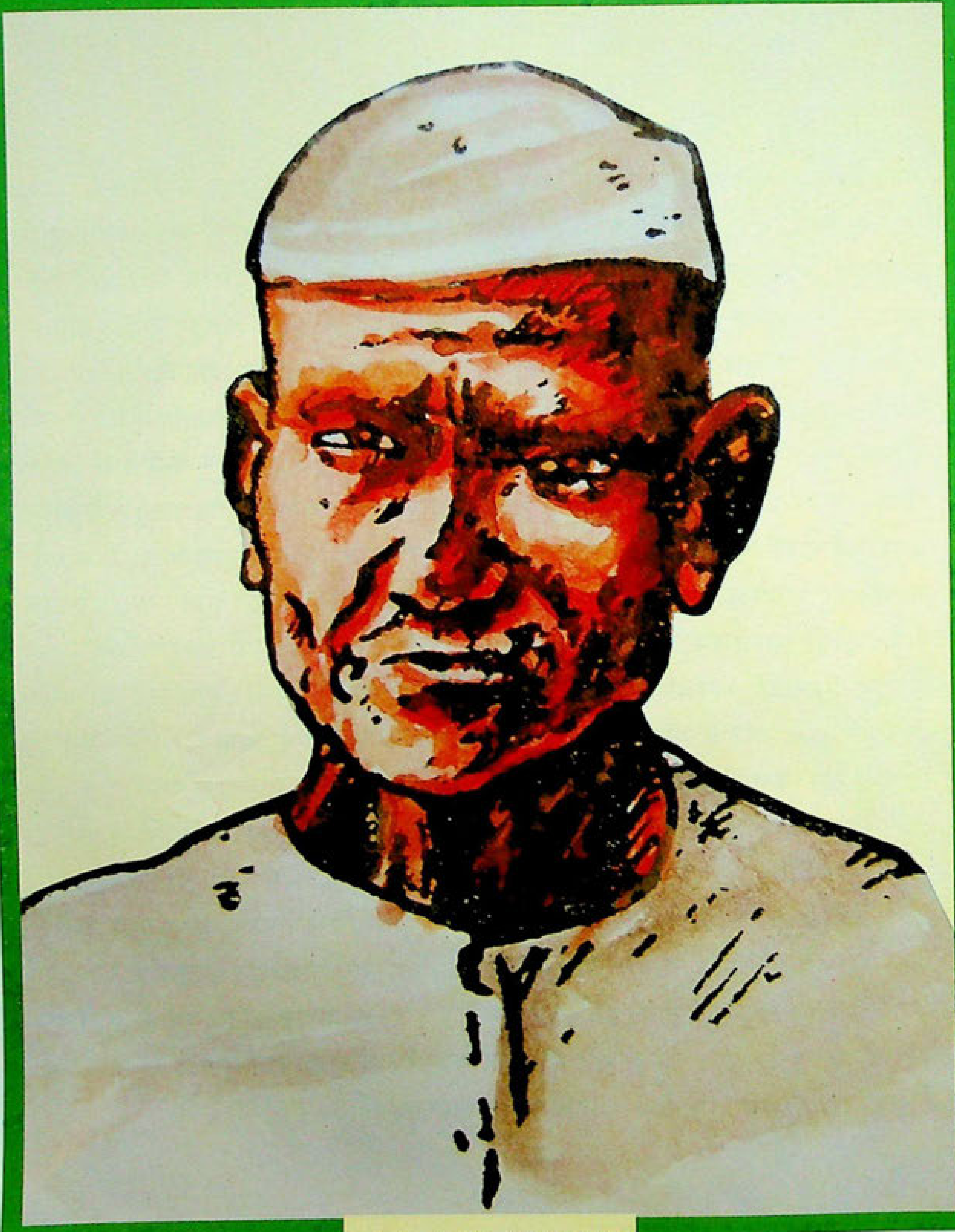

श्यामलाल गुप्त पार्षद

श्यामलाल गुप्त पार्षद जी का जन्म 16 सितम्बर, 1893 को कानपुर के पास ग्राम नरवल (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। वह बचपन से ही देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत थे। परिवार के व्यवसाय अथवा नौकरी का आकर्षण उनके देश सेवा की ओर बढ़ते हुए कदमों को नहीं रोक सके। उन्होंने देशवासियों को गुलामी से मुक्त कराने हेतु अपने मासिक पत्र 'सचिव' को माध्यम बनाया। इस पत्र के प्रत्येक अंक के प्रथम पृष्ठ पर ही निम्न प्रेरक पंक्तियाँ छपतीं थी–

रामराज्य की शक्ति, शान्ति सुखमय स्वतंत्रता लाने को।
लिया 'सचिव' ने जन्म, देश की परतंत्रता मिटाने को।।

इस पत्र के वह केवल 18 अंक ही निकाल पाये। उसके बाद आर्थिक समस्या से जूझते हुए यह बन्द कर दिया गया। अब वह खुल कर स्वतंत्रता संघर्ष में भाग लेने लगे। सन् 1924 तक जितने भी देशभक्ति के गीत थे उनमें झण्डागीत के रूप में अपनाने लायक कोई भी नहीं था। अत: पार्षद जी को झण्डा गीत लिखने का दायित्व सौंपा गया। उन्होंने एक झण्डा गीत लिखा जिसकी प्रथम दो पंक्तियाँ इस प्रकार थीं।

झण्डा ऊँचा रहे हमारा।
विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा।

यह गीत सभी को पसंद आया। यह गीत सारे भारतवर्ष में गाया जाने लगा। यह झण्डा गीत 'वन्देमातरम्' की तरह ही स्वतंत्रता सेनानियों का प्रबल अस्त्र बन गया। इन्हें इस गीत का मूल्य जेल यात्राओं से चुकाना पड़ा। वह 6 बार जेल गये। जेल से छूटने के बाद उन्होंने 'दोसर वैश्य पत्रिका' का प्रकाशन आरम्भ किया। देश की आजादी के बाद देश ने उन्हें वह सम्मान नहीं दिया जिसके वह हकदार थे। 10 अगस्त, 1977 को वह स्वर्ग सिधार गये।

बाबूराव विष्णु पराड़कर

बाबूराव पराड़कर जी का जन्म काशी के एक महाराष्ट्रीय परिवार में दिनांक 16 नवम्बर, 1883 को हुआ था। पराड़कर जी यद्यपि मूलतः पत्रकार थे, लेकिन पत्रकारिता उनके लिये केवल जीवन-यापन का साधन मात्र ही नहीं था वरन इसके माध्यम से वह जन-जागृति लाकर देशवासियों में राष्ट्र के प्रति कर्तव्य बोध की पहचान कराना चाहते थे। उनके बनारस से कोलकाता प्रवास का कारण ही यही था कि वह बंगाल के क्रान्तिवीरों के सम्पर्क में आना चाहते थे। वहाँ जाकर उन्होंने बंगला भाषा में दक्षता प्राप्त की। उन्होंने कहा भी था– ''मैं गुप्त समितियों में कार्य करने के लिये ही कलकत्ता गया था, पत्रकार बनने नहीं।'' कोलकाता में पराड़कर जी के मामा श्री सखाराम गणेश देउस्कर 'हितवासी' के प्रधान सम्पादक थे। पराड़कर जी ने 'हितवासी' के हिन्दी संस्करण का कार्य संभाला। साथ में वह क्रांतिकारियों के गढ़ नेशनल कालेज में मराठी व हिन्दी का अध्यापन कार्य भी करने लगे। पराड़कर जी ने मामा श्री देउस्कर जी की क्रांतिकारी पुस्तक 'देशेर कथा' का हिन्दी अनुवाद किया जो कि जब्त कर ली गई। 'भारत मित्र' के इनके लेखों के आधार पर पराड़कर जी को चार वर्ष का कारावास काटना पड़ा। 1916 में मुक्त होते ही एक पुलिस अधिकारी बसंत कुमार मुखर्जी की हत्या के अभियोग में उन्हें पुनः 3 वर्ष तक राजबंदी का जीवन व्यतीत करना पड़ा। इस बीच जेल में रहते हुए अनेक विदेशी शब्दों का उन्होंने हिन्दी रूपों में मानवीकरण किया। जैसे कि 'नेशन' के लिये 'राष्ट्र', 'इन्फ्लेशन' के लिये 'मुद्रास्फीति' आदि। जेल से मुक्त होते ही 'आज' पत्र निकाला जो कि नमक सत्याग्रह के समय प्रतिबंधित कर दिया गया। इसके बाद भूमिगत रह कर प्रतिबंधों की धज्जियाँ उड़ाते हुए उन्होंने एक गुप्त पत्र 'रण-भेरी' प्रकाशित कर जनता में अपनी आवाज को बुलंद किये रखा। स्वतंत्रता के बाद 12 जनवरी, 1955 को यह महा मनीषी अनंत की नींद में सो गया।

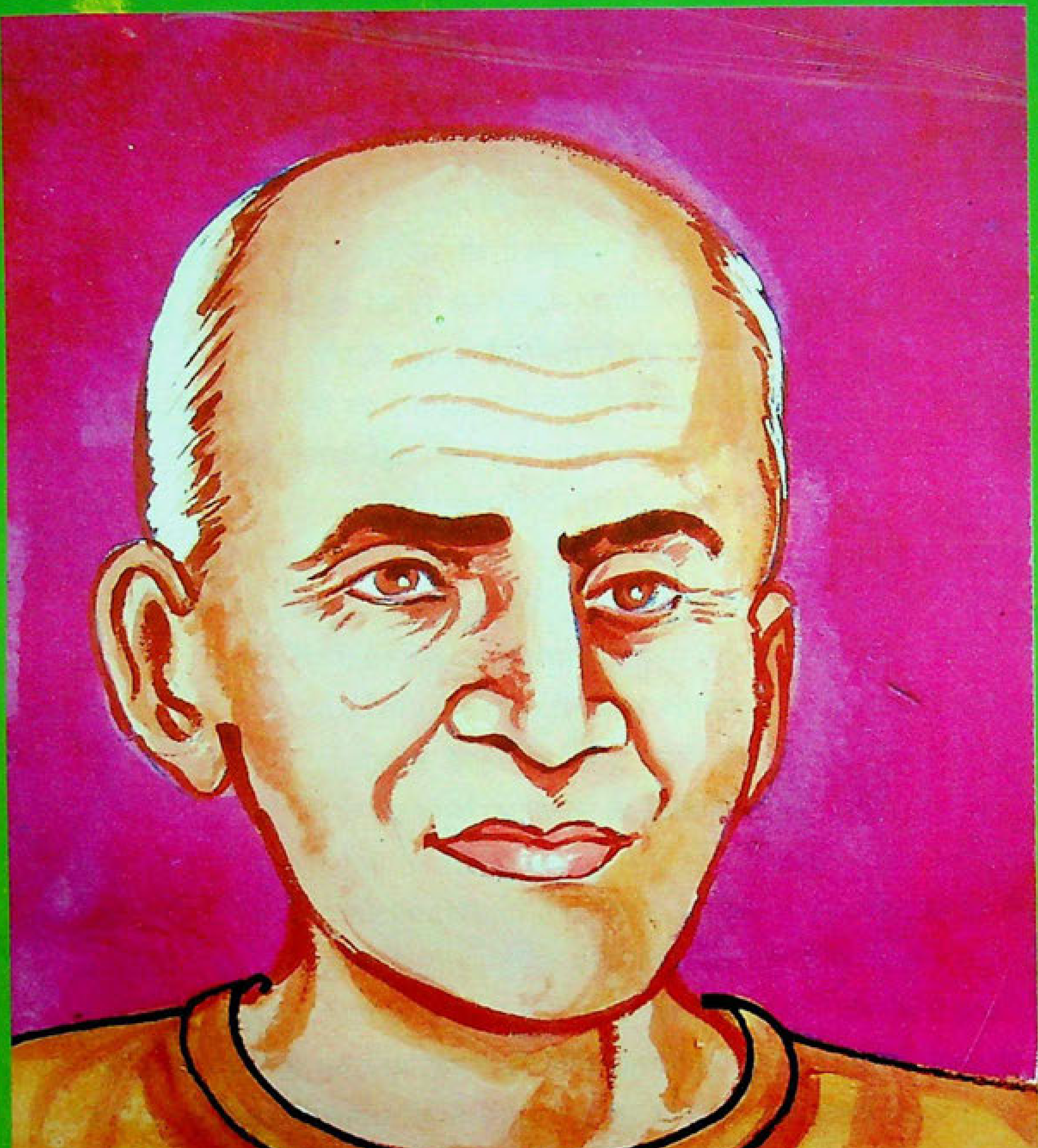

पण्डित सुन्दरलाल

पण्डित सुन्दरलाल का जन्म 26 सितम्बर, 1886 को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जनपद में खतौली कस्बे के एक कायस्थ परिवार में हुआ था। राजा महेन्द्रप्रताप और बालगंगाधर तिलक से प्रेरित होकर उन्होंने क्रांतिकारी आन्दोलन में भाग लेना आरम्भ कर दिया। सुन्दरलाल जी ने 'कर्मयोगी' पत्र को युवाओं में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का माध्यम बनाया। अतः उनकी गिरफ्तारी के वारन्ट हो गये। पत्र की जमानत राशि जब्त कर ली गई। 1910 में पत्र बन्द कर देना पड़ा। गिरफ्तारी से बचने के लिये वह भूमिगत हो गये। संन्यासी का वेश धारण कर लिया। अपना नाम भी सोमेश्वरानन्द रख लिया। अब वह गुप्त रूप से हिमाचल (सोलन) की पहाड़ियों से क्रांति आन्दोलन का संचालन करने लगे। सन् 1911 में भारत की राजधानी कोलकाता से दिल्ली बनने जा रही थी। उस समय रासबिहारी बोस मुख्य लिपिक के रूप में देहरादून में सरकारी नौकरी पर थे। सोमेश्वरानन्द के वेश में पं. सुन्दरलाल ने रासबिहारी बोस से सम्पर्क किया। रासबिहारी बोस के साथ मिलकर उन्होंने दिल्ली के चाँदनी चौक में लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकने की योजना में क्रांतिकारियों से सम्पर्क सूत्र का कार्य किया। 1916 के बाद उन्होंने छद्म वेश त्याग दिया। 'भविष्य' नाम से साप्ताहिक पत्र निकाला। इस पत्र में इनकी ओजस्वी वाणी व चुनौती पूर्ण लेखों के कारण सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। पत्र बन्द कर देना पड़ा। 1921 से लेकर 1942 तक सुन्दरलाल जी ने 8 बार जेल यात्राएँ कीं। इतना व्यस्त राजनैतिक जीवन होते हुए भी उन्होंने अपनी पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज' प्रकाशित करा दी। इसकी लोकप्रियता के कारण ही इसके जर्मनी, चीनी व अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुए। यद्यपि प्रकाशन के दो दिन बाद ही यह पुस्तक जब्त कर ली गई, लेकिन तब तक इसकी प्रतियाँ सारे देश में फैल चुकी थीं। सुन्दरलाल जी का 9 मई, 1981 को दिल्ली में स्वर्गवास हो गया।

लेखक परिचय

रविचन्द्र गुप्ता

जन्म : 15 मार्च, 1937, जेवर, जिला गौतमबुद्ध नगर (उ.प्र.)

शिक्षा : एम.ए.बी.एड.

सेवानिवृति : चालीस वर्षों तक शिक्षक का दायित्व निभाते हुए 31 मार्च, 1997 को राजकीय सर्वोदय विद्यालय, सै. 9, रोहिणी, दिल्ली से उप-प्रधानाचार्य के पद से सेवानिवृत्त।

उपलब्धियाँ : जन्मभूमि जेवर में कन्या विद्यालय की स्थापना जो कि आज 'आदर्श कन्या इंटर कॉलेज' के नाम से विख्यात है।

रचनाएँ : कहाँ गये वे लोग, राष्ट्र आज इनकी जय बोल, बाल क्रांतिकारी, दिल्ली की बलिदान गाथा, माँ की लाज, इन्हें भुला न देना, आज़ादी के अंकुर, कुर्बानी अनजान शहीदों की, नेताजी सुभाष का आह्वान, बलिपथ की वीरांगनाएँ, बाल शहीद कोश, शहीद बच्चों की गौरव-गाथा, भूली बिसरी बलिदान गाथाएँ, आजादी की सुगंधित कलियाँ, राष्ट्र यज्ञ की आहुतियाँ।

शहीद-चित्र प्रदर्शनी : स्वतंत्रता संघर्ष के ज्ञात, अज्ञात व अल्प चर्चित बलिदानी वीरों पर आधारित 400 चित्रों की चल-प्रदर्शनी तैयार कर देश के कोने-कोने में 'शहीद चित्र प्रदर्शनी' का निःशुल्क आयोजन पिछले 12 वर्षों से निरन्तर चल रहा है।

रक्त-निर्मित चित्र संग्रहालय : बलिदानी वीरों के एक सौ चित्र स्व-रक्त से बनवाकर उनका विशाल संग्रहालय तैयार है। पूज्य दीदी माँ साध्वी ऋतंभरा जी ने इनकी स्थापना हेतु वात्सल्यग्राम वृन्दावन में भवन तैयार करवा दिया है।

अन्य प्रयास : गुमनाम शहीदों पर लेखन कार्य करते हुए देश के विविध शहरों में शहीदों के स्मारक व संग्रहालय बनवाने हेतु प्रयास-रत।

सम्पर्क : 32, शिवालिक अपार्टमेंट, सरस्वती विहार, पीतमपुरा, दिल्ली-110034

प्रणित वाचनालय ९-४९२

Vichaar Television Network Limited

लेखक की अन्य रचनाएँ

राष्ट्र, आज इनकी जय बोल	250/-
दिल्ली की बलिदान गाथा	170/-
माँ की लाज	80/-
आज़ादी के अंकुर	400/-
बलि-पथ की वीरांगनाएँ	150/-
बाल शहीद कोश	300/-
राष्ट्र-यज्ञ की आहुतियाँ	250/-
कुर्बानी अनजान शहीदों की	30/-
शहीद बच्चों की गौरव-गाथा	40/-
बाल क्रांतिकारी	7/-
नेताजी सुभाष का आह्वान	...
कहाँ गये वे लोग	10/-
भूली बिसरी बलिदान गाथाएँ	10/-
इन्हें भुला न देना	10/-
आजादी की सुगंधित कलियाँ	10/-

अनिल प्रकाशन, दिल्ली